CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant

Jangamwadi Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jaipur

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

10.1

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दंडी स्वामी विमलानन्द सरस्वती
राजगुरु मठ
शिवालाघाट-वाराणसी
२६.१०.७८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकराचार्य

उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन

(आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिये स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

लेखकः—

डॉ० रामभूर्ति शर्मा

एम० ए० (संस्कृत), एम० ए० (हिन्दी), शास्त्री, साहित्यरत्न, पी-एच० डी०

के० जी० के० कालिज, मुरादाबाद।

प्रकाशकः—

साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार; मेरठ।

—**—

मूल्य २५ रुपये

[१९६४]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री
अध्यक्ष
साहित्य भण्डार,
सुभाष बाजार, मेरठ ।

मूल्य ~~बारह रुपये पचास~~ पैसे
२५.

मुद्रक :
राजबल शर्मा
अध्यक्ष
अरविन्द प्रिंटिङ्ग प्रेस,
हापुड़ रोड, मेरठ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रद्धा-सुमन

दिवङ्गत पं० जवाहरलाल नेहरू

परम श्रद्धेय, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत

एवं पूज्य पितृष्वसा

दिवङ्गत पं० अयोध्याप्रसाद शर्मा

के लिये

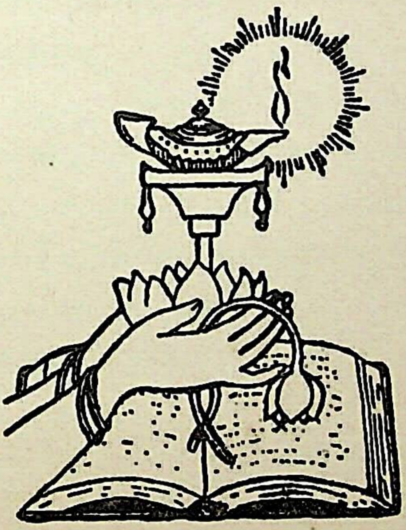

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य-जगद्गुरु-तपस्विप्रवर-
शान्ति-दान्तिभूमसनातनधर्मजीवातु-सरल-सुलभप्रकृति-वेद-
धर्मशास्त्रपरिपालनैकदीक्ष-श्रीज्योतिर्मठाध्यक्ष-भगवत्पाद-
शङ्कराचार्यवर्याणाम्-श्रीकृष्णबोधाश्रमस्वामिपादानाम्

आशीर्वचनम्—

श्रीराममूर्तिशर्मणः 'शङ्कराचार्य उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन' नामकं पुस्तकम् मयावलोकितम्। आस्माकीनया पौरस्त्यपरिपाट्या परियुक्तस्य पाश्चात्यालोचनानिकषैश्चालोचितस्य स्वोपज्ञस्यास्य ग्रन्थस्य रचनाशैली अभूतपूर्वां कामपि शोभामाकलयति।

अद्वैतेनान्तरीयाणाम्, अधिष्ठानअध्यासअध्यारोपअपवाद-विवर्तादिप्रक्रियासाधकानां प्रत्नानां नूत्नानामपि सिद्धान्तानां समालोचनमत्र प्रस्तूयते। बौद्धानां विज्ञानवाद-शून्यवादादिसिद्धान्तैः तुलनातुलाधारिण्यस्मिन्नध्ययने मायावाद विषयस्याप्याक्षेप औचितीमावहति। पौरस्त्य-पाश्चात्यदृष्टचाधीतिनामध्ययनं सम्पादयताञ्च छात्राणां श्रेयस्करतामापद्येत ग्रन्थरत्नम्। रचयिता चास्य मङ्गलाशीर्भिः सभाजनीयोऽस्माभिः।

श्रीकृष्णबोधाश्रमः
धर्मसंघ, दिल्ली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Dr. S. Radhakrishnan

President of India

BEST Wishes for the publication of the work, which I hope will be read widely.

(New--Delhi)
Rashtrapati Bhavan
24 / 4 / 63

(Radhakrishnan)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

3—*Padmabhushan Knight Commander Darshanacharya Dr. B L. Atreya*

M. A., D. Litt.

Formerly University Professor of Philosophy and Head of the Departments of Philosophy, Psychology and Indian Philosophy & Religion and Provost, BANARAS HINDU UNIVERSITY, Hony. Director, Child Guidance Clinic, Varanasi; Hony. Advisor, Indian Council of Human Relations General Editor "DARSHANA INTERNATIONAL"

Shankara has been one of the greatest philosophers not only of India but of the world. His philosophy, which goes by the name of Advaita Vedanta, has inspired and influenced all subsequent thought in India and some philosophers of the West. The contemporary Vedantic movement originated by Swamis Vivekananda and Rama Tirtha which is making a great headway in Europe and America is the modern form of the Vedanta of Shankara. Ramakrishna Paramahamsa and Ramana Maharishi lived and taught it. Paul Brunton expounded it for western readers Even if one does not accept it and is opposed to it, one has to study and understand it in order to criticise it. It is in fact the national philosophy of India. It is, therefore, worthwhile to devote one's time and attention to the philosophical ideas of Shankara, the great Acharya, who did huge and immortal work within a very short span of life. Some of his philosophical ideas, such as the doctrine of Maya, are very much misunderstood and criticised by subsequent medieval and modern Indian and western thinkers. A modern student of philosophy, both in India and abroad, has to form an openion about them. No student of philosophy can, therefore, afford to neglect a study of Shankara,

Dr. Ram Murti Sharma's book, which embodies a critical study of the Mayavada and other philosophical ideas of Shankara, is a welcome contribution to the study of Shankara's philosophy. It was originally his thesis for a Ph. D. Degree of the Agra University, spoken of well by his examiners. Being a scholar of Sanskrit, Dr. Sharma has read Shankara from his original Sanskrit works, and informing his opinion he has been very careful and judicious. His exposition is simple and clear and his criticism unbiassed.

I hope the book will get the recognition it deserves

Atreya-Niwas,
Himalayas.

(Sd) B. L. Atreya

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आमुख

दार्शनिक सार्वभौम स्वामी शंकराचार्य ने जिस अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की थी, उसमें सबसे प्रथम आत्मतत्त्व का विवेचन किया गया है। दार्शनिक दृष्टिसे यदि विचार किया जाय तो सम्पूर्ण विश्व दृष्टा और दृश्य इन दो भागों में बांटा जा सकता है। एक समस्त प्रतीतियों का अनुभवकर्त्ता है और दूसरा समस्त अनुभवों का विषय। समस्त प्रतीतियों के अनुभवकर्त्ता को आत्मा और समस्त प्रतीतियों के अनुभव के विषय को अनात्मा कहा गया है। इन दोनों का सूक्ष्म दार्शनिक विवेचन करना ही शांकरवाद का लक्ष्य रहा है।

शंकराचार्य ने आत्मा को नित्य, निर्विशेष, निर्विकल्प, निश्चल, निर्विकार, असंग, अद्वैत और कूटस्थ कहा है। आत्मा एक स्वयंसिद्ध प्रत्यय है। उसे जब द्रष्टा मानते हैं तो उसकी स्वयंसिद्धता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है। आत्मा की स्वयंसिद्धता के पक्ष में तर्क देते हुए आचार्य ने लिखा है—

आत्मा तु प्रमाणादि व्यवहाराश्रयत्वात् प्रागेव प्रमाणादिव्यवहारात् सिद्धयति।

अर्थात् आत्मा प्रमाणादि सकल प्रमाणों का आश्रयरूप होने के कारण स्वयं सिद्ध है। इसी प्रकार के अन्य तर्कों के द्वारा आत्मा की स्वयंसिद्धता प्रतिपादित की गई है। आत्मा की यह स्वयंसिद्धता ही आस्तिकता की आधारभूमि है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि शांकरदर्शन कट्टर आस्तिक दर्शन है।

आत्मा ज्ञाता ही नहीं ज्ञानरूप भी कहा गया है—'आत्मा आत्मानं जानाति' का सिद्धान्त शांकरवेदान्त को भी मान्य है। इनके मतानुसार एक ही पदार्थ कर्त्ता और करण दोनों रूपों में भासित होता है। शंकराचार्य आत्मा को अद्वैत तत्त्व भी मानते थे। यह बात भी 'आत्मा आत्मानम् जानाति' वाले सिद्धान्त से प्रकट है। श्रुतियों में बार-बार आत्मा की इन विशेषताओं का वर्णन मिलता है। इसी आत्मतत्त्व को शांकरवेदान्त में ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। शंकराचार्य केवल निर्गुण ब्रह्म के ही अनुयायी थे। उनके मतानुसार उपनिषदों का प्रथम प्रतिपाद्य निर्गुण ब्रह्म ही था। इसी निर्गुण ब्रह्म को वह पारमार्थिक सत्ता मानते थे। यद्यपि सगुण-ब्रह्म का भी वर्णन उनके दर्शन में मिलता है। किंतु उसकी सत्ता उन्होंने मायिक ही मानी है।

शंकराचार्य ने ब्रह्म का निरूपण दो विधियों से किया है—तटस्थ लक्षण और स्वरूप लक्षण। तटस्थ लक्षण के अन्तर्गत उन अचिर विशेषताओं का वर्णन किया जाता है जो उदय और अस्त होती रहती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वरूप लक्षण के अन्तर्गत वस्तु के सत्य और तात्त्विक गुणों का निरूपण किया गया है।

ब्रह्म की ज्ञानरूपता, अद्वैतता और सच्चिदानन्द स्वरूपता आदि विशेषतायें ब्रह्म के स्वरूप लक्षण से सम्बन्धित हैं। ब्रह्म के तटस्थ लक्षणों में उसका जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय रूप होना है। वेदान्त-ग्रन्थों में ब्रह्म के तटस्थ और स्वरूप लक्षणों का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। स्वरूप लक्षण का सम्बन्ध अधिकतर निर्विशेष और निर्गुण ब्रह्म से माना जाता है और तटस्थ लक्षण अधिकतर ब्रह्म के सगुण और सविशेष स्वरूप से सम्बन्ध रखते हैं। यहां पर प्रश्न यह उठना है कि निर्विशेष ब्रह्म से सविशेष जगत् और जीव की उत्पत्ति कैसे हुई ? इस समस्या को सुलझाने के लिये आचार्य को माया की कल्पना करनी पड़ी है। शंकर का मायावाद दर्शन क्षेत्र की सबसे अद्भुत और महत्वपूर्ण घटना है।

मुझे आश्चर्य है कि इतने महत्वपूर्ण विषय का नवीन पाश्चात्य आलोचनात्मक शैली में कोई प्रौढ़ और प्रामाणिक विवेचन नहीं हो पाया है। जो दो चार प्रयास इस दिशा में किए भी गये वे एकांकी और चलताऊ से ही थे। इनमें भी हिन्दी में कोई नहीं लिखा गया था। हिन्दी भाषा–भाषी समाज को यह अभाव निरन्तर खटकता रहा। इस अभाव की पूर्ति को दृष्टि में रखकर ही मैंने अपने सुयोग्य और प्रतिभाशाली छात्र श्री राममूर्ति शर्मा को 'शंकराचार्य के मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों के आलोचनात्मक अध्ययन' का कठिन कार्य सौंपा था। मुझे बड़ा परितोष है कि उन्होंने घोर परिश्रम करके मेरी इच्छानुरूप ही यह कार्य सम्पन्न कर लिया। इस प्रबन्ध के परीक्षकों ने प्रबन्ध की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और उनकी संस्तुति पर आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हें पी–एच० डी० की उपाधि प्रदान की। निश्चय ही यह भारतीय दर्शन-क्षेत्र को एक महत्त्वपूर्ण देन है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि विद्वत् समाज में इसका समुचित समादर होगा। मेरी यह शुभ कामना है कि डा० राममूर्ति जी संस्कृत वाङ्मय को इससे भी अधिक प्रौढ़ और पांडित्यपूर्ण रचनायें प्रस्तुत करते रहें। मेरी उक्त कामना का मूल उनकी डी० लिट् के लिये किये० जा रहे शोधकार्य की साधना भी है, जिसमें वे एक तपस्वी की तरह संलग्न हैं।

भारती भवन,
सिविल लाइन्स,
मुरादाबाद
१—११—६४

(डॉ०) गोविन्द त्रिगुणायत
एम. ए., पी–एच. डी., डी. लिट्
(प्रबन्ध निर्देशक)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपस्थापन

संसार सत्यानृत का मिथुन है। सत्य के अव्यक्त रूप के प्रति आस्था और रहस्य-जिज्ञासा एवं भौतिक पूर्तियों के अर्थ अथक प्रयास सांसारिक मानव की मूल भावनाओं के सहज परिणाम हैं। भारत के पुण्यशाली आध्यात्मिक वातावरण में सत्य-जिज्ञासा की प्रवृत्ति प्रधान और भौतिक पिपासाओं की शान्ति गौण रही है। अतः अपनी स्वभावज एवं देशज स्थितियों के क्रम में भारतीय मानव आत्मतत्त्व का जिज्ञासु होने के कारण पहले दार्शनिक है, पश्चात् कुछ और। प्रस्तुत कृति, उक्त प्रवृत्ति के ही यत्किंचित् विकास का फल है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विषय—'शंकराचार्य उन के मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन' है। मानव की मूल दार्शनिक प्रवृत्ति के अनुरूप माया सम्बन्धी विचारधारा का उदय स्वाभाविक ही है। 'परमेश्वर की माया अपार है', 'यह संसार मिथ्या-माया है,' 'माया के फेर में कौन नहीं पड़ता' आदि स्वाभाविक अभिव्यक्तियां मनुष्य की माया-विषयक धारणा की प्रतीक हैं। ग्रन्थों के, वैदिक युग से लेकर शंकराचार्य के काल तक के साहित्य में माया के भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं।

माया शांकर-वेदान्त का मूल तत्त्व है। शंकर परवर्ती आचार्यों में सर्वज्ञात्ममुनि, वाचस्पति मिश्र, विमुक्तात्मा, प्रकाशात्मयति, श्रीहर्ष, रामाद्वयाचार्य, आनन्दबोध भट्टारक, चित्सुखाचार्य, अमलानन्द और अखण्डानन्द आदि आचार्यों ने शांकर-वेदान्त के आधार पर ही अपनी अपनी रचनायें प्रस्तुत की हैं। इन आचार्यों के ग्रन्थों में अद्वैतवाद के विवेचन के साथ साथ प्रासंगिक रूप से माया का संकेत ही नहीं, कहीं-कहीं विस्तृत वर्णन भी किया गया है। इसके अतिरिक्त शांकर-वेदान्त का आलोचनात्मक अध्ययन भी प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा बड़ी तत्परता के साथ किया गया है। पाश्चात्य विद्वानों में,—मैक्समूलर, कोलबुक, थीबो, विन्टरनिट्ज, कीथ और डायसन प्रभृति विद्वानों ने स्वतन्त्र एवं आवसरिक रूप से शंकराचार्य की 'माया' की आलोचना की है। भारत के अंग्रेजी-लेखकों में, डा० राधाकृष्णन् और डा० दासगुप्ता आदि आलोचक विद्वानों ने भी शंकराचार्य की माया' के सम्बन्ध में अपने-अपने विवेचन प्रस्तुत किये हैं। इधर हिन्दी के राष्ट्रभाषापदासीन होने के कारण हिन्दी मे भी कई-एक ग्रन्थ शांकर-वेदान्त पर लिखे गये हैं। हिन्दी-लेखकों में शांकर-वेदान्त ही नहीं, वरन् भारतीय दर्शन के समग्र क्षेत्र में प्रो० बलदेव उपाध्याय का आलोचना प्रयास स्तुत्य है। हिन्दी ग्रन्थों में भी प्रासंगिक रूप से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माया का वर्णन किया गया है। शांकर-वेदान्त का इतना गम्भीर आलोडन होते हुए भी शांकर-अद्वैतवाद के मूलाधार सिद्धान्त—मायावाद के स्वतन्त्र एवं आलोचनात्मक अध्ययन का अभाव अत्यन्त आश्चर्यजनक है। मायावाद की सर्वांगीण आलोचना तो दूर रही, इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में स्वतन्त्र ग्रन्थ भी इने-गिने ही मिलते हैं। साधु शान्तिनाथ का 'मायावाद', अनन्तकृष्ण शास्त्री का 'शतभूषणी', डा० प्रभुदत्त शास्त्री का 'The Doctrine of Maya', डा० अनिलकुमार रे चौधरी का 'The Doctrine of Maya' और देवानन्दन का The Concept of Maya' मायावाद के सम्बन्ध में किये गये स्वतन्त्र अध्ययन हैं। हिन्दी में मायावाद के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आया। मायावाद सम्बन्धी उक्त ग्रन्थों में भी मायावाद का क्रमिक-विकास एवं तौलनिक विवेचन न्यून रूप में ही मिलता है। परन्तु किसी भी सिद्धान्त के परिष्कृत रूप-बोध के लिये उस सिद्धान्त के विकास की दिशा निश्चित करना एवं सपक्षी तथा विपक्षी सिद्धान्तों के साथ तुलनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना परमावश्यक है। प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तर्गत उक्त अभाव की पूर्ति का यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है।

शांकर-मायावाद के आलोचनात्मक अनुशीलन के अभाव के कारण ही मायावाद की रूपरेखा स्पष्ट न होने से इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में अनेक दृष्टि-भेद उत्पन्न हो गये हैं। इसका फल यह हुआ है कि आलोचकों ने ऋग्वेद संहिता और उपनिषद्वर्ती माया सम्बन्धी वर्णनों में शांकर-मायावाद के दर्शन किये हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने तो बौद्ध-दर्शन और शांकर-मायावाद के किंचित् साम्य के आधार पर शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न-बौद्ध' तक कह दिया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में उक्त समस्याओं का समाधान करते हुए शंकराचार्य के मायावाद के सम्बन्ध में एक सरल एवं आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन की पूर्णता के लिये विशेषकर संस्कृत के मूलग्रन्थों और टीका-ग्रन्थों का ही आधार लिया गया है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी और हिन्दी आदि के आलोचना ग्रन्थों का उपयोग करते समय इन ग्रन्थों के तथ्यों को संस्कृत के मूलग्रन्थों से सन्तुलित करने की चेष्टा रही है।

यह, श्रद्धेय गुरुवर डा० गोविन्दशरण त्रिगुणायत एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट् (अध्यक्ष संस्कृत विभाग, के० जी० के० कालेज, मुरादाबाद) के ही असीम आशीर्वाद का फल है कि प्रस्तुत प्रबन्ध अपने इस रूप को पा सका है। उन्हीं के निर्देशन एवं पथ-प्रदर्शन की छाया में बैठकर दर्शन-शास्त्र की जटिल ग्रन्थियों को सुलझाया गया है। उनके सम्बन्ध में कुछ कहना धृष्टता होगी। पूज्य, श्रीमती डा० सरला त्रिगुणायत एम० ए०, पी एच० डी०, ने भी मेरे प्रोत्साहन के लिये जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आशीर्वाद और प्रेरणायें दी हैं उन्हें मैं 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' के नाते अपना अधिकार समझता हूं।

अनुसन्धान की अपेक्षा के अनुसार की गई भारत-यात्रा में आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित—ज्योतिर्मठ, शृंगेरीमठ, गोवर्धनमठ और शारदामठ के श्रद्धेय शंकराचार्यों से भी दार्शनिक तथ्यों के समझने में पर्याप्त सहायता मिली है। इसके लिये मैं परमेश्वर से इन सभी के आत्म-दर्शन की याचना करता हूँ। विभिन्न पुस्तकालयों, संग्रहालयों और अनुसन्धान-संस्थानों के अध्यक्षों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पर्याप्त सौविध्य प्रदान करके इस कार्य में प्रोत्साहित किया है। इस सम्बन्ध में 'नेशनल लाइब्रेरी' कलकत्ता के अध्यक्ष डा० वी० एस० केशवन और 'सरस्वती भवन पुस्तकालय' काशी के अध्यक्ष डा० सुभद्र झा को धन्यवाद देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। हमारे अपने ही कालेज (के० जी०के० कालेज मुरादाबाद) के पुस्तकालय के अधीक्षक प्रो० हरस्वरूप शर्मा, पुस्तकालयाध्यक्ष श्री कुन्दनलाल टन्डन और उपाध्यक्ष श्री जय मोहन जी ने भी मुझे पुस्तकों एवं अन्य सामग्री के सम्बन्ध में अथक सहयोग दिया है। इसके लिये मैं इनका अनुगृहीत हूं।

भारतीय दर्शन के अधिकारी विद्वान् डा० राधाकृष्णन् और म० म० गोपीनाथ कविराज जी ने मुझे अपना अमूल्य समय देकर जो समाधान और सुझाव दिये हैं, वे मेरे लिये वरदानवत् रहे हैं। इन विद्वानों के प्रति मैं अत्यन्त आभार-प्रदर्शन करता हूँ। इसके अतिरिक्त लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् डा० सूर्यकान्त जी शास्त्री (प्राचार्य संस्कृत विभाग, का० हि० वि०) डा० भीखन लाल आत्रेय पद्मभूषण (भूतपूर्व प्राचार्य, दर्शन-विभाग, का० हि० वि०), डा० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री, डी० लिट् (निर्देशक अनुसन्धान संस्थान, दिल्ली) तथा प्रो० बलदेव उपाध्याय (प्रो० पाली तथा संस्कृत विभाग, का० हि० वि०) का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। इन विद्वानों ने अपने मूल्यमय परामर्शों के द्वारा मेरे प्रयास को अथक प्रोत्साहन दिया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी के विद्वान् एवं भक्त डा० ब्रजमोहन मेहरोत्रा (प्राचार्य एवं अध्यक्ष गणित विभाग, का० हि० वि०) ने इस शोध-प्रबन्ध को पढ़कर मुझे अनेक सुझाव दिये हैं। इसके लिये मैं डा० साहब का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

इस शोध-कार्य के पूर्ण होने का बहुत कुछ श्रेय श्री शंभु नाथ जी खन्ना (मुरादाबाद) को है। इस सम्बन्ध में इतना ही पर्याप्त होगा कि उनके साहाय्य के अभाव में इस कार्य का पूर्ण होना कठिन ही नहीं, प्रत्युत असम्भव था। इसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित सुमेरूमठ (काशी) के महन्त पूज्य दण्डीस्वामी आनन्दबोधाश्रम जी महाराज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिनकी कृपा से मैं शंकर-मठ (सुमेरुमठ) में रहकर शांकर-वेदान्त का अध्ययन कर सका हूं। उत्तर प्रदेशीय शासन ने भी छात्रवृति के रूप में आर्थिक सहायता देकर मुझे महान् सहयोग दिया है। इसके लिये मैं उत्तर-प्रदेश शासक का आभारी हूं।

इस धन्यवाद कृत्य के अवसर पर यदि लेखक की धर्मपत्नी श्रीमती चेतन शर्मा, अनुज वाचस्पति और शिष्य धर्मेन्द्र का स्मरण न आया होता तो यह अधूरा ही रहता। ये मेरे नितान्त अपने हैं और मैं इनके प्रत्येक शुभ की कामना करता हूं। इस सब के अतिरिक सुयोग्य प्रकाशक श्री रतिराम जी शास्त्री का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं कि उन्होंने इस प्रबन्ध को सुव्यवस्थित ढंग से प्रकाशित करने का कष्ट उठाया है। इसके अतिरिक्त अरविन्द प्रिंटिङ्ग प्रेस के अध्यक्ष श्री राजबल शर्मा का भी मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस कार्य को अपना समझ इसके सम्पन्न होने में सहयोग दिया है। इतने पर भी इस कृति में प्रकाशन सम्बन्धित एवं 'अनन्त पारं किल शब्द-शास्त्रम्' के अनुरूप अन्य त्रुटियों का पाया जाना असम्भव नहीं है। यह लेखक इन के लिये क्षमा प्रार्थी है और सुझावों के लिये प्रत्याशी है।

विनयावनत :
राममूर्ति शर्मा

दीपावलि,
शिवनिवास, के० जी० के० कालेज,
मुरादाबाद।
१९६४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रबन्ध-सार

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अध्ययन का विषय 'शंकराचार्य के मायावाद का आलोचनात्मक अध्ययन' है। यह प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है। लाघव के लिये यहां इस प्रबन्ध की विषय-सामग्री का संक्षिप्त सार दिया जा रहा है।

प्रथम अध्याय

शीर्षक—'विषय-प्रवेश' की अन्वर्थता के अनुरूप इस अध्याय के अन्तर्गत शंकराचार्य के दार्शनिक व्यक्तित्व एवं सिद्धान्त के परिचय का लघु प्रयास है। भारतीय-दर्शन के क्षेत्र में आचार्य का स्थान सर्वोच्च होने के कारण, उनके जन्म-स्थान, स्थितिकाल और जीवन-चरित के सम्बन्ध में कौतूहल-मय-जिज्ञासा का होना स्वाभाविक है। इसी दृष्टि से इस अध्याय में उक्त विषयों के सम्बन्ध में कई भ्रान्त मतों का निराकरण करके सर्वथा प्रामाणिक मतों की स्थापना की गई है। इसी प्रसंग में शंकराचार्य द्वारा रचित ग्रन्थों का उल्लेख भी किया गया है। इस अध्याय के अपर पृष्ठ में आचार्य की दार्शनिक देन का उल्लेख किया गया है। भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य की प्रमुख देन मायावाद है। यों तो माया से सम्बन्धित कई सिद्धान्त प्रचलित हैं परन्तु शांकर-मायावाद का स्थान पृथक् है। इस सिद्धान्त का एक तन्तु आचार-मूलकता है तो दूसरा व्यावहारिकता। शंकराचार्य ने जगद्वर्ती मानव के लिये लौकिक एवं पारलौकिक-दर्शन की उद्भावना करके मायावाद रूप अद्भुत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इसीलिये प्रस्तुत लेखक शांकर-दर्शन के पलायनवादी होने के आरोप को स्वीकार नहीं करता। वेदान्त में मायावाद के महत्त्व की दूसरी दिशा उपनिषद्-दर्शन का सामञ्जस्य है। इस अध्याय के अन्त में शांकर-मायावाद के अध्ययन के प्रयासों और मायावाद के अध्ययन की अपेक्षा के सम्बन्ध में विचार किया गया है। साथ ही इस अध्ययन के दृष्टिकोण और उसकी विशेषताओं का उल्लेख भी किया गया है।

द्वितीय अध्याय

इस अध्याय का शीर्षक 'शंकर के मायावाद की पृष्ठभूमि' है। किसी भी सिद्धान्त की पृष्ठ-भूमि का, तत्पूर्ववर्ती साहित्य में दर्शन होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक महान् पुरुष के लिये नव-पथ-निर्माण में तत्कालीन परिस्थितियां भी अनिवार्य रूप से प्रेरक हुआ करती हैं। शंकराचार्य को भी अपने दार्शनिक सिद्धान्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के प्रतिपादन के लिये तत्कालीन दार्शनिक, सामाजिक एवं राजनैतिक वातावरण से प्रेरणा मिली थी। मायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि के रूप में संहितायें, उपनिषदें योगवासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता भी गण्य हैं। यह प्रश्नान्तर है कि उक्त साहित्य की माया सम्बन्धी विचारधारा और शंकराचार्य की मायावाद-विचारधारा में पर्याप्त भेद है। वैदिक एवं अन्य योगवासिष्ठ आदि ग्रन्थों की पृष्ठभूमि के अतिरिक्त शंकराचार्य को अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से भी एक पृष्ठभूमि मिली थी। इस सम्बन्ध में अजातिवादी आचार्य गौड़पाद की माण्डूक्यकारिकागत दार्शनिक देन सर्वाधिक प्रबल है। गौड़पादाचार्य के मायावाद का शांकर-मायावाद पर प्रभाव भी विचारणीय है। इस अध्याय का यही विषयाधार है।

तृतीय अध्याय

इस अध्याय में 'शंकराचार्य के मायावाद का स्वरूप, पूर्वार्द्ध, शीर्षक के अन्तर्गत शांकर-मायावाद के स्वरूप के अध्ययन का प्रयत्न है। आचार्य के मायावाद के उचित रूप बोध के लिये आचार्य के पूर्ववर्ती साहित्य में माया-सम्बन्धी विचार-धारा के उदय और विकास का अन्वेषण अत्यावश्यक है। इसी दृष्टिकोण से इस प्रकरण में माया शब्द के इतिहास के रूप में संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, उपनिषदों, आरण्यकों, सूत्र-साहित्य, पुराण-साहित्य, तन्त्र-साहित्य, बौद्ध-साहित्य और योगवा-सिष्ठ आदि ग्रन्थों में माया विषयक विचारधारा का अध्ययन किया गया है। इसी स्थल पर ऋग्वेद संहिता एवं उपनिषदों में मायावाद का दर्शन करने वाले डा० प्रभुदत्त शास्त्री और डा० थीबो के मतों के सम्बन्ध में भी विचार किया गया है। इस सम्बन्ध में विनत निवेदन के रूप में इन पंक्तियों का लेखक संहिताओं और उपनिषदों की माया-विषयक विचारधारा को शांकर-मायावाद की पृष्ठ-भूमि पर मानता है, सिद्धान्त रूप नहीं। शंकराचार्य की माया सम्बन्धी विचारधारा में और वैदिक साहित्य की माया सम्बन्धी विचारधारा में पर्याप्त भेद है। अतः इस सम्बन्ध में यह लेखक मैक्समूलर और कोलब्रुक के मत से समर्थित है। ये दोनों विद्वान् शांकर-मायावाद की विचारधारा का उपनिष दर्शन में अभाव ही मानते हैं। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में शंकराचार्य के माया और उसके पर्यायवाची शब्दों के अन्वेषण के आधार पर शंकराचार्य के मा सम्बन्धी दृष्टिकोण के परिज्ञान का प्रयास है। इसके उपरान्त मायावाद के प्रति-पादन की रीतियों के सम्बन्ध में विचार करके शंकराचार्य के मायावाद के संक्षिप रूप और उसके विविध पक्षों के सम्बन्ध में पर्यालोचन किया गया है। इस अध्या के अन्त में अधिष्ठान और अध्यस्त तत्त्व की दृष्टि से भी मायावाद का अध्यय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया गया है। साथ ही कार्य-कारण सम्बन्ध के विषय में विस्तार से विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

'शंकराचार्य के मायावाद का स्वरूप, उत्तरार्द्ध' शीर्षक के अन्तर्गत इस अध्याय में भारतीय दर्शन की विविध ख्यातियों के सम्बन्ध में विचार किया गया है। शांकर-अद्वैतवाद के अनुसार शुक्ति में 'रजत' और 'रज्जु' में सर्प की भ्रान्ति का मूल अज्ञान है। यह अज्ञान अनिर्वचनीय है। भारतीय दर्शन के क्षेत्र में मीमांसक, नैयायिक, बौद्ध और विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज की भ्रान्ति-विषयक विभिन्न धारायें प्रचलित हैं। (इस सम्बन्ध में मीमांसक—अख्यातिवाद, नैयायिक अन्यथाख्यातिवाद, सौत्रान्तिक, वैभाषिक और योगाचार बौद्ध आत्मख्याति-वाद, माध्यमिक बौद्ध असत्ख्यातिवाद, और विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज सत्ख्याति-वाद के सिद्धान्त के समर्थक हैं।) इन पंचख्यातियों के आलोचन एवं निराकरण के बिना शंकराचार्य का ख्याति विषयक सिद्धान्त स्पष्ट नहीं होता। इसीलिये इस अध्याय में पहिले उक्त पंच ख्यातियों का स्थापन एवं निराकरण किया गया है और इसके पश्चात् शंकराचार्य के अनिर्वचनीयख्यातिवाद के स्वरूप की प्रतिष्ठा की गई है। इस सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि शंकराचार्य ने उक्त ख्यातियों में से केवल आत्मख्याति, असत्ख्याति, अख्याति और अन्यथाख्याति के सिद्धान्तों का ब्रह्मसूत्रगत अध्यास भाष्य में संकेतमात्र करके छोड़ दिया है। वाचस्पतिमिश्र आदि शंकराचार्य के परवर्ती आलोचकों ने उक्त ख्यातियों का पूर्णतया निराकरण करके अनिर्वचनीय-ख्यातिवाद को ही मान्यता दी है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में माया की विषय-मूलकता एवं विषयिप्रधानता के सम्बन्ध में विचार करते हुए माया और अविद्या के स्वरूप पर विचार किया गया है। इस प्रसंग में यह निवेद्य है कि अविद्या और माया के विभाग को शंकर-पश्चाद्वर्ती युग की देन मानने वाले दार्शनिक आलोचकों से इस लेखक का वैमत्य है। अविद्या और माया के स्वरूप की दिशायें शांकर-दर्शन में पूर्णतया स्पष्ट हैं। मायावाद की शक्तिरूपता और अनिर्वचनीयता आदि विशेषताओं का उल्लेख इस अध्याय का विराम-स्थल है।

पंचम अध्याय

'मायावाद का अन्य आध्यात्मिक तत्त्वों से सम्बन्ध' नामक इस अध्याय के अन्तर्गत मायावाद का इतर आध्यात्मिक तत्त्वों से सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है। जीव, प्रपंच, और देश-कालादि सूक्ष्म तत्त्वों की सत्ता का कारण माया है। (माया-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशिष्ट ब्रह्म की 'ईश्वर' और मायावच्छिन्न चैतन्य की 'जीव' संज्ञा है। ईश्वर और जीव में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। कुछ विद्वान् बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव को न मानकर अवच्छेदवाद को मानते हैं। इस अध्याय में उक्त सिद्धान्तों की स्थापना एवं आलोचना की गई है। इसके अतिरिक्त 'जीवेश्वरैकत्ववाद' पर स्वतन्त्र रूप से विचार किया गया है। साथ ही जीव की विभिन्न अवस्थाओं के विवेचन के उपरान्त 'एकजीववाद' और 'अनेक जीववाद' के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है। इस स्थल पर यह निवेद्य है कि प्रस्तुत लेखक अनेक जीववाद का ही समर्थक है। उक्त विषयों के विवेचन के उपरान्त जीव की मुक्त्यवस्था के सम्बन्ध में 'जीवन्मुक्ति' और 'विदेह मुक्ति' का विवेचन किया गया है। इस सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति को मुक्ति के दो भेद मानना भारी भूल है। मुक्त्यवस्था एक ही है। इसके पश्चात् इस अध्याय में माया और प्रपंच के विकास-क्रम के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है। प्रपंच के क्रमिक-विकास के अनुरूप आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुई है। परन्तु यह सब आकाशादि प्रपंच मायिक हैं। यही नहीं, देश-काल की सत्ता भी आमायावधि ही है। परमार्थ दृष्टि से यह सब मिथ्या है। संक्षेप में इस अध्याय का यही सार है।

षष्ठ अध्याय

इस अध्याय का शीर्षक—'शंकराचार्य के मायावाद का परवर्ती दर्शन पर प्रभाव' है। अन्य क्षेत्रों की भांति दर्शन के क्षेत्र में भी प्रतिक्रिया-प्रणाली का पाया जाना स्वाभाविक है। फलतः शांकर-मायावाद में भी प्रतिक्रिया के रूप में रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद, निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद, मध्व के द्वैतवाद और बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद प्रभृति सिद्धान्तों को जन्म दिया है। इन दर्शन-पद्धतियों से प्रेरित होकर ही चैतन्य प्रभृति कुछ अन्य वैष्णव भक्तों ने भी अचिन्त्य भेदाभेदवाद आदि दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना की है। मायावादी शंकर के प्रतिक्रियावादी होने के कारण इन दार्शनिकों के सिद्धान्तों में माया के सम्बन्ध में शंकराचार्य से भिन्न धारणायें मिलती हैं। रामानुज ने शांकर-मायावाद की आलोचना करते हुए मायावाद पर आश्रयानुपपत्ति, तिरोधानानुपपत्ति स्वरूपानुपपत्ति, अनिर्वचनीयत्वानुपपत्ति, प्रमाणानुपपत्ति, निवर्तकानुपपत्ति और निवृत्यनुपपत्ति, ये सात आरोप लगाये हैं। इस प्रकरण में इन आक्षेपों की असंगतता सिद्ध करते हुये इनका निराकरण किया गया है। इस अध्याय के अन्त में, प्रतिक्रिया रूप से उत्पन्न हुए, रामानुज आदि के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में आलोचना की गई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सप्तम अध्याय

इस अध्याय में शंकराचार्य के मायावाद का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक के अन्तर्गत शांकर मायावाद की अन्य माया सम्बन्धी सिद्धान्तों से तुलना की गई है। तुलनात्मक दृष्किोण का प्रकार किसी सिद्धान्त के वास्तविक रूप की परख का साधन है। इसके अभाव में 'दरिद्र-दम्पत्ती न्याय' की चरितार्थता को अवसर मिलता है, यही कारण है कि साधारण अध्येता शांकर-मायावाद, बौद्ध-शून्यवाद, गौड़पादीय-मायावाद, योगवासिष्ठगत कल्पनावाद और तान्त्रिक मायावाद की भेद-रेखाओं का ज्ञान नहीं कर पाता। मायावादी शंकराचार्य के सम्बन्ध में 'प्रच्छन्न-बुद्धत्व 'आदि धारणाओं की सूझ उक्त त्रुटि का ही परिणाम है। शंकराचार्य का मायावाद शून्यवादी के शून्यवाद, गौड़पादाचार्य के स्वप्नवाद और योगवासिष्ठ के कल्पनावाद से भिन्न है। मायावादी शंकराचार्य की माया न शून्यवादी का असत्‌रूप है न गौड़पाद का स्वप्न है और न योगवासिष्ठ की 'कल्पना'। व्यावहारिक सत्ता के अनुसार शंकराचार्य की माया 'सत्' होने के कारण उक्त विचार–दृष्टियों से भिन्न है। शंकराचार्य प्रतिपादित माया का 'मिथ्याभूता सनातनी' होना तन्त्र की महामाया के भी विरुद्ध है। इस प्रकार शांकर-मायावाद की विचारधारा अन्य माया सम्बन्धी विचारधाराओं से भिन्न है। सूक्ष्मतया इस अध्याय का यही वर्ण्य-विषय है।

अष्टम अध्याय

अष्टम अध्याय–'उपसंहार' है। इस अध्याय का विषय शंकराचार्य के मायावाद के विषय में एक विहंगम दृष्टि प्रस्तुत करना है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय के अन्तर्गत शंकराचार्य के सम्बन्ध में 'प्रच्छन्न बुद्धत्व' वाली धारणा पर भी विचार किया गया है। डा० एस० एन० दासगुप्ता, डा० बी० एम० बरुआ और राहुल सांकृत्यायन प्रभृति आलोचक विद्वान् शंकर को 'प्रच्छन्न-बौद्ध' मानते हैं। इस लेखक की दृष्टि से शंकराचार्य के सम्बन्ध में 'प्रच्छन्न-बुद्धत्व' वाली धारणा का प्रचलन एक पक्षीय आलोचना का फल है। ऐसी आलोचना के फलस्वरूप ही उक्त आलोचकों ने बौद्धविज्ञानवाद, शून्यवाद और शांकर-मायावाद की विचारधाराओं को मिलाकर एक कर दिया है। यह असमीचीन है। स्वयं शंकराचार्य ने अपने भाष्य-ग्रन्थों में बौद्ध-विज्ञानवाद एवं शून्यवाद का निराकरण किया है। इस अध्याय में विज्ञानवाद, शून्यवाद और मायावाद की समताओं एवं विषमताओं पर विचार करते हुए इन सिद्धान्तों के पार्थक्य का उल्लेख किया गया है। शांकर-दर्शन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और बौद्ध-दर्शन का मूलाधार उपनिषद-दर्शन है। इसलिये बौद्ध-दर्शन एवं शांकर-दर्शन के यत्किंचित् साम्य के आधार पर शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहना युक्ति युक्त नहीं प्रतीत होता। शंकराचार्य के 'प्रच्छन बुद्धत्व' के सम्बन्ध डा० दासगुप्ता का कथन है कि शंकर और उनके अनुयायियों ने आलोचना के भाषागत रूप को बहुत कुछ बौद्धों से ऋण रूप में प्राप्त किया था। निश्चय ही डा० दासगुप्ता का कथन सत्य है। परन्तु यह विचारणीय है कि बौद्ध-धर्म के खण्डन के लिये बौद्ध-विद्वानों से शास्त्रार्थ करते समय शंकराचार्य के लिये बौद्धों के के पारिभाषिक शब्दों एवं भाषागत रूपों का अपनाना स्वाभाविक ही था। आज भी पश्चिमी देशों में वेदान्त-दर्शन के प्रचारक हिन्दू सन्त क्रिश्चियन वर्णन-विधियों को अपनाते हुए देखे जाते हैं। अतः इस भाषागत प्रभाव के आधार पर शंकर 'प्रच्छन्न बौद्ध' नहीं कहे जा सकते।

वेदान्त-दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य और उनके मायावाद का स्थान सर्वोच्च है। इस महत्त्व का कारण, शंकराचार्य द्वारा मायावाद की स्थापना के आधार पर किया गया उपनिषद्-दर्शन का सामंजस्य एवं बादरायण के ब्रह्म-सूत्रगत अस्पष्ट दर्शन का स्पष्टीकरण है। साथ ही माया का व्यावहारिक एवं आचार-मूलक रूप मायावादी-शंकर की अनुपम देन है। इसके अतिरिक्त अद्भुत भाष्य-शैली के द्वारा दर्शन जैसे विषय के सारल्य का प्रयास शंकराचार्य का सर्वश्रेष्ठ प्रयास है। संक्षेप में इस अध्याय का यही सार है।

उक्त तथ्यों का विवेचन करते समय 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' के अनुसार दर्शन-शास्त्र के अनेक विद्वानों के मतों से विभेद उत्पन्न हो गया होगा तथा कहीं-कहीं अनर्गलता भी आ गई होगी। इसके लिये क्षमायाची यह लेखक दर्शन-शास्त्र के इन विद्वानों से प्रसाद का आकांक्षी है।

—लेखक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूपरेखा—

प्रथम अध्याय (विषय-प्रवेश)

भारतीय-दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य का महत्त्व ।

शंकराचार्य का जन्म-स्थान । शंकराचार्य का स्थिति-काल ।

शंकराचार्य का संक्षिप्त जीवन-वृत्त । शंकराचार्य की रचनायें ।

भारतीय-दर्शन को शंकराचार्य की देन ।

(क) अद्वैतवाद का प्रस्थापन । (ख) माया का प्रतिपादन

(ग) आचार सम्बन्धी विशेषतायें । (घ) कुछ अन्य देनें ।

वेदान्त में मायावाद का महत्त्व । शांकर-वेदान्त के अध्ययन के प्रयास ।

शांकर-वेदान्त के अध्ययन में मायावाद के अध्ययन की उपेक्षा ।

प्रस्तुत अध्ययन का दृष्टिकोण और उसकी विशेषतायें ।

द्वितीय अध्याय (शंकर के मायावाद की पृष्ठभूमि)

तत्कालीन परिस्थितियां । वैदिक पृष्ठ-भूमि ।

योगवासिष्ठ-दर्शन प्रभृति कुछ अन्य पृष्ठ-भूमियां ।

शंकराचार्य के पूर्ववर्ती अद्वैत वेदान्त के प्रमुख आचार्य और उनमें मायावाद के बीज ।

गौड़पादाचार्य के मायावाद का स्वरूप ।

गौड़पादाचार्य के मायावाद का शंकराचार्य पर प्रभाव ।

तृतीय अध्याय (शंकराचार्य के मायावाद का स्वरूप, पूर्वार्द्ध)

शंकराचार्य के 'माया' शब्द का इतिहास ।

माया के पर्यायवाची शब्द । मायावाद के प्रतिपादन की रीतियां ।

शंकराचार्य के मायावाद का संक्षिप्त रूप और उसके विविध-पक्ष ।

अधिष्ठान की दृष्टि से मायावाद का अध्ययन ।

अध्यस्त तत्त्व । कार्य-कारण सम्बन्ध पर विचार ।

चतुर्थ अध्याय (शंकराचार्य के मायावाद का स्वरूप, उत्तरार्द्ध)

भारतीय-दर्शन की विविध ख्यातियां और उनका निराकरण ।

शंकराचार्य के अनिर्वचनीय ख्यातिवाद की स्वरूप-प्रतिष्ठा ।

माया विषय-मूलक है अथवा विषयिप्रधान, इस समस्या पर विचारविमर्श ।

शंकराचार्य के मायावाद की प्रमुख विशेषतायें ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंचम अध्याय (मायावाद का अन्य आध्यात्मिक तत्त्वों से सम्बन्ध)

माया और ईश्वर का सम्बन्ध। माया और जीव का सम्बन्ध।
माया और प्रपंच का विकास-क्रम। माया और देश-काल।

षष्ठ अध्याय

(शंकराचार्य के मायावाद का परवर्ती दर्शन पर प्रभाव)

मायावाद की प्रतिक्रिया से उदय होने वाली दर्शन-पद्धतियाँ और उनमें माया का स्वरूप।
(क) रामानुज-दर्शन। (ख) निम्बार्क-दर्शन।
(ग) मध्व-दर्शन। (घ) वल्लभ-दर्शन।
कुछ अन्य दर्शन-पद्धतियां।

सप्तम अध्याय

(शंकराचार्य के मायावाद का तुलनात्मक अध्ययन)

बौद्धों का शून्यवाद—और शंकराचार्य का मायावाद।
(क) समानतायें (ख) असमानतायें। (ग) विशिष्टतायें।
गौड़पादाचार्य और शंकराचार्य के माया-सम्बन्धी दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन।
योगवासिष्ठ का कल्पनावाद और शंकराचार्य का मायावाद।
तान्त्रिक-मायावाद और शांकर मायावाद।

अष्टम अध्याय (उपसंहार)

शंकराचार्य के मायावाद पर विहंगम दृष्टि।
शंकराचार्य के मायावाद की विशिष्टताओं पर एक दृष्टिपात।
शंकराचार्य के सम्बन्ध में प्रसिद्ध 'प्रच्छन्न-बुद्धत्व' वाली धारणा का निराकरण।
वेदान्त-दर्शन में आचार्य शंकर और उनके मायावाद का स्थान।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

* विषय–सूची *

—:o:—

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ
१	प्राक्कथन	i—iv
२	प्रबन्ध–सार	v—x
३	रूप–रेखा	xi—xii
४	प्रथम अध्याय—– (विषय–प्रवेश)	१ – ५८

भारतीय-दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य का महत्त्व, शंकराचार्य का जन्म-स्थान, शंकराचार्य का स्थिति-काल, शंकराचार्य का संक्षिप्त जीवनवृत्त, शंकर का बाल्यकाल, शंकर की गुरु गोविन्द भगवत्पाद से भेंट, काशी में शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य, शंकराचार्य और मण्डनमिश्र, शंकराचार्य द्वारा मठ–स्थापना, शंकराचार्य की रचनायें, भाष्यग्रन्थ, स्तोत्र-ग्रन्थ, प्रकरण-ग्रन्थ, तन्त्र-ग्रन्थ, भारतीय-दर्शन को शंकराचार्य की देन, अद्वैतवाद का प्रस्थापन, अध्यास, विवर्तवाद का सिद्धान्त प्रातिभासिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता, पारमार्थिक सत्ता, जीव, माया का प्रतिपादन, माया के तीन स्वरूप, आवरण और विक्षेप नामक माया की शक्तियां, आचार सम्बन्धी विशेषतायें, शंकराचार्य का आचार सिद्धान्त, कर्म का विविध स्वरूप, कुछ अन्य देनें, वेदान्त में मायावाद का महत्त्व, शांकर-वेदान्त के अध्ययन के प्रयास, संस्कृत में वेदान्त के मूल-ग्रन्थ एवं टीका-ग्रन्थ, अंग्रेजी के आलोचनात्मक ग्रन्थ, हिन्दी के आलोचनात्मक ग्रन्थ, जर्मन भाषा के आलोचनात्मक ग्रन्थ, बंगला के आलोचनात्मक ग्रन्थ, महाराष्ट्री के आलोचनात्मक ग्रन्थ, पत्र-पत्रिकायें, (क) संस्कृत पत्र-पत्रिकायें, (ख) अंग्रेजी पत्र-पत्रिकायें, (ग) हिन्दी पत्र-पत्रिकायें, शांकर-वेदान्त के अध्ययन में मायावाद के अध्ययन की उपेक्षा, प्रस्तुत अध्ययन का दृष्टिकोण और उसकी विशेषतायें, ।

५ द्वितीय अध्याय—– (शंकर के मायावाद की पृष्ठभूमि) ५९ – ९३

तत्कालीन परिस्थितियां, राजनैतिक परिस्थितियां, सामाजिक परिस्थितियां, धार्मिक परिस्थितियां, दार्शनिक परिस्थितियां, वैदिक पृष्ठभूमि, संहिताओं में मायावाद की पृष्ठभूमि, ऋग्वेद-संहिता और माया-यजुर्वेद-संहिता और माया, अथर्ववेद-संहिता और माया, उपनिषदों में मायावाद की पृष्ठभूमि, योगवासिष्ठ दर्शन प्रभृति कुछ अन्य पृष्ठभूमियां, योगवासिष्ठगत पृष्ठभूमियां, श्रीमद्भगवद्गीतागत पृष्ठभूमि,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकराचार्य के पूर्ववर्ती वेदान्त के प्रमुख आचार्य और उनमें मायावाद के बीज, भर्तृप्रपंच, भर्तृमित्र, भर्तृहरि, उपवर्ष, बोधायन, टंक, ब्रह्मनंदी, भारुचि, कपर्दी और गुहदेव, द्रविडाचार्य, सुन्दरपाण्ड्य, ब्रह्मदत्त, गौड़पादाचार्य के मायावाद का स्वरूप, गौड़पादाचार्य के मायावाद का शंकराचार्य पर प्रभाव।

६ तृतीय अध्याय— पृष्ठ ९५–१३९

(शंकराचार्य के मायावाद का स्वरूप, पूर्वार्द्ध)

शंकराचार्य के माया शब्द का इतिहास, संहिताओं में माया शब्द का प्रयोग, ऋग्वेद-संहिता में माया शब्द का प्रयोग, यजुर्वेद-संहिता में माया शब्द का प्रयोग, अथर्ववेद-संहिता में माया शब्द का प्रयोग, ब्राह्मणग्रन्थ और माया, उपनिषद्-ग्रन्थ और माया, श्रीमद्भगवद्गीता में माया, ब्रह्मसूत्र और माया, पुराण और माया, तन्त्र और माया, बौद्ध-दर्शन और माया, योगवासिष्ठ और माया, माण्डूक्यकारिका और माया, शंकराचार्य और माया, माया के पर्यायवाची शब्द—अविद्या, अज्ञान, प्रकृति, अव्यक्त, आकाश, अक्षर, अव्याकृत, प्रधान, अध्यास, शक्ति, उपाधि, मायावाद के प्रतिपादन की रीतियां, परमेश्वर की शक्ति के आधार पर किया गया मायावाद का प्रतिपादन, अविद्या के आधार पर किया गया मायावाद का प्रतिपादन, मिथ्यात्व के आधार पर किया गया मायावाद का प्रतिपादन, शंकराचार्य के मायावाद का संक्षिप्त रूप और उसके विविध पक्ष, अधिष्ठान की दृष्टि से मायावाद का अध्ययन, अध्यस्त तत्त्व, कार्य-कारण सम्बन्ध पर विचार, वैदिक साहित्य और कार्य-कारण सम्बन्ध, सत्कार्यवाद का सिद्धान्त, असत्कार्यवाद का सिद्धान्त, शंकराचार्य और कार्य-कारण सम्बन्ध।

७ चतुर्थ अध्याय— पृष्ठ १४१—१९८

(शंकराचार्य के मायावाद का स्वरूप, उत्तरार्द्ध)

भारतीय-दर्शन की विविध ख्यातियां और उनका निराकरण, सत्ख्यातिवाद का सिद्धान्त, सत्ख्यातिवाद का निराकरण, अख्यातिवाद का सिद्धान्त, अख्यातिवाद का निराकरण, अन्यथाख्यातिवाद का सिद्धान्त, अन्यथाख्यातिवाद का निराकरण, आत्मख्यातिवाद का सिद्धान्त, आत्मख्यातिवाद का निराकरण, असत्ख्यातिवाद का सिद्धान्त, असत्ख्यातिवाद का निराकरण, शंकराचार्य के अनिर्वचनीयख्यातिवाद की स्वरूप-प्रतिष्ठा, माया विषयमूलक है अथवा विषयिप्रधान, इस समस्या पर विचार-विमर्श, अविद्या और माया, शंकराचार्य के मायावाद की प्रमुख विशेषतायें, शक्तिरूपता, अनिर्वचनियता, भावरूपता, अनादिता, सान्तत्व, अध्यस्तता, इन्द्रजालत्व, व्यावहारिकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

८ पंचम अध्याय— पृष्ठ १६६—१६४

(मायावाद का अन्य आध्यात्मिक तत्त्वों से सम्बन्ध)

माया और ईश्वर का सम्बन्ध, माया और जीव का सम्बन्ध, जीवेश्वरैकत्ववाद और माया, प्रतिबिम्बवाद का सिद्धान्त, अवच्छेदवाद का सिद्धान्त, आलोचना, जीव की तीन अवस्थायें, जीव और साक्षी, एक जीववाद और अनेक जीववाद, जीव की अविद्या निवृत्ति एवं मुक्ति, जीवन्मुक्ति और विदेह-मुक्ति, माया और प्रपंच का विकास-क्रम, माया और देशकाल, मायिक देशकाल की व्यावहारिकता।

९ षष्ठ अध्याय— पृष्ठ १९५—२१९

(शंकराचार्य के मायावाद का परवर्ती-दर्शन पर प्रभाव)

मायावाद की प्रतिक्रिया से उदय होने वाली दर्शन-पद्धतियां और उनमें माया का स्वरूप, रामानुज दर्शन, ब्रह्म, ईश्वर, जीव, जगत्, मुक्ति, रामानुज-दर्शन मे माया का स्वरूप, माया के सम्बन्ध में रामानुज की सात अनुपपत्तियां और उनका परिहार, १–आश्रयानुपपत्ति और उसका परिहार, २–तिरोधानानुपपत्ति और उसका परिहार, ३–स्वरूपानुपपत्ति और उसका परिहार, ४–अनिर्वचनीयत्वानुपपत्ति और उसका परिहार, ५–प्रमाणानुपपत्ति और उसका परिहार, ६–निवर्तकानुपपत्ति और उसका परिहार, निम्बार्क-दर्शन, जीव, जगत् ईश्वर, मुक्ति, निम्बार्क-दर्शन में माया का स्वरूप, मध्व-दर्शन, ईश्वर और जीव का भेद, ईश्वर और जड़–जगत् का भेद, जीव और जगत् का भेद, जीव और जीव का भेद, जड़ और जड़ का भेद, ईश्वर, जीव, मुक्ति, मध्व-दर्शन में माया का स्वरूप, वल्लभ-दर्शन में माया का स्वरूप, कुछ अन्य दर्शन-पद्धतियाँ, आलोचना।

१० सप्तम अध्याय— पृष्ठ २२१—२४२

(शंकराचार्य के मायावाद का तुलनात्मक अध्ययन)

बौद्धों का शून्यवाद और शंकराचार्य का मायावाद, शून्य के विभिन्न रूप, बौद्ध–शून्यवाद, शून्यता के विभिन्न प्रकार, संवृत्ति, शून्यवाद और शंकराचार्य के मायावाद की तुलना—समानतायें, असमानतायें, विशिष्टतायें, गौड़पादाचार्य और शंकराचार्य के माया सम्बन्धी दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन, योगवासिष्ठ का कल्पनावाद और शंकराचार्य का मायावाद, तान्त्रिक–मायावाद और शांकर-मायावाद, तान्त्रिक०मायावाद, तान्त्रिक–मायावाद और शांकर–मायावाद (तुलना)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

११ अष्टम अध्याय—(उपसंहार) २४३—२५६

शंकराचार्य के मायावाद पर विहंगम दृष्टि, शंकराचार्य के मायावाद की विशेषताओं पर एक दृष्टिपात, शंकराचार्य के सम्बन्ध में प्रसिद्ध 'प्रच्छन्न बुद्धत्व' वाली धारणा का निराकरण, वेदान्त-दर्शन में आचार्य शंकर और उनके मायावाद का स्थान।

१२ परिशिष्ट— पृष्ठ २५७—२६४

परिशिष्ट १—संकेत-निर्देश।

परिशिष्ट २—सहायक ग्रन्थ-सूची—

(क) संस्कृत-ग्रन्थ।

(ख) आंग्ल-ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकायें आदि।

(ग) हिन्दी-ग्रन्थ एवं पत्र। (घ) बंगला-ग्रन्थ।

(ङ) मराठी-ग्रन्थ। (च) अपभ्रंश-ग्रन्थ।

(छ) संस्कृत-जर्मन-ग्रन्थ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शङ्कराचार्य

[उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन]

प्रथम-अध्याय

विषय--प्रवेश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य का महत्त्व

भारतीय-दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य के महत्त्व की दिशा अत्यन्त व्यापक एवं सर्वतोमुखी है। शंकराचार्य-दर्शन-जगत् के सूर्य हैं और उन्होंने अपने आलोक से भारतीय-दर्शन के भ्रान्त-दार्शनिक को एक उपयुक्त दिशा दी है। माधवाचार्य[1] (१४ वीं शताब्दी) के शब्दों में मेरा विश्वास है कि शंकराचार्य जैसे महान् दार्शनिक के महत्त्वांकन में मैं उसी प्रकार हास्य का पात्र बनूंगा जिस प्रकार कि बालक अपने हाथों से चन्द्रमा के पकड़ने का उद्योग कर उपहासास्पद बनता है। परन्तु अपेक्षित होने के कारण इस स्थल पर शंकराचार्य के महत्व-दर्शन का सरल प्रयास किया जायगा। शंकराचार्य की दार्शनिक-देन से प्रभावित होकर भारतीय एवं पश्चिमी सभी विद्वानों ने उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। यहां इन विद्वानों की कतिपय उक्तियां उद्धृत करने के उपरान्त आचार्य के दार्शनिक महत्व का विवेचन किया जायगा।

अद्वैत वेदान्त के प्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदन सरस्वती (१६ वीं शताब्दी) अपने ग्रन्थ-सिद्धान्त बिन्दु के आरम्भ में शंकराचार्य को शिव का अवतार माना है।[2] (इसी विद्वान् ने शांकर दर्शन से प्रभावित होकर यहां तक कहा है कि मैं उन व्यास की स्तुति नहीं करता जो सूत्रों के द्वारा भी वेदान्त के समग्र तात्पर्य को ग्रथित नहीं कर सके।) इसलिये सूत्रों के बिना ही जिन्होंने वेदान्त के सकल तात्पर्य को (अपने भाष्य-ग्रन्थों में) ग्रथित कर दिया, ऐसे शंकराचार्य और सुरेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।[3] यह उक्ति आचार्य के अद्वितीय महत्त्व की सूचक है। इसके अतिरिक्त अद्वैत-वेदान्त के, शंकर-परवर्ती वाचस्पति मिश्र[4] (९ वीं शताब्दी),

---

१. शंकर दिग्विजय १।१२ श्रवण नाथ मंदिर हरिद्वार संवत् २००० प्रथम संस्करण।

२. श्री शंकराचार्यं नवावतारं।
विश्वेश्वरं विश्व गुरुं प्रणम्य।
—सिद्धान्त विन्दु पृ० ३।
अच्युत ग्रन्थमाला काशी, १९३२ प्रथम संस्करण।

३. न स्तौमितं व्यासमशेषमर्थं सम्यङ् न सूत्रैरपि योबबन्ध।
विनापि तैः संग्रथिताखिलार्थं तं शंकरं नौमि सुरेश्वरं च॥
—सिद्धान्त विन्दु पृ० २४७।

४. भामती पृ० १, २। बालशास्त्री संपादित।
—Asiatic Society of Bengal.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अमलानन्द[1] (१३ वीं शताब्दी) और माधवाचार्य[2] (१४ वीं शताब्दी) प्रभृति अनेक विद्वानों ने विविध प्रकार से शंकराचार्य का गुणगान किया है। इधर बीसवीं शती के शांकर वेदान्त के प्रसिद्ध विद्वान् भारती कृष्ण तीर्थ ने शंकराचार्य को 'गूढ़ तत्त्वोपदेष्टा' कहकर महती प्रशंसा की है।[3]

बंगीय विद्वान् स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती ने शंकराचार्य के महत्व का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—

"शंकरेर भाष्य प्रसन्न गम्भीर। तांहार भाष्य अचल सिन्धुर मत गम्भीर, अटल पर्वतेरन्याय अघृष्य, सूर्येर न्याय प्रोज्वल एवं चन्द्रेर न्याय सुशीतल। ··· ··· विचारेर तीक्ष्णताय तिनि साक्षात् सरस्वती शंकर दार्शनिक क्षेत्रे सार्वभौम सम्राट्, चिन्ता राज्ये चक्रवर्ती ओ मनीषाय महाराजाधिराज।"[4] (अर्थात शांकर भाष्य प्रसन्न गम्भीर है। शंकराचार्य का भाष्य अचल सिन्धु के समान गम्भीर, अटल पर्वत के समान अघृष्य, सूर्य के समान प्रोज्वल और चन्द्रमा के समान सुशीतल है। ··· · विचार-तीक्ष्णता में शंकर साक्षात् सरस्वती है। शंकर दार्शनिक क्षेत्र में सार्वभौम सम्राट् है। वे चिन्ता राज्य के चक्रवर्ती और मनीषा में महाराजाधिराज हैं।)

भारतीय दर्शन के आधुनिक समालोचक विद्वानों ने भी शांकर-दर्शन का गुणगान भिन्न-भिन्न रूप से किया है। डा० घाटे ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद को सर्वोच्च कहा है। इस आलोचक विद्वान् का कथन है कि शंकर जैसी मानवीय विचारों की उन्नतता अन्यत्र अलभ्य है।[5] डा० दास गुप्ता का कहना है कि शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित एवं उनके प्रसिद्ध अनुयायियों द्वारा विकसित दर्शन का ऐसा प्रभाव है कि जब कभी हम वेदान्त दर्शन का नाम लेते हैं तो उससे शांकर दर्शन का ही तात्पर्य होता है।[6] डा० राधाकृष्णन् का कथन है कि शकराचार्य का

१. वेदान्त कल्पतरु, प्रथम भाग पृ० १।
—इ० जे० लजारस एण्ड कम्पनी, बनारस १८९५।

२. शंकर दिग्विजय १।८।

३. देखिये, ब्रह्मसूत्र शांकर—भाष्य पर भारती कृष्ण तीर्थ का "फोरवर्ड" पृ० ३।

४. वेदान्त दर्शनेर इतिहास प्रथम भाग पृ० ८३, राजेन्द्र नाथ घोष सम्पादित।
श्री शंकर मठ बरिशाल प्रकाशन प्रथम संस्करण वंगाब्द १३३२।

5 V. S. Ghate, The Vedanta, Page 54.
Bhandarkar Oriental Institute, Poona.

6 Das Gupta, Indian Philosophy, Vol. I, Page 429.
Cambridge, London, Third Edition.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दार्शनिक सिद्धान्त आध्यात्मिक गाम्भीर्य एवं तार्किक शक्ति में अद्वितीय है।[1]

भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त पश्चिमी विद्वानों ने भी शांकर दर्शन की आलोचना करते समय उसकी विविध प्रकार से प्रशंसा की है। पश्चिमी विद्वान् सर चार्ल्स इलियट् वैदिक दर्शन पर आधारित आचार्य के दार्शनिक सिद्धान्त को स्थिरता, पूर्णता एवं गम्भीरता की दृष्टि से भारतीय दर्शन के क्षेत्र में प्रथम कोटि का मानते हैं।[2] ई० बी० एफ० टोमलिन का, शंकराचार्य की अद्वितीय प्रतिभा का वर्णन करते हुए कथन है कि शंकर उन सब दार्शनिकों में महान् हैं जिन्हें आज पश्चिम में प्राप्त प्रतिष्ठा की अपेक्षा अधिकतर प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए थी। इसी स्थल पर आगे टोमलिन का कथन है कि शांकर दर्शन की दिशा लगभग वही थी। जिसको उत्तरकाल में आकर जर्मन दार्शनिक कान्ट ने अपनाया।[3] ब्रह्म-सूत्र-शंकर भाष्य के अनुवादकार डा० थीबो ने आचार्य के दार्शनिक सिद्धान्त की अत्यन्त प्रशंसा की है। डा० थीबो का विचार है कि शंकराचार्य के धार्मिक वेदान्त की तुलना विचारों की निर्भीकता, गम्भीरता और सूक्ष्मता के क्षेत्र में न किसी शांकर सिद्धान्त के विरोधी वेदान्त सिद्धान्त से की जा सकती है और न किसी अवेदान्तिक सिद्धान्त से।[4]

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में भारतीय और पश्चिमी विद्वानों द्वारा की गई शंकराचार्य की गीत-स्तुति एवं महत्त्व प्रदर्शन का कारण आचार्य की विलक्षण प्रतिभा और उनके दर्शन का अद्वितीय रूप है। दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य जैसा उदीयमान प्रतिभा एवं उदात्त व्यक्तित्व वाला अन्य आचार्य अथवा विद्वान् दृष्टि-गोचर नहीं होता। अल्पावस्था में ही जो कार्य आचार्य शंकर ने कर दिखाया वह किसी अन्य भारतीय दार्शनिक ने नहीं। यही कारण है कि आचार्य को साक्षात्

1. Shankar's system is unmatched for its metaphysical depth and logical power. Radhakrishnan, Indian Philosophy Vol. II, Page 657–London, Allen & Unwin.
2. He··· ·· in consistency, thoroughness and profundity holds the first place in Indian pnilosophy.
Illiot, Hinduism & Budhism, Vol. II (IInd Edition)
Page 208, Broad way London.
3. The Great philosophers (the eastern world, Page 218
Skeffington London 1952, First Edititdon.
4. ··· ··· ··· neither those forms of the Vedanta which diverge from the view represented by Sankara, nor any of the non Ved-antic systems can be compared with the so called orthodox Vendanta in boldness, depth and subtility of speculation. Thib-out, Introduction (S. B. E Vol. XXXIV Page XIV)
Oxford Clarendan, 1890.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिव का अवतार कहा गया है। अपनी विलक्षण दार्शनिक प्रतिभा के द्वारा शंकराचार्य ने एक ऐसे दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना की है जो न एकदम भौतिकवाद है, न कोरा कर्मवाद और न शुष्क ज्ञानवाद। आचार्य का यह सिद्धान्त वैदिक धर्म एवं दर्शन पर आधारित अद्वैतवाद का सिद्धान्त है। शंकराचार्य का अद्वैतवाद कर्म और ज्ञान, स्थूल और सूक्ष्म का समन्वय भूत सिद्धान्त है। यद्यपि इस सिद्धान्त के बीज वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिताओं एवं उपनिषदों में पूर्ण रूप से वर्तमान थे, परन्तु उनके असमन्वित होने के कारण वैदिक दर्शन दुरूह था। सांख्य, बौद्ध आदि दर्शनों की उत्पत्ति का मूल कारण यदि देखा जाय तो औपनिषद् दर्शन की अस्पष्टता ही थी। महर्षि बादरायण ने औपनिषद्-दर्शन के सिद्धान्तों को सूत्र-बद्ध करने का प्रयास किया था, परन्तु वे इस प्रयास में असफल ही रहे। शंकराचार्य ने मायावाद की स्थापना के द्वारा अद्वैत वेदान्त का प्रतिपादन करके उपनिषदों के परस्पर विरोधी सिद्धान्तों में सामंजस्य स्थापित कर दिया। आचार्य की यह समन्वयवादिता भारतीय दर्शन के क्षेत्र में बेजोड़ है।

(दर्शन के क्षेत्र में आचार्य शंकर के महत्त्व का प्रमुख कारण मायावाद का सिद्धान्त है। मायावाद की स्थापना के द्वारा शंकराचार्य ने अद्वैत दर्शन को पलायनवादी एवं शून्यवादी होने से बचाया। माया के सम्बन्ध में अनिर्वचनीय ख्यातिवाद की प्रतिष्ठा करके माया को शशश्रृंगवत् न मान कर उसे व्यावहारिक रूप दिया।) (इस प्रकार माया के व्यावहारिक दृष्टिकोण के आधार पर व्यावहारिक सत्ता की स्थापना करके शंकराचार्य ने लोक की कर्म-धर्म मर्यादा की रक्षा के लिये मायावाद की स्थापना की थी।) माया के उक्त स्वरूप की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय दर्शन में कर्मवाद और आचारवाद के आदर्श सिद्धान्तों को भी कोई हानि न पहुंची। शंकराचार्य ने सृष्टि रचना के सम्बन्ध में ईश्वर को धर्माधर्म का अपेक्षी[1] सिद्ध करके भारतीय आचारवाद को और भी दृढ़ बना दिया। आचार्य के मठस्थापना कार्य को भी भारतीय नैतिकता एवं दर्शन का ही पोषक कहा जायगा। भारतीय दर्शन के अध्ययन एवं मनन के रूप में आज भी ये मठ पूर्ण रूप से सहायक हो रहे हैं। मेरा विचार तो यह है कि किसी दार्शनिक द्वारा अपने धर्म-दर्शन के प्रचार के लिये ऐसा कार्य भारत ही नहीं विश्व भर में अद्वितीय है।

दर्शन शास्त्र की दुरूहता प्रसिद्ध है। परन्तु आचार्य शंकर इसके अपवाद हैं। उन्होंने मूल दार्शनिक ग्रंथों पर भाष्य ग्रन्थों की रचना के द्वारा कला और दर्शन का संयोग करके दार्शनिक विषय को अति सरल बना दिया है। आचार्य

---

१. सापेक्षो हीश्वरो विषमां सृष्टिं निर्मिमीते ? किमपेक्षत इति चेत्, धर्माधर्मावपेक्षत इतिवदामः। ब्र० सू० शा० भा० २।१।३४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के भाष्य ग्रन्थों की शैली अति सरल एवं बालबोद्धव्य है। आचार्य की भाषा सम्बन्धी सरलता के सम्बन्ध में C. N. Krishnaswami Aiyer की उक्ति उल्लेख्य है। उन्होंने लिखा है :—

It has been said that the sublimest philosophy expresses itself in the simplest language, and, if we want the best illustration to prove it, we have to go to Shankara for it. Bewitching and marvellous and simple. It is at once the language of the child and the philosophy in one ![1]

वेदान्त दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य का भाष्य-प्रणयन का प्रयास सब से पहला और सर्वोत्तम है। आज जिन रामानुज प्रभृति आचार्यों के दार्शनिक सिद्धान्तों से शंकराचार्य के दार्शनिक सिद्धान्त की तुलना की जाती है उन्होंने भी आचार्य शंकर की भाष्य-रचना से प्रेरित होकर ही ब्रह्म-सूत्र पर विभिन्न भाष्य रचनायें की थीं। इस प्रकार वेदान्त के क्षेत्र में भाष्य रचना के मूल प्रवर्तक भी शंकर ही हैं उक्त विचार दृष्टि से यह प्रतीत होता है कि भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य जैसा अद्भुत कार्य किसी अन्य दार्शनिक ने नहीं किया है। इस प्रकार भारतीय दार्शनिकों में शंकराचार्य सर्वोच्च हैं और उनके दर्शन की कतिपय विशेषतायें पाश्चात्य दर्शन-वेत्ताओं के लिये भी अनुकार्य रही हैं।

शंकराचार्य का जन्म स्थान :—

भारत की पुण्य-भूमि पर समुत्पादिनी अलौकिक प्रतिभा का अवतरण शंकराचार्य के रूप में केरल प्रान्त के कालटी नामक ग्राम में हुआ था। कालटी को ही कालड़ी, कालादि आदि नामों से भी उच्चारित किया जाता है। एलिस ने इस ग्राम का नाम कालडी बतलाया है।[2] केरल प्रदेश में कोचीन शोरानूर रेलवे लाइन पर 'आलवाई' नामक एक छोटा स्टेशन है। इस स्टेशन से दक्षिण की ओर कालटी लगभग पांच छः मील की दूरी पर स्थित है। शंकराचार्य के माता-पिता 'पन्नियूर' ग्राम के निवासी थे। पन्नियूर का ही उल्लेख शशल ग्राम के नाम से भी मिलता है। कुछ दिनों के बाद आचार्य शंकर के माता-पिता कालटी में आकर बस गये थे।

शंकराचार्य के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में विद्वानों में ऐकमत्य न होने के कारण कई किंवदन्तियां प्रसिद्ध हैं। आनन्दगिरि का कथन है कि चिदम्बरम् में एक सात्विक ब्राह्मण अपनी पत्नी के सहित निवास करता था। इसके बाद किसी

1. Three great Acharyas P. 55-56.
2. Indian Antiquary VII Page 282.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समय वह ब्राह्मण संसार का त्याग करके किसी समीपवर्ती वन में चला गया। ब्राह्मण के वन को चले जाने पर उसकी ब्राह्मणी ने चिदम्बरम् के भगवान् शंकर की आराधना की। भगवान् के वरदान से गर्भ धारण करके ब्राह्मणी ने जो संतान उत्पन्न की थी वह शंकर थे। इस कहानी के आधार पर आनन्दगिरि शंकर का जन्म स्थान चिदम्बरम् ही मानते हैं।[१]

आचार्य के जन्म स्थान के सम्बन्ध में एक और कहानी प्रसिद्ध है। मणिमंजरीकार कहते हैं कि कालटी में एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी जो वैराग्य जीवन व्यतीत करती थी। वह ब्राह्मणी अपने वैराग्य जीवन से पथभ्रष्ट हो गई और उसने गर्भ धारण करके जो बालक उत्पन्न किया वह आचार्य शंकर थे। कहते हैं कि वह युवती विधवा ब्राह्मणी अपनी समवयस्क कन्याओं के साथ एक बार शिव के मंदिर में गई। मंदिर में साथ की अन्य कन्याओं की तरह उसने भी पुत्र प्राप्ति की याचना की। अतः भगवान् शंकर के वरदान स्वरूप उस ब्राह्मणी से शंकराचार्य उत्पन्न हुए। मालाबार देश में इस प्रकार सन्तान याचना की एक प्रथा थी।[२]

इस प्रकार शंकराचार्य के जन्म स्थान के सम्बन्ध में अनेक कहानियां और मत मिलते हैं। परन्तु ये मत प्रामाणिक नहीं प्रतीत होते। आनन्दगिरि का चिदम्बरम् वाला मत प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। इसके कई कारण हैं:—(१) सारे केरल प्रदेश की यह मान्यता है कि शंकराचार्य की माता 'पजुरपन्न इल्लम्' नामक नम्बूदरी ब्राह्मण कुल की थी। यह कुल सदा से त्रिचूर के पास निवास कर रहा है। यह कुटुम्ब केरल प्रान्त का ही निवासी है। अतः शंकराचार्य को भी केरल प्रदेश का ही मानना चाहिये। (२) वह स्थान जहां शंकर ने अपनी माता का दाह-संस्कार किया था आज भी कालटी के पास ही स्थित है। इससे भी शंकर का जन्म स्थान कालटी ही सिद्ध होता है। (३) उक्त मत के सिद्ध होने में एक प्रमाण यह है कि बदरीनाथ के मंदिर के प्रधान पुजारी नम्बूदरी ब्राह्मण ही होते रहे हैं। इस मंदिर की प्रतिष्ठा आचार्य शंकर ने की थी और उन्होंने ही वैदिक विधि से मंदिर की पूजा व्यवस्था के लिये सर्वप्रथम अपने ही देश के नम्बूदरी ब्राह्मण की नियुक्ति की थी। तब से लेकर आज तक नम्बूदरी ब्राह्मण ही इस मन्दिर के प्रधान पुजारी होते हैं। (४) माध्वमत के अनुयायियों में मणिमंजरी के लेखक त्रिविक्रम भट्ट ने भी शंकराचार्य का जन्म स्थान कालटी ही बताया है।

---

१. ततः सर्वात्मकोदेवः चिदम्बरपुराश्रितः।
आकाश लिंग नाम्ना तु विख्यातोऽभून्महीतले॥
तत्र विद्वन्महेन्द्रस्य कुले द्विज गणाश्रिते।
जातः सर्वज्ञ नाम्ना तु कश्चिद् द्विज कुलेश्वरः॥

आनन्दगिरि, शंकर विजय पृ० ६। Asiatic Society of Bengal.

२. श्री ग्रेट आचार्याज, पृ० १०। —नाटेसन मद्रास।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उक्त कारणों के आधार पर केरल प्रदेश के अन्तर्गत कालटी ग्राम का नम्बूदरी परिवार ही शंकर की जन्म-भूमि सिद्ध होता है। अतः आनन्दगिरि का मत दुर्बल ही कहा जायगा। त्रिविक्रम भट्ट (मणिमंजरी के लेखक) की शंकराचार्य की माता की पथ-भ्रष्ट होने की कहानी भी अनुचित आरोपमात्र प्रतीत होती है। वास्तव में यदि शंकर की माता मणिमंजरीकार के कथनानुरूप चरित्र भ्रष्ट हुई होती तो शंकर जैसा पावन चरित्र का मानव माता की अभिलाषानुसार शास्त्र एवं समाज के विपरीत माता का दाह संस्कार न करता। संन्यासी शंकर द्वारा माता की अन्त्येष्टि क्रिया का मूल कारण शंकर का पावन स्नेह था। आनन्दगिरि और त्रिविक्रम भट्ट के द्वारा निर्दिष्ट कहानियों की अप्रामाणिकता का एक कारण यह भी है कि माधव ने अपने ग्रन्थ में इन कहानियों का संकेत तक नहीं किया है। यदि माधव को इनका तनिक भी ज्ञान होता तो वे अपने शंकर विजय में भारती आदि की कहानी की तरह इन कहानियों की भी अवश्य चर्चा करते।

उक्त तर्कों के आधार पर शंकराचार्य का जन्म-स्थान केरल प्रान्त का कालटी ग्राम ही सिद्ध होता है।

शंकराचार्य का स्थिति काल:—

आश्चर्य है कि शंकराचार्य जैसे धर्म और दर्शन के महान् विचारक के स्थितिकाल के सम्बन्ध में आज तक कोई निश्चित निर्णय नहीं हो सका है। इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। यहां प्रमुख मतों का विवेचन करते हुए अन्य तर्कों के आधार पर शंकराचार्य के काल-निर्णय का सहज प्रयास है।

प्रथम मत—'केरलोत्पत्ति' नामक ग्रन्थ के अनुसार शंकराचार्य का समय ४०० ई० है।[1] इस मत के अनुसार आचार्य का देहावसान ३२ वर्ष की अवस्था में न मानकर ३८ वर्ष की अवस्था में माना गया है।

द्वितीय मत—द्वारिका मठ और कांची के कामकोटि पीठ के अनुसार भी आचार्य शंकर का जन्म काल ईस्वी पूर्व पंचम शतक प्रतीत होता है।

तृतीय मत—तैलंग की दृष्टि से आचार्य का स्थितिकाल छठी शताब्दी का अंतिम भाग है इस मत की रक्षा के लिये तैलंग का कथन है कि आचार्य द्वारा ब्रह्म सूत्र भाष्य में संकेतित पूर्णवर्मा मगध का बौद्ध राजा था।[2]

---

1. Indian Antiquary VII—A summary of the History of the prosperous Shankaracharya, Page 282.
2. Three great Acharyas, P 13.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चतुर्थ मत—सर आर० जी० भण्डारकर आचार्य का जन्म काल ६८० शताब्दी से भी कुछ पूर्व मानने का प्रयास करते हैं।[1]

पंचम मत—बर्नेल तथा सिवैल ने आचार्य का जन्म काल सातवीं शताब्दी स्वीकार किया है।[2]

षष्ठ मत—Lowis Rice ने आचार्य के काल निर्णय के अर्थ श्रृंगेरी मठ के गुरु परम्परा काल को एक एक करके गिना था। उन्होंने इस परिगणन के आधार पर शंकराचार्य का जीवन काल ७४० और ७६७ शताब्दी का मध्यभाग स्वीकार किया है।

सप्तम मत—मैक्समूलर और प्रो० मैक्डोनल के अनुसार शंकराचार्य का जन्मकाल ७८८ शताब्दी और मृत्यु काल ८२० शताब्दी है।[3] कीथ भी आचार्य का जन्मकाल ७८८ ही मानते हैं। परन्तु आचार्य के मृत्यु काल ८२० शताब्दी के सम्बन्ध में वे कुछ संदिग्ध प्रतीत होते हैं। कीथ अपनी अनुमान परक शैली के द्वारा ८२० शताब्दी को आचार्य की मृत्यु अथवा संन्यास ग्रहण करने का काल स्वीकार करते हैं।[4] डा० दास गुप्ता[5] प्रभृति विद्वान् भी मैक्समूलर और मैक्डोनल के मत का ही समर्थन करते हैं।

अष्टम मत – वैंकटेश्वर ने शंकराचार्य का समय ८०५–८९७ ई० तक माना है। इस प्रकार वैंकटेश्वर के मत में शंकराचार्य की अवस्था लगभग ९२ वर्ष सिद्ध होती है। शंकराचार्य की ८५ वर्ष की अवस्था सिद्ध करने के लिये वैंकटेश्वर ने यह प्रमाण दिया है कि आचार्य ने 'देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र', में 'मया पंचाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि' कह कर ८५ वर्ष की अवस्था का संकेत किया है।[6]

आलोचना—

शंकराचार्य द्वारा ब्रह्मसूत्र भाष्य में उद्धृत 'यदन्तर्ज्ञेय रूपं तद्बहिर्वदवभासते' अंश दिङ्नाग की आलम्बन कारिका से उद्धृत किया गया है। दिङ्नाग का काल पांचवीं शताब्दी है। इसलिये शंकराचार्य का जन्म काल पांचवीं शताब्दी से पूर्व कदापि निश्चित नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त शंकराचार्य के प्रधान शिष्य सुरेश्वराचार्य ने अपने बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक में प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक

1. Report on the search for Sanskrit Mss 1882 Page 15.
2. बर्नेल—South Indian Paleography, Page 37-111.
   सिवेल—List of Antiquities in Madras, Page 177.
3. Radhakrishnan, Indian Philosophy, Vol II, Page 447.
4. Keith, A History of Sanskrit Literature, Page 476.
5. Indian Philosophy vol. I, Page 418.
6. J. R. A. S, (1916) Page 151-162.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्मकीर्ति का उल्लेख किया है।[1] धर्मकीर्ति की कारिका[2] के 'सहोपलम्भ नियमादभेदः' अंश को भी शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य[3] में उद्धृत किया है। यह तर्क भी आचार्य के ६५० ई० के परवर्ती होने में सहायक है। क्योंकि धर्मकीर्ति का समय ६३५ ई० से ६५० ई० स्वीकार किया गया है। इस प्रकार अन्तःसाक्ष्य के आधार पर चतुर्थ, पांचवीं और छठी शताब्दी के मत सारयुक्त नहीं प्रतीत होते। वहिसाक्ष्य के आधार पर सातवीं शताब्दी के मत भी खण्डित हो जाते हैं। भामतीकार वाचस्पति मिश्र ने अपने न्याय सूची निबन्ध नामक ग्रन्थ में इस ग्रन्थ (न्याय सूची निबन्ध) का रचना काल 'वस्वंक वसुवत्सरे' कहकर ८९८ संवत् लिखा है।[4] इस संवत् से विक्रम संवत् का ही अभिप्राय प्रतीत होता है। इसलिये वाचस्पति मिश्र का समय ईस्वी के नवम शतक का मध्यभाग सिद्ध होता है। अतः शंकराचार्य का आविर्भाव काल नवम शतक के मध्यकाल से निश्चय ही पूर्व होना चाहिये। परन्तु यह काल इतना पूर्व नहीं माना जा सकता कि शंकराचार्य का स्थिति काल सातवीं शताब्दी मान लिया जाय। वाचस्पति मिश्र की शारीरक भाष्य की एकमात्र पाण्डित्य पूर्ण व्याख्या और शंकराचार्य के स्थिति काल में इतना लम्बा अन्तर नहीं माना जा सकता। वैंकटेश्वर का आचार्य की ८५ वर्ष की अवस्था वाला मत भी निराधार प्रतीत होता है जिसका कारण यह है कि वैंकटेश्वर द्वारा संकेतित 'देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र' के आद्य शंकर द्वारा रचित होने में कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर शंकराचार्य का स्थिति काल ७८८–८२० ई० मानना ही उचित प्रतीत होता है। इस प्रकार आचार्य की अवस्था ३२ वर्ष की निश्चित होती है। आचार्य की इस अवस्था के सम्बन्ध में तीन पत्रों की एक छोटी पुस्तक भी प्रमाण है जो डा० के० वी० पाठक को वेलगांव में प्राप्त हुई थी। इस पुस्तक के निम्नोद्धृत अंश से आचार्य की अवस्था ३२ वर्ष सिद्ध हो जाती है।

---

१. त्रिष्वेव त्वविना भावादिति यद्धर्मकीर्तिना।
प्रत्यज्ञायि प्रतिज्ञेयं हीयेत ताऽसो न संशयः ॥ वृ० भा० वा० ४।३

२. सहोपलम्भ नियमादभेदो नील तद्धियोः।
भेदैश्च भ्रान्त विज्ञानै ह'श्यतेन्दाविवाद्वये ॥ प्रमाण विनिश्चय तथा प्रमाणवार्तिक।

३. ब्र० सू० शा० भा० २। २। २८

४. न्याय सूची निबन्धोऽयमकारि विदुषां मुदे।
श्री वाचस्पतिमिश्रेण वस्वंक वसु वत्सरे ॥ न्याय सूचीनिबन्ध।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुष्टाचारविनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले ।
सएव शंकराचार्यः साक्षात् कैवल्यनायकः ।।
अष्टवर्षे चतुर्वेदान् द्वादशेसर्वशास्त्रकृत ।
षोडशेकृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात् ।।

डा० के० वी० पाठक ने भी अनेक तर्कों के आधार पर आचार्य का काल ७८८ से ८२० ही माना है।[१] नीलकण्ठ भट्ट रचित 'शंकरमन्दार सौरभ' के अनुसार भी आचार्य का जन्म काल ७८८ ई० वैशाख शुक्ल १० निश्चित होता है।[२] इस प्रकार अनेक प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित होता है कि शंकराचार्य का जन्म वर्ष ७८८ ई० है और मृत्यु वर्ष ८२० ई० ।

शंकराचार्य का संक्षिप्त जीवन वृत्त—

केरल प्रदेश में वृष पर्वत पर स्थित भगवान् चन्द्रमौलि का मंदिर था। जिसका निर्माण तत्कालीन राजा राजशेखर ने कराया था। राजा ने मंदिर की व्यवस्था के लिये कुछ ब्राह्मण निश्चित किये थे। उन्हीं ब्राह्मणों में से एक ब्राह्मण विद्याधिराज थे। ये विद्याधिराज ही शंकर के पितामह थे।[३] इन्हीं के पुत्र शिवगुरु शंकर के पिता थे। शिवगुरु की पत्नी के कई नाम प्रचलित हैं। इनमें सुभद्रा, सती, विशिष्टा और आर्याम्बा प्रमुख हैं। इन सब में माधव द्वारा अनुमोदित सती नाम ही अधिक प्रामाणिक है।[४] आनन्दगिरि ने शंकर की माता का नाम 'विशिष्टा' बतलाया है।[५] भगवान् शंकर की आराधना के द्वारा ही शंकराचार्य का अवतार हुआ था। इनके पिता शिवगुरु और उनकी पत्नी सती ने सन्तान न होने पर आशुतोष भगवान शंकर की आराधना की थी। आराधना से प्रसन्न होकर एक रात्रि को भगवान् शंकर ने शिवगुरु को ब्राह्मण के वेश में दर्शन दिये

१. Dharmkirti and Shankaracharya (B.B.R A.S. XVIII PP. 88–96)
२. प्रासूत तिष्यशारदामतियातवत्या–
मेकादशाधिक शतोनचतुः सहस्त्र्याम् ।
संवत्सरे विभवनाम्नि शुभेमुहूर्ते–
राधे सिते शिवगुरोर्गृहिणी दशम्याम् ।। शंकर मन्दार सौरभ ।
३. Three great Acharyas, Page 9.
४. माधवाचार्य, शंकरदिग्विजय २।५
५. शंकरदिग्विजय २।७१.
६. साकुमारी सदाध्यान-सक्ताभूत ज्ञान तत्परा ।
विशिष्टेति च नाम्ना तु प्रसिद्धाभूत् महीतले ।। आनन्दगिरि शंकर विजय, पृ० ९ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और पुत्र का वरदान दिया। शिव के वरदान स्वरूप प्राप्त होने के कारण ही इनका नाम शंकर रखा।

शंकर का बाल्यकाल—

शंकराचार्य शिव के अवतार थे। विद्याधिराज के पुत्र शिवगुरु को वृष पर्वत पर रहने वाले भगवान् शिव ने अवतार लेने के लिये अपना पिता बनाने की इच्छा प्रकट की थी।[1] इसीलिये शंकराचार्य भगवान् शिव के अवतार कहे जाते हैं। शंकराचार्य के अवतार होने के चिह्न बाल्यावस्था से ही प्रतीत होते थे। दो वर्ष की ही अवस्था में शंकर को पुराणादि की कथायें कण्ठस्थ हो गई थीं। शंकर अपने जीवन का तीसरा वर्ष ही बिता पाये थे कि इनके पिता शिवगुरु का स्वर्गवास हो गया। जब शंकर की आयु का पांचवां वर्ष आरम्भ हुआ तो उन्हें गुरु गृह विद्याध्ययन के निमित्त भेज दिया गया। दो ही वर्ष के भीतर शंकर ने वेद, वेदान्त और वेदांगों का अध्ययन पूर्ण कर लिया। इसके उपरांत शंकर घर चले आये।

शंकर की माता ने इनका विवाह करने की इच्छा प्रकट की परन्तु इन्होंने संन्यास ग्रहण करने का दृढ़ विचार प्रस्तुत किया। परन्तु माता ने उन्हें इसकी आज्ञा नहीं दी। माता की अस्वीकृति से शंकर का विचार शिथिल नहीं हुआ। उनके हृदय में संन्यास-ग्रहण की तीव्र अभिलाषा बनी ही रही। अवसर वश शंकर माता के साथ एक दिन नदी में स्नान करने गये। वहां एक मकर ने शंकर का पैर पकड़ लिया। इस पर शंकर ने अपनी माता से कहा कि यदि आप मुझे संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दें तो यह मकर मेरा पैर तुरन्त छोड़ देगा। मोहवश पुत्र की जीवन रक्षा के लिये माता ने संन्यास की आज्ञा दे दी। आज्ञा का देना था कि मकर ने शंकर का पैर छोड़ दिया। उसी समय शंकर ने संन्यास ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। इस प्रकार ८ वर्ष की अवस्था में ही शंकर ने संन्यास ग्रहण कर लिया। संन्यास ग्रहण करके जाते समय शंकर माता की मृत्यु के पश्चात् उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने के वचन भी देते गये। कहते हैं गृह-त्याग के अवसर पर शंकर से उनके कुल देवता श्री कृष्ण ने स्वप्न में कहा कि यदि तुम यहां से चले जाओगे तो यह नदी हमारे मन्दिर को गिरा देगी। इसलिये इस मूर्ति को किसी अन्य स्थान पर रख दो। इस पर शंकर ने उस मूर्ति को एक ऊंचे टीले के ऊपर रख दिया।

१ रुद्रो वृषाद्रि निलयो वतरीतुकामो।
यत् पुत्रमात्मपितरं समरोचयत् सः॥ शंकरदिग्विजय, २।४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकर की गुरु गोविन्द भगवत्पाद से भेंट--

संन्यास के गुरु की खोज में शंकर नर्मदा के तट पर पहुंचे। वहां पर्वत की गुहा में गोविन्दाचार्य महात्मा तपस्या कर रहे थे। शंकर ने उनका दर्शन गुहा के छिद्र से किया। गुफा के बाहर से ही शंकराचार्य ने गोविन्दाचार्य की स्तुति की। प्रसन्न होकर गोविन्दाचार्य जी ने अपने चरण को गुहा के बाहर निकाल दिया। शंकराचार्य ने चरण पूजा की और चातुर्मास्य पर्यन्त भूमिसुर ग्राम में रहकर गुरु गोविन्द की प्रतीक्षा की। जब चातुर्मास्य के उपरान्त गोविन्दाचार्य जी गुफा से निकले तो उन्होंने शंकराचार्य को उपदेश दिया और आज्ञा दी कि तुम काशी जाकर समस्त अवैदिक मतों का खण्डन करके वेदान्त सम्मत अद्वैत मत का प्रतिपादन करो और वेदान्त सूत्र पर भाष्य लिखो। गुरु की आज्ञा प्राप्त करके शंकर काशी चले आये।

काशी में शंकराचार्य--

काशी में रहकर शंकराचार्य जी ने गुरु की आज्ञा के अनुसार वैदिक-धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया। वहीं रहकर सनन्दन को अपना शिष्य बनाया। एक बार प्रातःकाल के समय जब आचार्य शंकर गंगा स्नान से लौट रहे थे तो मार्ग में एक चाण्डाल मिला जो चार श्वान लेकर मार्ग में चला जा रहा था। शंकराचार्य उस चाण्डाल को समीप देखकर उससे घृणा प्रकट करने लगे। इस पर उस चाण्डाल ने कहा कि आत्मा चिद्रूप, असंग, सद्रूप, आनंदरूप, पवित्र एवं भेद रहित और सर्वव्यापक है। अतः आत्मा में भेद की कल्पना करने वाला व्यक्ति कदापि वैदिक मत की रक्षा एवं अद्वैत मत का प्रतिपादन नहीं कर सकता। उसने शंकर से कहा कि तुम्हारा संन्यास एवं ज्ञान पूर्णरूप से निष्फल है। शंकराचार्य चाण्डाल की इस बात को सुनकर आश्चर्यचकित हो उठे और लज्जित होकर क्षमा मांगने लगे। इतने ही में शंकर ने उस चाण्डाल के स्थान पर साक्षात् भगवान् शंकर को देखा। भगवान् शंकर ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने का वरदान दिया और समस्त अवैदिक मतों के खण्डन की आज्ञा दी। भगवान् शंकर तत्काल ही लुप्त हो गये। काशी में रहकर ही आचार्य ने ब्रह्मसूत्र, उपनिषदों और गीता पर भाष्य रचना की और साथ ही साथ अवैदिक मतानुयायियों को परास्त किया।

कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य--

दक्षिण देश में कुमारिल भट्ट का नाम प्रसिद्ध था। आचार्य कुमारिल मीमांसक थे। ये जैमिनि मत के अनुयायी थे। जैन एवं बौद्ध मत का खण्डन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और निज मत का प्रतिपादन आचार्य शंकर का अभीष्ट था। फलतः बौद्ध एवं जैन मत के विद्वानों को परास्त करके उन्होंने निज मत का पूर्णरूप से प्रतिपादन किया। कर्म सिद्धान्त के समर्थक आचार्य कुमारिल शांकरभाष्य को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु प्रयाग में शंकर और कुमारिल की भेंट का यह समय बड़ा वीभत्स था। आचार्य कुमारिल उस समय अपनी निरीश्वरवादिता पर पश्चात्ताप करके अपने शरीर को भस्म करने के लिये चिता में विराजित किये हुए थे। कहते हैं उस समय शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की थी। परन्तु अर्धदग्ध कुमारिल विवश था। इसलिये उसने शंकराचार्य से माहिष्मतीपुरी के निवासी उद्‌भट विद्वान् मण्डनमिश्र से शास्त्रार्थ करने को कहा। मण्डनमिश्र कुमारिल के बहनोई थे। कुमारिल के कहने पर शंकर माहिष्मती चले आये।

शंकराचार्य और मंडनमिश्र—

मंडनमिश्र अपने समय के उद्‌भट विद्वानों में से थे। उनकी विद्वत्ता का परिचय इसी से हो जाता है कि जब शंकराचार्य ने माहिष्मतीपुरी में जाकर एक स्त्री से मण्डनमिश्र का घर पूछा तो उसने कहा कि—वेद स्वतः प्रमाण है या परतः प्रमाण इस विषय की चर्चा नीड़स्थ शुकांगनायें जिस द्वार पर कर रही हों, वही मण्डनमिश्र का घर है। साथ ही कर्म स्वतः फल देता है अथवा ईश्वर कर्म का फल देता है, यह चर्चा जहां नीड़स्थ शुकांगनायें कर रही हों, वही मण्डनमिश्र का घर है। स्त्री के इन वाक्यों को सुनकर शंकराचार्य चकित हो गये। जब शंकराचार्य मण्डनमिश्र के घर पहुंचे तो मण्डनमिश्र श्राद्ध कर्म में व्यस्त थे। गृह-द्वार बन्द करके वे श्राद्ध क्रिया कर रहे थे। परन्तु शंकराचार्य अपने योगबल से मण्डन मिश्र के समीप जाकर बैठ गये। मण्डनमिश्र क्रोध से व्याकुल हो उठे। दोनों विद्वानों का शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया। निर्णय के लिये मण्डन मिश्र की पत्नी भारती मध्यस्था नियुक्त हुई। भारती ने दोनों के गले में दो पुष्प मालायें पहिना दीं और कहा कि जिसकी माला सूख जायेगी वही पराजित समझा जायगा। शंकराचार्य अद्वैत मत का मण्डन कर रहे थे और मण्डनमिश्र कर्मवाद का। शास्त्रार्थ होते होते कई दिन बीत गये। फल यह हुआ कि मण्डन मिश्र की गले की माला कुम्हिला गई। पराजित होकर मण्डनमिश्र शंकराचार्य को अपना गुरु बनाने और संन्यास ग्रहण करने की प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये शंकराचार्य जी से प्रार्थना करने लगे। इसी बीच में अर्धांगिनी भारती ने कहा कि मेरी पराजय के बिना मेरे पति मण्डन-मिश्र की अर्ध पराजय समझी जायेगी। इस पर शंकराचार्य को भारती से शास्त्रार्थ करना पड़ा। जब भारती ने शंकराचार्य के समक्ष काम-शास्त्र के प्रश्न प्रस्तुत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किये तो बाल-ब्रह्मचारी शंकर निरुत्तर हो गये।। उन्होंने भारती से शास्त्रार्थ के लिये एक मास की अवधि मांगी। शंकराचार्य ने तुरन्त अमरुक राजा के शरीर में योगबल से अपने प्राण डाल दिये। आमरुक राजा तुरन्त जीवित हो उठे। इधर पद्मपादादि शिष्य शंकराचार्य के शरीर की रक्षा नर्मदा तटवर्ती वन में करते रहे। एक मास तक शंकराचार्य ने राज-भोग का आनन्द लेकर कामशास्त्र का पूर्ण अनुभव प्राप्त किया और फिर अपना शरीर धारण करके भारती के पास चले आये। इस बार भारती को शंकराचार्य के प्रश्नों का उत्तर न दे बन पड़ा। परिणामस्वरूप मण्डन ने शंकराचार्य से दीक्षा लेकर संन्यास ग्रहण कर लिया। शिष्य मण्डन का नाम सुरेश्वराचार्य रख दिया गया। प्रो० हिरियाना का मत है कि सुरेश्वर और मण्डनमिश्र भिन्न-भिन्न थे।[1]

शंकराचार्य द्वारा मठस्थापन—

मगध विजय के उपरांत शंकराचार्य दक्षिण की ओर चल पड़े। महाराष्ट्र जाकर उन्होंने शैव और कापालिकों को परास्त किया। एक कापालिक तो शंकराचार्य की ही बलि देने के उद्देश्य से उनका शिष्य हो गया परन्तु जब वह उनको बलि देने के लिये उद्यत हुआ तो तुरन्त उसे शंकर के शिष्य पद्मपादाचार्य ने मार डाला। परन्तु आचार्य शंकर कापालिक की तलवार के नीचे समाधिस्थ बैठे रहे। वहां से चलकर आचार्य शंकर ने मैसूर प्रांत में तुंगभद्रा के तट पर श्रृंगेरी मठ की स्थापना की। यहां का मठाधीश सुरेश्वराचार्य को बनाया। यहीं आचार्य को अपनी माता से सदा के लिये विछोह का समाचार मिला। समाचार पाकर अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के पालनार्थ शंकराचार्य अपनी जन्म-भूमि चले आये और माता की अन्त्येष्टि क्रिया करके शंकराचार्य फिर श्रृंगेरी मठ की ओर ही चले गये। तदुपरान्त आचार्य ने जगन्नाथपुरी में गोवर्धन मठ की स्थापना की। वहां का मठाधिपति पद्मपादाचार्य को बना दिया। इस प्रकार समस्त दक्षिण भारत में वेदान्त मत का प्रचार करके आचार्य शंकर उत्तर भारत की ओर लौट पड़े। उज्जैन आते हुए इन्होंने वहां की भीषण भैरव साधना को बन्द किया। वहां से ये गुजरात चले आये और वहां द्वारिका में शारदा मठ की स्थापना की। हस्तामलकाचार्य को इस मठ का अधिपति बना दिया। फिर आसाम के कामरूप स्थान में शैवों से शास्त्रार्थ करते हुए आचार्य बदरिकाश्रम चले आये यहां ज्योतिर्मठ की स्थापना करके तोटकाचार्य को मठाधिपति बना दिया। यहां से शंकराचार्य केदारनाथ चले गये। केदारनाथ

1. J. R. A S. April 1923 and Janaury 1924.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में ही भारतवर्ष का यह प्रोज्वल सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया। शंकराचार्य की समाधि केदार क्षेत्र में भगवान् केदारेश्वर के मन्दिर के समीप आज भी स्थित है।

शंकराचार्य की रचनायें—

शंकराचार्य द्वारा लिखित ग्रन्थों का निर्णय करते समय एक विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। इसके दो प्रधान कारण हैं। आदि शंकराचार्य के देहावसान के उपरान्त सभी मठाधीश शंकराचार्यों ने ग्रन्थ लिखे हैं। अतः आदि शंकराचार्य के द्वारा लिखित ग्रन्थों का पता लगना अतीव दुष्कर है। कदाचित् शंकराचार्य के गुरु भगवत्पाद गोविन्दाचार्य के संकेत से आदि शंकराचार्यों के ग्रन्थों का ज्ञान सम्भव था। परन्तु बाद के मठाधीश शंकराचार्यों ने भी भगवत्पाद गोविन्दाचार्य को अपने गुरु के स्थान में रखकर इस कसौटी को भी निष्फल बना दिया है। फिर भी शैली एवं अन्य साक्ष्यों के आधार पर जो आचार्य के ग्रन्थ प्राप्त होते हैं उनका उल्लेख यहां किया जा रहा है। ये ग्रन्थ ४ स्वरूपों में विभक्त किये जा सकते हैं—

१—भाष्य ग्रन्थ। २—स्तोत्र ग्रन्थ। ३—प्रकरण ग्रन्थ। ४—तन्त्र ग्रन्थ।

१—भाष्य ग्रन्थ :—भाष्य ग्रन्थ दो प्रकार के हैं। (क) प्रस्थानत्रयी-ब्रह्मसूत्र, गीता उपनिषदों के भाष्य ग्रन्थ और (ख) इत्र ग्रन्थों पर भाष्य ग्रन्थ (विष्णु सहस्रनाम भाष्य आदि)

(क) प्रस्थानत्रयी के भाष्य ग्रन्थ—

१—ब्रह्मसूत्र भाष्य—शंकराचार्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना ब्रह्मसूत्र भाष्य है। ब्रह्मसूत्र के स्पष्टीकरण के लिये एक सरल शैलीयुक्त स्पष्ट भाष्य की आवश्यकता थी। यही कार्य शंकराचार्य ने किया है। वाचस्पति मिश्र जैसे प्रौढ़ दार्शनिक ने तो शांकरभाष्य के सम्बन्ध में कहा है कि यह केवल प्रसन्न गम्भीर ही नहीं है अपितु गंगाजल के समान पवित्र है। वाचस्पति मिश्र का कथन है कि जिस प्रकार गलियों का जल गंगाजल में मिलकर पवित्र हो जाता है उसी प्रकार हमारी व्याख्या (भामती) भी इस भाष्य के संसर्ग से पवित्र हो जायेगी।[1]

---

१. नत्वा विशुद्धविज्ञानं, शंकरं करुणाकरम्।
भाष्यं प्रसन्नगम्भीरं, तत्प्रणीतं विभज्यते॥
आचार्यकृति निवेशनमप्यवधूतं वचोऽस्मदादीनाम्।
रथ्योदकमिव गंगाप्रवाहपातः पवित्रयति॥ —भामती मंगल श्लोक ६।७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२—गीता भाष्य—शंकराचार्य ने गीता पर भाष्य, दूसरे अध्याय के ११ वें श्लोक से आरम्भ किया है। इस भाष्य में शंकराचार्य ने गीता की ज्ञानपरक व्याख्या की है। आचार्य ने गीता के अनुसार केवल तत्व-ज्ञान से ही मोक्ष प्राप्ति सिद्ध की है। यहां ज्ञान और कर्म के समुच्चय से मोक्ष प्राप्ति का शंकराचार्य ने निषेध किया है।[1]

३—उपनिषद् भाष्य—शंकराचार्य ने १२ उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है। वे उपनिषद्—(१) ईश (२) केन (३) कठ (४) प्रश्न (५) मुण्डक (६) माण्डूक्य (७) तैत्तिरीय (८) ऐतरेय (९) छान्दोग्य (१०) बृहदारण्यक (११) श्वेताश्वतर और (१२) नृसिंहतापिनी हैं। कई उपनिषद् भाष्यों के सम्बन्ध में आज तक संदेह बना हुआ है यहां संदिग्ध भाष्यों के सम्बन्ध में विचार किया जायगा।

केन भाष्य—केन उपनिषद् के 'पद-भाष्य' तथा 'वाक्य-भाष्य' दो भाष्य उपलब्ध होते हैं। दोनों की प्रणाली एकदम भिन्न है। प्रणाली के अतिरिक्त दोनों के विषय प्रतिपादन में भी भेद है। परख के लिये 'उपनिषदं ब्रूहीत्युक्ता य उपनिषद्, ब्राह्मी वावत उपनिषदमब्रूमेति।' (केन० ४।७) इसकी व्याख्या पद-भाष्य में जितनी स्वाभाविक है उतनी वाक्य-भाष्य में नहीं है। 'ब्राह्मी' और 'अब्रूम' पदों की व्याख्या दोनों भाष्यों में इस प्रकार है:—

पद-भाष्य—ब्राह्मीं ब्रह्मणः परमात्मन इयं ब्राह्मी तां परमात्म विषयत्वात् अतीत विज्ञानस्य वाव स्वते उपनिषदं अब्रूम इति। उक्तामेव परमात्म विषयां उपनिषदमब्रूम इति। अवधारयति उत्तरार्थम्।'

वाक्य-भाष्य—'ब्राह्मीं ब्रह्मणो ब्राह्मणजातेः उपनिषदं अब्रूम वक्ष्यामः इत्यर्थः। वक्ष्यतिः ब्राह्मीनोक्ता उक्ता तु आत्मोपनिषत्। तस्मात् न भूताभिप्रायो अब्रूम इति शब्दः।'

यहां पद-भाष्य तथा वाक्य-भाष्य में नितान्त भेद स्पष्ट है। पद-भाष्य के अनुसार ब्राह्मी उपनिषद् का अर्थ ब्रह्म से सम्बन्ध रखने वाली उपनिषद् का है और वाक्य-भाष्य के अनुसार ब्राह्मी का अर्थ ब्राह्मण जाति से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त अब्रूम का अर्थ भूतकालिक क्रिया होने के कारण पद-भाष्य में 'कहा' है। परन्तु वाक्य-भाष्य में उसी का अर्थ वक्ष्यति किया गया है। जो व्याकरण के नियम से

१. गीतासु केवलादेव तत्वज्ञानात् मोक्ष प्राप्तिः न कर्मसमुच्चितात् इति निश्चितोऽर्थः।
उपोद्घात—गीता भाष्य।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्णतया विरुद्ध है। शंकराचार्य जैसे उद्‌भट विद्वान् से इन त्रुटियों की सम्भावना कदापि नहीं की जा सकती। व्याख्या भेद के अतिरिक्त दोनों रचयिताओं के मूल पाठ में भी स्पष्ट भेद दिखाई पड़ता है। केन के पाठ 'नाहं मन्ये सुवेदेति' (२।२) की व्याख्या करते समय पद-भाष्य के रचयिता ने 'नाहं' में अहं शब्द मान कर उसकी व्याख्या की है परन्तु वाक्य-भाष्य के रचयिता ने 'नाहं' के स्थान पर 'नाह' मानकर व्याख्या की है।

इन तर्कों के आधार पर पद-भाष्य को ही शंकराचार्य द्वारा रचित मानना संगत होगा। वाक्यभाष्य में प्राप्त त्रुटियों की सम्भावना शंकराचार्य जैसे विद्वान् से कदापि नहीं की जा सकती। वाक्यभाष्य तो शृंगेरी मठ के आचार्य विद्याशंकर की रचना जान पड़ती है।

श्वेताश्वतर उपनिषद्—इस उपनिषद् पर जो भाष्य उपलब्ध है वह शंकराचार्य द्वारा रचित नहीं जान पड़ता। इसके कई कारण हैं :—

१—उपनिषद् भाष्य की रचनाशैली एवं व्याख्या पद्धति ब्रह्मसूत्र भाष्य की अपेक्षा पूर्णतया भिन्न एवं अत्यन्त निकृष्ट है। पुराणों के लम्बे-लम्बे उद्धरण देने की प्रवृत्ति शंकराचार्य की प्रमाणित रचनाओं में कहीं भी नहीं प्राप्त होती जैसे कि श्वेताश्वतरोपनिषद् में पाई जाती है।[1]

२—उपनिषद् भाष्यकार ने १।८ की व्याख्या करते समय माण्डूक्यकारिका का उद्धरण दिया है और कारिकाओं के लेखक को 'शुकशिष्यो गौड़पादाचार्यः' कहा है। अपने परम गुरु को सम्प्रदायविद्[2] एवं वेदान्तार्थ सम्प्रदायविद्[3] कहने वाले आचार्य शंकर शुकशिष्य जैसे निरादर सूचक शब्दों एवं एक वचन का प्रयोग कदापि नहीं कर सकते।

इन प्रमाणों के आधार पर शंकराचार्य इस उपनिषद् भाष्य के रचयिता नहीं सिद्ध होते।

माण्डूक्योपनिषद् भाष्य—इस उपनिषद् भाष्य के भी शंकराचार्य द्वारा रचित होने में संदेह है। इस भाष्य में कई दोष हैं। भाष्य के आरम्भ में प्राप्त मंगलाचरण के द्वितीय श्लोक के आदि के ३ चरण मन्द्राक्रान्ता छन्द के अनुसार हैं और अन्तिम

---

१. श्वे० उ० भाष्य—उपोद्घात।

२. सम्प्रदाय विदोवदन्ति ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य १।४।१४

३. अत्रोक्तं वेदान्तार्थं सम्प्रदाय विद्भिराचार्यैः।—ब्रह्मसूत्र शा० भा० २।१।९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चरण स्रग्धरा छन्द के अनुसार हैं।[1] भाष्यान्तर्गत सिद्धान्त भी शांकर मत के विपरी दिखाई पड़ते हैं। इसलिये माण्डूक्योपनिषद् भाष्य शंकराचार्यकृत न होकर किसी अन्य विद्वान् की रचना प्रतीत होती है।

नृसिंहतापनीयोपनिषद्—इस उपनिषद् भाष्य को भी शंकराचार्य द्वारा रचित मानने में सन्देह है। इस उपनिषद् में विशेष रूप से तान्त्रिक सिद्धान्तों का वर्णन है। तन्त्र को अर्वाचीन मानने वाले विद्वान् इस उपनिषद् को ही संदेहास्पद दृष्टि से देखते हैं। कुछ विद्वान् नृसिंहतापनीयोपनिषद् और प्रपंचसार को एक ही व्यक्ति की रचना मानते हैं।

इन उपर्युक्त उपनिषद् भाष्यों के अतिरिक्त अन्य सब उपनिषद् भाष्य निश्चय ही शंकराचार्य द्वारा रचित हैं। प्रस्थानत्रयी के भाष्य साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट गद्य के आदर्श हैं। साथ ही प्रस्थानत्रयी के भाष्य में समरसता भी प्राप्त है। आचार्य शंकर के सिद्धांतों से अवगत होने के लिये इन भाष्यों का अनुशीलन परमावश्यक है।

(ख) इतर ग्रन्थों पर भाष्य ग्रन्थ—

प्रस्थानत्रयी के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों पर भी शंकराचार्य द्वारा विरचित भाष्य उपलब्ध है। परन्तु इनमें से कुछ को ही प्रामाणिक कहा जा सकता है। निम्नलिखित भाष्य निश्चय ही शंकराचार्य द्वारा विरचित हैं —

(१) विष्णुसहस्रनाम भाष्य—इसमें आचार्य ने प्रत्येक नाम की युक्तियुक्त व्याख्या की है।

(२) सनत्सुजातीय भाष्य—धृतराष्ट्र के मोह को दूर करने के लिये सनत्सुजात ऋषि ने जो उपदेश दिया था उसका वर्णन महाभारत[2] में उपलब्ध होता है। इस पर्व को सनत्सुजातीय कहते हैं। अतएव इसका भाष्य सनत्सुजातीय भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है।

(३) ललिता त्रिशती भाष्य—ललिता त्रिशती में ललिता माता के तीन सौ नामों का उल्लेख है। ललितोपासक आचार्य शंकर ने इस भाष्य में इन नामों की व्याख्या उपनिषद् तथा तन्त्रों के प्रमाण के आधार पर की है।

---

१. यो विश्वात्मा विधिजविषयान्प्राश्य भोगान्स्थविष्ठान्।
पश्चाच्चान्यान्स्वमति विभवाञ्ज्योतिषा स्वेन-सूक्ष्मान्।
सर्वानेतान् पुनरपि शनैः स्वात्मनि स्थापयित्वा।
हित्वा सर्वान्विशेषान्विगत गुणगणः पात्वसौ नस्तुरीयः।
—मा० उ० मा० मंगलाचरण श्लोक २।

२. महाभारत ४२—४६ उद्योग पर्व।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(४) माण्डूक्यकारिका भाष्य—आचार्य शंकर के परमगुरु गोड़पादाचार्य ने माण्डूक्योपनिषद् पर कारिकायें लिखी हैं। इन्हीं कारिकाओं के ऊपर शंकराचार्य ने भाष्य रचना की है।

नीचे लिखे भाष्यों को शंकर-रचित मानने में संदेह बना हुआ है—

१—कौषीतकि उपनिषद् भाष्य, २—मैत्रायणीय उपनिषद् भाष्य, ३—कैवल्य उपनिषद् भाष्य, ४—महानारायणोपनिषद् भाष्य, ५—हस्तामलक स्तोत्र भाष्य[1], ६—अध्यात्मपटल भाष्य[2], ७—गायत्री भाष्य, ८—सन्ध्या भाष्य।

कुछ टीकाओं को भी विद्वानों ने शंकराचार्य द्वारा विरचित कहा है। ये टीकायें निम्नलिखित हैं। इन्हें शैली एवं विषय प्रतिपादन की दृष्टि से शंकर द्वारा रचित स्वीकार नहीं किया जा सकता।

१—अपरोक्षानुभव व्याख्या, २—अमरुशतक टीका, ३—आनन्द-लहरी टीका, ४—आत्मबोध टीका, ५—उत्तरगीता टीका, ६—उपदेश कसाहस्रीवृत्ति, ७—एक श्लोक व्याख्या, ८—गोपाल तापनीय भाष्य, ९—दक्षिणामूर्ति अष्ट टीका, १०—पंचपदी-प्रकरणी टीका, ११—पंचीकरण-प्रक्रिया-व्याख्या, १२—परम हंस उपनिषद् हृदय, १३—पातंजल योगसूत्र भाष्य विवरण, १४—ब्रह्म-गीता-टीका, १५—भट्टिकाव्य-टीका, १६—राजयोग भाष्य, १७—लघुवाक्य-वृत्ति-टीका, १८—ललिता सहस्रनाम-भाष्य, १९—विजृम्भित योगसूत्र भाष्य, २०—शतश्लोकी-व्याख्या, २१—शाकटायन उपनिषद्-भाष्य, २२—शिव-गीता-भाष्य, २३—षट्पदी टीका (वेदान्त सिद्धान्त दीपिका), २४—संक्षेप शारीरक भाष्य, २५—सूत संहिता भाष्य, २६—सांख्यकारिका टीका (जयमंगला)।[3]

(२) स्तोत्र—ग्रन्थ—

आचार्य परमार्थतः अद्वैत सिद्धान्त के समर्थक होते हुए भी व्यवहार मे सगुण ब्रह्म के उपासक थे। इसीलिए उनके हृदय में देवी-देवताओं का भी उच्च स्थान है। यही कारण है कि उन्होंने शिव, विष्णु, गणेश, शक्ति आदि देवताओं के सम्बन्ध में स्तोत्र और स्तुतियां लिखी हैं। आचार्य शंकर के इन स्तोत्रों में सा हि-

१. आचार्य ग्रन्थावली-(श्रीरंगम्, १६वां खण्ड, पृष्ठ १६३-१८३)।
२. अनन्तशयनम् संस्कृत ग्रन्थावली में प्रकाशित।
३. कलकत्ता ओरियन्टल सीरिज़ नं० १८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्यिक और दार्शनिक दोनों विशिष्टतायें प्राप्त होती हैं। यहां हम शंकर के नाम से प्रसिद्ध स्तोत्रों की नामावलि का परिगणन कर रहे हैं।

१—गणेश स्तोत:—(१) गणेश पंचरत्न, (२) गणेश भुजंग प्रयात, (३) गणेशाष्टक, (४) वरद गणेश स्तोत्र।

२—शिव स्तोत्र—(१) शिवभुजंग, (२) शिवानन्द लहरी, (३) शिवपादादिक शान्त स्तोत्र, (४) शिवकेशादि पादान्त स्तोत्र, (५) वेदसार शिवस्तोत्र, (६) शिवापराधक्षमापण स्तोत्र, (७) सुवर्णमाला स्तुति, (८) दक्षिणामूर्ति वर्णमाला, (९) दक्षिणामूर्ति अष्टक, (१०) मृत्युञ्जय मानसिकपूजा, (११) शिवनामावल्यष्टक, (१२) शिवपंचाक्षर, (१३) उमामहेश्वर, (१४) दक्षिणामूर्ति स्तोत्र, (१५) काल-भैरवाष्टक, (१६) शिवपञ्चाक्षरनक्षत्रमाला, (१७) द्वादश लिंग स्तोत्र, (१८) दशश्लोकी स्तुति।

३—देवी स्तोत्र:—(१) सौन्दर्य लहरी, (२) देवीभुजंग स्तोत्र, (३) आनन्द-लहरी, (४) त्रिपुर सुन्दरी वेदपाद, (५) त्रिपुरसुन्दरी मानस पूजा, (६) देवी चतुःषष्ठ्युपचार पूजा (७) त्रिपुरसुन्दर्यष्टक (८) ललितापंचरत्न (९) कल्याण वृष्टिस्तव (१०) नवरत्नमालिका (११) मंत्रमात्रिका पुष्पमाला (१२) गौरीदशक (१३) भवानीभुजंग (१४) कनकधारा (१५) अन्नपूर्णाष्टक (१६) मीनाक्षी पंचरत्न (१७) मीनाक्षी स्तोत्र (१८) भ्रमराम्बाष्टकम् (१९) शारदाभुजंग प्रयाताष्टक।

४—विष्णु स्तोत्र:—(१) कामभुजंग प्रयात (२) विष्णु भुजंग प्रयात (३) विष्णुपादादि केशान्त (४) पाण्डुरंगाष्टक (५) अच्युताष्टक (६) कृष्णाष्टक (७) हरिमीडे स्तोत्र (८) गोविन्दाष्टक (९) भगवन्-मानस पूजा (१०) जगन्नाथाष्टक।

५—युगल देवता स्तोत्र:—(१) अर्धनारीश्वर स्तोत्र (२) उमामहेश्वर स्तोत्र (३) लक्ष्मीनृसिंह पञ्चरत्न (४) लक्ष्मीनृसिंह करुणारस स्तोत्र।

६—नदी-तीर्थ सम्बन्धी स्तोत्र:—(१) नर्मदाष्टक (२) गंगाष्टक (३) यमुनाष्टक (४) मणिकर्णिकाष्टक (५) काशीपंचक।

७—साधारण स्तोत्र:—(१) हनुमत् पंचरत्न (२) सुब्रह्मण्य भुजंग (३) प्रात: स्मरण स्तोत्र (४) गुर्वष्टक।

उक्त ६४ स्तोत्र आचार्य शंकर की प्रकाशित रचनायें हैं।[1] यों तो मठों में

१—शंकर ग्रन्थावली (वाणी विलास प्रेस द्वारा प्रकाशित)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राप्त हस्तलिखित एवं अन्य स्तोत्रों को मिला कर कुल संख्या २४० है । विस्तार भय से इन सब का उल्लेख यहां नहीं किया जा रहा है । शैली और प्रतिपाद्य विषय के अनुशीलन के पश्चात् ये सभी आदि शंकराचार्य द्वारा विरचित नहीं प्रतीत होते । उपर्युक्त स्तोत्रों में निम्नलिखित स्तोत्र आचार्य के प्रख्यात एवं प्रामाणिक स्तोत्र हैं ।

(१) चर्पटपंजरिका या मोह मुद्‌गर, (२) द्वादश पंचरिका, (३) षट्‌पदी, इसका दूसरा नाम विष्णु-षट्‌पदी भी है। इसके ऊपर छः टीकायें मिलती हैं जिनमें एक टीका स्वयं शंकराचार्य की है। (४) मनीषा पंचक—इस स्तोत्र में अन्तिम पांच पद्यों के अन्त में 'मनीषा' शब्द आता है। इसलिये इसे मनीषा पंचक कहते हैं। (५) सोपान पंचक—इसी का दूसरा नाम 'उपदेश पंचक' है।[1] (६) आनन्द लहरी—इस स्तोत्र की रचना शिखरिणी छन्द में की गई है। इसके ऊपर ३० टीकायें मिलती हैं। जिनमें एक टीका शंकराचार्य की बतलाई जाती है। (७) गोविन्दाष्टक—इस स्तोत्र पर आनन्दतीर्थ की व्याख्या मिलती है।[2] (८) दक्षिणामूर्ति स्तोत्र-दस शार्दूलविक्रीडित पद्यों में यह स्तोत्र निबद्ध है। इसके ऊपर सुरेश्वराचार्य ने 'मानसोल्लास' नामक टीका लिखी है। (९) दश श्लोकी—इसी का दूसरा नाम चिदानन्द दशश्लोकी या चिदानन्द स्तवराज है। (१०) हरि-मीडेस्तोत्र—इसके ऊपर विद्यारण्य, स्वयंप्रकाश, आनन्दगिरि तथा शंकराचार्य के द्वारा लिखित टीकायें उपलब्ध हैं। (११) शिवभुजंग प्रयात—माधवाचार्य[3] का कथन है कि इन्हीं पद्यों के द्वारा शंकर ने अपनी माता के अन्तकाल में भगवान् शंकर की स्तुति की थी। (१२) सौन्दर्य लहरी—यह स्तोत्र-ग्रन्थ तन्त्र का विशिष्ट ग्रन्थ है। श्रीविद्या के उपासकों के लिये यह बड़ा उपयोगी है। इस पर लक्ष्मीधर की विद्वत्ता-पूर्ण टीका है।

(३) प्रकरण-ग्रन्थ—

सर्वसाधारण को वेदान्त-विषय से अवगत कराने के लिये शंकराचार्य ने प्रकरण ग्रन्थों का निर्माण गद्य में न करके श्लोकों में किया था वेदान्त तत्त्व के प्रतिपादक होने से ही ये ग्रन्थ 'प्रकरण-ग्रन्थ' कहलाते हैं। साहित्यिक संस्पर्श ने इन ग्रन्थों को और भी रुचिकर बना दिया है। आज शंकराचार्य के नाम से निम्नलिखित प्रख्यात प्रकरण-ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

१. वाणी विलास, शंकर ग्रन्थावली, भाग १६, पृष्ठ १२७।
२. शंकर ग्रन्थावली, वाणी विलास प्रेस, भाग १८, पृष्ठ ५६-५८।
३. शंकर दिग्विजय १४। ३७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(१) अद्वैतपंचरत्न—इसमें अद्वैत के प्रतिपादक ५ श्लोक हैं। इसी का नाम आत्मपंचक भी है। कहीं कहीं इसमें ६ श्लोक भी मिलते हैं।

(२) अद्वैतानुभूति—इसमें ८४ अनुष्टुप छन्दों में अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन है।

(३) अनात्मश्री विगर्हण प्रकरण—इस ग्रन्थ में विषय-वासना में ही जीवन व्यतीत करने वाले पुरुषों की निन्दा की गई है। श्लोकों की संख्या १८ है।

(४) अपरोक्षानुभूति—इस ग्रन्थ में अपरोक्ष अनुभव के साधन तथा स्वरूप का वर्णन है। श्लोकों की संख्या १४४ है।

(५) आत्मबोध—इस ग्रन्थ में ६८ श्लोकों में आत्मा के स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया गया है। बोधेन्द्र ने इस ग्रन्थ पर 'भाव प्रकाशिका' टीका लिखी है। इस पर मधुसूदन सरस्वती की टीका का भी उल्लेख मिलता है।

(६) उपदेश पंचक—इस ग्रन्थ के अन्तर्गत ५ पद्यों में वेदान्त के आचरण का उपदेश मिलता है।

(७) उपदेशसाहस्री—इस ग्रन्थ का पूरा नाम 'सकल वेदोपनिषत्सारोपदेश साहस्री' है। इस नाम की दो पुस्तकें मिलती हैं—(१) गद्यप्रबन्ध, (२) पद्यप्रबन्ध। इस पद्यप्रबन्ध में १९ प्रकरण हैं। यही शंकराचार्य की वास्तविक रचना है। रामतीर्थ ने गद्य-पद्य दोनों प्रबन्धों पर अपनी सरल व्याख्या लिखी है।

(८) एक श्लोकी—एक श्लोक के ही अन्तर्गत इसमें परम ज्योति का वर्णन किया गया है।

(९) कौपीनपंचक—इसके प्रत्येक श्लोक का अंतिम चरण 'कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः' है।

(१०) जीवन्मुक्तानन्द लहरी—इस ग्रन्थ में जीवन्मुक्त पुरुष के आनन्द का ललित वर्णन है। इसके प्रत्येक पद्य का अंतिम चरण - 'मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमः' है।

(११) तत्त्वबोध—इसमें वेदान्त के तत्त्वों का प्रश्नोत्तर रूप से वर्णन मिलता है।

(१२) तत्त्वोपदेश—इसमें ८७ अनुष्टुपों में 'तत्' तथा 'त्वं' पदों के अर्थ का वर्णन किया गया है और गुरुपदेश से आत्मतत्त्व की अनुभूति का वर्णन है।

(१३) धन्याष्टक—ब्रह्म-ज्ञान से जीवन को धन्य मानने वाले पुरुषों का सुन्दर वर्णन इस प्रकरण ग्रन्थ का विषय है।

(१४) निर्गुण मानस पूजा—इस प्रकरण ग्रन्थ में गुरु-शिष्य के संवाद रूप में निर्गुण तत्त्व की मानसिक पूजा का विवरण मिलता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(१५) निर्वाण मंजरी—इसमें १२ श्लोकों में शिव-तत्त्व के स्वरूप का विवेचन है। इस ग्रन्थ में अद्वैत एवं शुद्ध आत्मा का सुन्दर वर्णन किया गया है।

(१६) निर्वाण षट्क—इसके अन्तर्गत ६ श्लोकों में आत्मस्वरूप का वर्णन है।

(१७) पंचीकरण प्रकरण—जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है इसमें पंचीकरण का गद्य में वर्णन किया गया है। सुरेश्वराचार्य ने इसके ऊपर वार्तिक लिखा है जिस पर शिवराम तीर्थ का विवरण मिलता है। इस विवरण पर भी 'आभरण' नाम की एक टीका मिलती है।

(१८) परापूजा—इसमें परमतत्त्व की पूजा का वर्णन है।

(१९) प्रबोध सुधाकर—इसमें वेदान्त तत्त्व का अत्यन्त सुन्दर निरूपण किया गया है। इसमें २५७ आर्या छन्द हैं। इसकी भाषा बड़ी सरल एवं प्रांजल है।

(२०) प्रश्नोत्तर रत्नमालिका—इसके अन्तर्गत प्रश्न और उत्तर के रूप में वेदान्त का उपदेश किया गया है।

(२१) प्रौढ़ानुभूति—१७ पद्यों के अन्तर्गत इसमें आत्मतत्त्व का वर्णन है।

(२२) ब्रह्मज्ञानावली माला—इसमें ब्रह्मज्ञान के स्वरूप का वर्णन सरल एवं सुबोध शैली में किया गया है।

(२३) ब्रह्मानुचिन्तन—इसमें २९ पद्यों में ब्रह्मस्वरूप का वर्णन है।

(२४) मणिरत्नमाला—इस प्रकरण में ३२ श्लोकों में प्रश्नोत्तर के रूप से सुन्दर उपदेश किया गया है।

(२५) मायापंचक—इसके अन्तर्गत ५ पद्यों में माया के स्वरूप का वर्णन है।

(२६) मुमुक्षुपंचक—इस प्रकरण के अन्तर्गत पाँच शिखरिणी छन्दों में मुमुक्षु पुरुष के स्वरूप का सुन्दर वर्णन किया गया है।

(२७) योगतारावली—इसमें २९ पद्यों में हठयोग तथा राजयोग का प्रामाणिक वर्णन है।

(२८) लघुवाक्यवृत्ति—इस प्रकरण ग्रन्थ में १८ अनुष्टुप पद्यों में जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन है। इस पर कई टीकाओं की रचना भी की गई है। एक टीका शंकराचार्य की है और दूसरी टीका रामानन्द सरस्वती की।

(२९) वाक्यवृत्ति—इसमें ५३ श्लोक हैं, इनमें तत्, त्वं पदों के अर्थ—वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ का निरूपण किया गया है।

(३०) वाक्यसुधा—यद्यपि टीकाकार मुनिदास भूपाल ने इसकी रचना शंकराचार्य के द्वारा ही मानी है परन्तु ब्रह्मानन्द भारती के मत में यह ग्रन्थ स्वामी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विद्यारण्य और उनके गुरु भारतीतीर्थ की रचना है। इसके दूसरे टीकाकार विश्वेश्वर मुनि का मत है कि विद्यारण्य ही इसके रचयिता हैं। इन विभिन्न मतों से यह प्रतीत होता है कि यह प्रकरण ग्रन्थ शंकराचार्य की रचना नहीं है।

(३१) विज्ञान नौका—इस प्रकरण ग्रन्थ में अद्वैत तत्त्व का निरूपण किया गया है।

(३२) विवेक चूड़ामणि—इसमें ५८१ पद्य हैं जिनमें वेदान्त के तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। वेदान्त के प्रमुख सिद्धान्त 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' विवेक चूड़ामणि के अन्तर्गत ही मिलता है।

(३३) वैराग्यपंचक—इस प्रकरण में ५ श्लोकों में वैराग्य का अत्यन्त रमणीक वर्णन है।

(३४) शतश्लोकी इस प्रकरण ग्रन्थ में १०० श्लोकों में वेदान्त के सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन किया गया है।

(३५) सदाचारानुसन्धान—इसका दूसरा नाम 'सदाचार स्तोत्र' भी है। इसमें ५५ श्लोकों में चित् तत्त्व का प्रतिपादन मिलता है।

(३६) सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह—इस ग्रन्थ में एक हजार छः श्लोक हैं। गुरु शिष्य के संवाद के रूप में इसमें वेदान्त का सुन्दर वर्णन किया गया है।

(३७) सर्व-सिद्धान्त-सार-संग्रह—इसमें बहुदर्शनों तथा अवैदिक दर्शनों का श्लोक बद्ध वर्णन है।

(३८) स्वात्म निरूपण—गुरु-शिष्य संवाद रूप से इसमें आत्म-तत्त्व का विवेचन विस्तार से किया गया है।

(३९) स्वात्म प्रकाशिका—इसमें आत्म-रूप का सुबोध तथा सुन्दर निरूपण मिलता है।

(४) तन्त्र ग्रन्थ

(१) प्रपंचसार—शंकराचार्य रचित प्रपंचसार तन्त्र का एक प्रमुख ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त सौन्दर्य लहरी, जिसका उल्लेख स्तोत्र-ग्रन्थों के अन्तर्गत किया जा चुका है, भी एक तन्त्र-ग्रन्थ ही है। जहां तक तन्त्र-ग्रन्थ प्रपंचसार के शंकराचार्य द्वारा रचित होने का प्रश्न है, इस विषय में विद्वानों का संदेह बना हुआ है। परन्तु तान्त्रिक परम्परा के अनुसार यह ग्रन्थ आदि शंकराचार्य की ही रचना सिद्ध होती है। इस ग्रन्थ के शंकराचार्य विरचित होने में अनेक प्रमाण हैं। प्रपंचसार के ऊपर पद्मपाद की विवरण टीका भी उपलब्ध है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्रन्थ शंकराचार्य द्वारा प्रणीत है। इसके अतिरिक्त अमलानन्द ने वेदान्त कल्पतरु (१। ३। ३३) में इसे आचार्य कृत मानते हुए लिखा है—

तथाचावोचन्नाचार्याः प्रपंचसारे—

अवनिजलानलमारुत विहायसां शक्तिभिश्च तद् बिम्बैः।

सारूप्यमात्मनश्चप्रतिनीत्वा तत्तदाशुजयतिसुधीः॥

उक्त तर्कों के आधार पर 'प्रपंचसार' आदि-शंकराचार्य की ही रचना सिद्ध होता है।

भारतीय-दर्शन को शंकराचार्य की देन

दर्शन मानव की प्राकृतिक निधि है। इस ओर परिशीलन की दृष्टि से संस्कृत मानव का ध्यान जाना भी स्वाभाविक है। वैदिक काल से लेकर आज तक के युग तक दर्शन का अध्ययन यत्र-तत्र किसी न किसी रूप में होता रहा है। इन दार्शनिक अध्येताओं की भारतीय दर्शन को एक देन रही है। परन्तु इन सभी दार्शनिकों में शंकराचार्य की देन एक महान् देन है। उन्होंने भारतीय दर्शन की आधार-शिलाओं को इतना शक्तिशाली बना दिया है कि विश्व का दर्शन भारतीय दर्शन की समकक्षता में नहीं आता। उन्होंने कुछ ऐसे दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना की है जिनके बिना भारतीय दर्शन के पूर्व स्थापित सिद्धान्त अस्पष्ट थे और यह दर्शन अधूरा था। दर्शन का सांगोपांग स्वरूप शंकराचार्य से पूर्व अनुपलब्ध ही था। दार्शनिक जगत् को शंकराचार्य की जो प्रमुख देन रही है उसका निम्न स्वरूप है :—

क—अद्वैतवाद का प्रस्थापन। ख—माया का प्रतिपादन। ग—आचार सम्बन्धी विशेषतायें। घ—कुछ अन्य देन।

(क) अद्वैतवाद का प्रस्थापन

"अद्वैतवाद की चर्चा भारतीय दर्शन का प्राण है"। भारतीय साहित्य में शांकर अद्वैतवाद से पूर्व भी इस सिद्धान्त की वर्णना यत्र-तत्र प्राप्त होती है। संहिताओं में अद्वैत सिद्धान्त का पूर्ण वर्णन न मिलने पर भी अद्वैतपरक अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। उपनिषदों में तो इस सिद्धान्त के स्पष्ट रेखाचित्र मिलते ही हैं। महाभारत आदि ग्रन्थों में भी अद्वैत सिद्धान्त का परिचय प्राप्त होता है। प्राचीन वेदान्त सूत्र के रचयिताओं में भी कुछ सूत्रकार अद्वैतवाद के सिद्धान्त से परिचित प्रतीत होते हैं।[1] बौद्धमत में माध्यमिक तथा योगाचार गण भी अद्वैतवादी ही थे। यही

१. देखिये, म० म० गोपीनाथ कविराज का लेख—'प्राचीन अद्वैतवाद के साथ शंकर के अद्वैतवाद का सम्बन्ध। (कल्प० वेदान्तांक) पृ० ६१०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण है कि बुद्ध का नाम भी अद्वयतदादी ही पड़ गया था। वैयाकरण, शाक्त, शैव ये सब भी अद्वैतवाद के समर्थक ही थे। मण्डन मिश्र की ब्रह्मसिद्धि में अद्वैतवाद की स्पष्ट वर्णना मिलती है। शान्तरक्षित के तत्त्वसंग्रह मे भी अद्वैतवाद का संकेत है।[1] दिगम्बराचार्य समन्तभद्र ने भी अद्वैत मत का ही समर्थन किया है।[2] कमल शील ने भी इन सब को अद्वैतवादी स्वीकार किया है। उन्होंने इन दार्शनिकों को 'अद्वैत दर्शनावलम्बिनश्चोपनिषदिका:' कहा है। साहित्य के क्षेत्र में महाकवि भवभूति ने अपने उत्तर रामचरित नाटक में भी विवर्तवाद के सहारे अद्वैतवाद का ही संकेत किया है।[3] इस प्रकार माध्यमिकों के शून्याद्वयवाद, योगाचारों के विज्ञानाद्वयवाद, शाक्तों के शाक्ताद्वैतवाद, वैयाकरण, भर्तृहरि एवं मण्डन सम्मत शब्दाद्वयवाद और श्री जगद्गुरु रेणुक, दारुक, एकोराम, पण्डिताराध्य और विश्वाराध्य—इन पंचाचार्यों द्वारा स्थापित शिवाद्वैतवाद का स्वरूप शंकराचार्य से पूर्व वर्तमान था। परन्तु शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का निरूपण एक नवीन ढंग पर किया था। इस स्थल पर शांकर अद्वैतवाद का निरूपण किया जायगा।

शांकर अद्वैतवाद भारतीय दर्शन के क्षेत्र में केवलाद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है। उपर्युक्त सभी अद्वैतवादों में शिवशक्ति, शून्य, विज्ञान किसी न किसी को अवश्य स्वीकार किया गया है। परन्तु आचार्य शंकर एक ब्रह्म को ही अद्वैत सत्य मानते हैं। इसीलिये उनका सिद्धान्त केवलाद्वैतवाद के नाम से प्रचलित है। शांकर अद्वैतवाद का मूल सिद्धान्त—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर' है। इस सिद्धान्त के अनुसार एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ब्रह्म ही है। जगत् और जीव की द्वैतानुभूति का निराकरण करके एकमात्र ब्रह्म का सत्य स्वीकार करना ही अद्वैतवाद है। उस ब्रह्म की ज्ञानक्रिया और बलक्रिया भी स्वाभाविक ही है।[4] ब्रह्म स्वयं परिपूर्ण शक्तिवाला है।[5] वह प्रपंच रहित एवं शिव स्वरूप है। ब्रह्म जगत् और जीव की द्वैतावस्था का भान तभी तक रहता है जब तक कि पारमार्थिक ब्रह्मज्ञान नहीं हो जाता। इस भेद बुद्धि एवं प्रपंच की सत्य प्रतीति का कारण अध्यास है। यहां अध्यास का विवेचन किया जायगा।

अध्यास

अध्यास सर्वप्रपंच का मूल कारण है। यह अध्यास नैसर्गिक है। अध्यास

१. तत्त्व संग्रह (१२८—१२९)। २. आप्तमीमांसा २४ ।
३. उत्तररामचरित ३ । ४७। ४. श्वे० उ० शा० भा० ६ । २ ।
५. ब्र० सू० शा० भा० (२ । १ । २४)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही मिथ्याप्रत्ययरूप है और कर्तृत्त्व, भोक्तृत्व का प्रवर्तक होने के साथ-साथ लोक-प्रत्यक्षीकरण का हेतु है।[1] अनादि एवं अनन्त अध्यास ही जगत् के प्रमाण एवं प्रमेय समस्त व्यवहार का मूल कारण है। शंकराचार्य ने अध्यास की निम्नलिखित परिभाषा दी है:—

'अध्यासो नाम अतस्मिंस्तद् बुद्धिः' (ब्र० सू० शा० भा० उपोद्घात)। किसी पदार्थ में उससे भिन्न पदार्थ का आरोप ही अध्यास है। अध्यास को ही शंकराचार्य ने अविद्या कहा है।[2] आरोपवाद के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए शंकराचार्य ने रज्जु सर्प का दृष्टान्त दिया है।[3] रस्सी रूप वस्तु में सर्प अवस्तु का मिथ्या ज्ञान ही आरोप है। अध्यास अर्थात् अविद्या के द्वारा ही रस्सी सर्प रूप में भासित होती है परन्तु अविद्या निवृत्ति के उपरान्त रस्सी का वास्तविक ज्ञान हो जाता है। यही बात ब्रह्म रूप सद्वस्तु और जगत् रूप असद् वस्तु के सम्बन्ध में भी विचारणीय है। स्वयं प्रकाश, चेतन, आनन्द-स्वरूप ब्रह्म परमार्थ वस्तु है और प्रपंच रूप दृश्यमान समस्त जड़ पदार्थ समूह अवस्तु है। अध्यास के द्वारा ही स्वयं प्रकाश ब्रह्मरूप परमार्थ वस्तु में अज्ञान तथा तज्जनित सम्पूर्ण चराचर जगत् रूप अवस्तु अवभासित होती रहती है। किन्तु ब्रह्मरूप वस्तु के ज्ञात होने पर जगत रूप अवस्तु का भ्रम दूर हो जाता है। यही अद्वैत सिद्धान्त अभिमत सिद्धान्त है। शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन विवर्तवाद के सिद्धान्त के आधार पर किया है। यहां विवर्तवाद का उल्लेख किया जायगा।

विवर्तवाद का सिद्धान्त

आचार्य शंकर ने अध्यास के सहारे समस्त प्रपंच रूप जगत् का खण्डन करके अद्वैत ब्रह्मतत्त्व का मण्डन किया था। आचार्य शंकर का तर्क है कि पारमार्थिक रूप से अद्वैत ब्रह्म रूप कारण और प्रपंच रूप जगत् में अनन्यत्व है। इसीलिये शंकराचार्य ने कार्यकारण सम्बन्ध के विषय में विकारवाद का खंडन करके विवर्त्तवाद के सिद्धान्त की स्थापना की है। तात्त्विक परिवर्तन को विकार तथा अतात्त्विक परिवर्त्तन को विवर्त कहते हैं।[4] शंकराचार्य के मतानुसार जगत् को ब्रह्म का

---

१. ब्र० सू० शा० भा० उपोद्घात।
२. ब्र० सू० शा० भा० १।१।१।
३. अपरोक्षानुभूति ४४, अद्वैत आश्रम मायावती अलमोड़ा।
४. सतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदीरितः।
अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदीरितः॥ वेदान्तसार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विकार कहना असंगत है। जगत को ब्रह्म का विकार कहना उसी प्रकार असंगत है जिस प्रकार घट अथवा शराब को मृत्तिका का विकार कहना अनुचित है[१]। जिस प्रकार घट और शराब के भग्न होने के उपरान्त केवल मृत्तिका ही वर्त्तमान रह जाती है उसी प्रकार मिथ्या प्रपंच जगत् के विनाश होने के उपरान्त केवल एक ब्रह्म ही सत्य रह जाता है। शांकर दर्शन में ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध में विकारवाद का सिद्धान्त पूर्णतया अस्वीकार्य है। दही दूध का विकार है परन्तु जगत् को ब्रह्म का विकार नहीं कहा जा सकता। ब्रह्म और जगत् के इस सम्बन्ध में जो सत्यासत्य रूप भिन्नता है वह दधि-दुग्ध के सम्बन्ध में नहीं है। इसलिये जगत् ब्रह्म का विवर्त है, न कि विकार। शांकर मत का यह ब्रह्म निर्गुण, शुद्ध बुद्ध एवं स्वतः मुक्त है।[२] विवर्तवाद के सिद्धान्त के अनुसार ही ब्रह्म में जगत् का पृथक रूप से भान होता है।

(शांकर अद्वैतवाद का मूलाधार सत्तात्रय की कल्पना है। ये सत्तायें प्रातिभासिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता और पारमार्थिक सत्ता हैं।) यहां क्रमशः इन तीनों के स्वरूप का विवेचन किया जायगा।

प्रातिभासिक सत्ता

प्रातिभासिक सत्ता के अनुसार प्रतीतिकाल में असद् वस्तु सत्य भासित होती है। परन्तु उत्तरकाल में इस असद् वस्तु का बाध हो जाता है। शुक्ति में रजत का भास प्रातिभासिक सत्ता के अनुसार ही है। उत्तर काल में शुक्ति का ज्ञान होने पर रजत का बाध हो जाता है। यही बाध रज्जु और सर्प के दृष्टान्त के सम्बन्ध में भी है। सर्प और रजत आदि का प्रातिभासिक ज्ञान भी निराधार नहीं होता। सर्प का अधिष्ठान रज्जु और रजत का अधिष्ठान शुक्ति है। इस प्रकार सर्प और रजत की सत्ता शंकराचार्य ने प्रातिभासिक मानी है।

(१) व्यावहारिक सत्ता

जगत् के समस्त व्यावहार गोचर पदार्थों की सत्ता व्यावहारिक है। जगत् के व्यावहारिक पदार्थ केवल व्यवहार में सत्य हैं। परमार्थ दृष्टि से ये सब मिथ्या हैं। ब्रह्मबोध होने से पहिले ही व्यावहारिक जगत् की सत्य प्रतीति होती है। इस अवस्था में समस्त लौकिक और वैदिक व्यवहार सत्य प्रतीत होते हैं। स्वाभाविक ब्रह्म का बोध न होने के कारण ही 'मैं' और 'मेरे' की भावना का व्यवहार होता

१. ब्र० सू० शा० भा० २ । १ । १४ ।
२. उपदेश सहस्री ५८, निर्णय सागर, १९१४ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है।[1] ब्रह्म बोध होने पर केवल अद्वैत ब्रह्म ही सत्य रूप से अवशिष्ट रह जाता है। इस प्रकार व्यावहारिक सत्ता की स्थापना के द्वारा शंकराचार्य ने लौकिक व्यवहार की सत्यता की रक्षा की है। व्यावहारिक सत्ता के अनुसार शंकराचार्य पर पलायनवादी होने का आक्षेप लगाना नितान्त अनुचित है।

पारमार्थिक सत्ता

ब्रह्म की सत्ता पारमार्थिक है। यह सत्ता ही एकान्त रूप से सत्य है एवं तीनों कालों में अबाधित रहती है। ब्रह्म, भूत भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों कालों में ही वर्त्तमान रहता है। उसका बाध किसी काल में भी नहीं होता। परमार्थिक सत्ता का बोध हो जाने पर प्रातिभासिक और व्यावहारिक सत्ताओं का बाध हो जाता है। पारमार्थिक सत्ता ही अद्वैत की पोषक है इस प्रकार परमार्थिक सत्ता के द्वारा शंकराचार्य ने अद्वैतवाद के सिद्धान्त का मण्डन किया है। परमार्थावस्था में केवल विशुद्धात्मा ही अवशिष्ट रह जाता है। इस स्थिति में सांख्य, शैव, पांचरात्र, जैन और मीमांसकादि दर्शनों के मतों का प्रश्न भी नहीं उठता।[2]

शंकराचार्य ने जीव और ब्रह्म के ऐक्य के आधार पर अद्वैतवाद का प्रस्थापन किया है। जिस प्रकार ब्रह्म से पृथक जगत् की सत्ता अविद्याजन्य है उसी प्रकार ब्रह्म और जीव का भेद भी अविद्याजन्य ही है। शांकर-दर्शन में जीव का निम्न स्वरूप है।

जीव

अन्तःकरण द्वारा अवच्छिन्न चैतन्य जीव कहलाता है। ब्रह्म ही उपाधि के सम्पर्क में आकर जीव भाव से विद्यमान रहता है। शरीर तथा इन्द्रिय समूह के ऊपर शासन करने वाला एवं कर्मफल का भोक्ता यही जीव है। जीव चैतन्यस्वरूप है। आत्म चैतन्य के जीव रूप में प्रकट होने की तीन अवस्थायें है—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जाग्रत् अवस्था में जीव खाना, पीना, उठना, बैठना आदि नाना कार्यों में रत रहता है। स्वप्नावस्था में इन्द्रियां बाहरी जगत् से हटकर निश्चेष्ट हो जाती हैं। परन्तु चैतन्य उस समय भी बना रहता है। तीसरी अवस्था सुषुप्ति है। सुषुप्ति का तात्पर्य प्रगाढ़ निद्रा से है। चैतन्य इस दशा में भी वर्तमान रहता है। क्योंकि हम गहरी नींद सोने के बाद भी 'सुखमहमस्वाप्सम्' (मैं सुख से सोया) रूप अनुभूति प्राप्त करते हैं। इस से यह सिद्ध होता है

१. तस्मात् प्राग् ब्रह्मात्मता प्रतिबोधादुत्पन्नः सर्वो लौकिको वैदिकश्चव्यवहारः।
ब्र० सू० शा० भा० २।१।१४।

२. दशश्लोकी ४, चौखम्बा संस्कृत सीरिज १९८५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि सुषुप्ति अवस्था में भी चैतन्य की सत्ता रहती है। व्यष्टि रूप से स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों का अभिमानी जीव विश्व, तैजस और प्राज्ञ कहलाता है। समष्टि के अभिमानी चैतन्य को विराट (वैश्वानर) सूत्रात्मा तथा ईश्वर कहते हैं। जीव अविद्या के वश में होकर देह एवं इन्द्रियों के साथ अभिन्नता प्राप्त कर शरीरादि के दुःख का भोक्ता बन जाता है।[1] अविद्या के कारण ही जीव दुःखादि का भोक्ता है। इसलिये अविद्या के दूर होने के पश्चात् जीव ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है। जिस प्रकार जल में दिखाई पड़ने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब जल के अनुसार रूप ग्रहण करता है। जल के घटने पर सूर्य का प्रतिबिम्ब घट जाता है और जल के बढ़ जाने पर सूर्य का प्रतिबिम्ब बढ़ जाता है। जल में कम्पन आने पर सूर्य-प्रतिबिम्ब में भी कम्पन आने लगता है। प्रतिबिम्ब जलधर्म का अनुयायी होता है, उसमें परिवर्तन अपेक्षित है। परन्तु बिम्ब स्थानीय सूर्य स्वतन्त्र रहता है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं होता। उसी प्रकार ब्रह्म भी वस्तुतः विकारहीन एवं एकरूप है। जिन देह इन्द्रियों आदि उपाधियों को जीव धारण करता है। उनके धर्मों को वह ग्रहण करता सा प्रतीत होता है। वास्तव में यह प्रतीति असत्य है। अविद्या एवं उपाधि से युक्त ब्रह्म जीव का स्वरूप हैं। यही जीव अविद्या और उपाधि के न रहने पर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। अतः ब्रह्म से अतिरिक्त जीव की कल्पना करना भ्रमास्पद है। इस प्रकार जीव और भ्रम की अभिन्नता के द्वारा शांकरमत में अद्वैतवाद का प्रस्थापन किया गया है।

शंकराचार्य ने विवर्तवाद, अध्यास, सत्तात्रय और जीव सम्बन्धी सिद्धान्तों के आधार पर अपने केवलाद्वैतवाद सिद्धान्त का मण्डन किया है। (इन सिद्धान्तों के उक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य का अद्वैतवाद का स्वरूप नितान्त मौलिक एवं तर्क प्रतिष्ठित है।)

(ख) माया का प्रतिपादन

मायावाद का सिद्धान्त अद्वैत वेदान्त का मूलभूत सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के बिना अद्वैत वेदान्त की पुष्टि असम्भव है। यही कारण है कि मायावाद के सिद्धान्त से पूर्व भारतीय दर्शन में अद्वैत दर्शन की विचारधारा निष्पन्न न हो सकी थी। शंकराचार्य ने इस सिद्धान्त को स्थापित करके भारतीय दर्शन की अद्वैत परम्परा

१. जीवो हि अविद्यावेशवशाद् देहाद्यात्मभावमिव गत्वा तत्कृतेन दुःखेन दुःख्यहमित्यविद्यया दुःखोपभोगमभिमन्यते……मिथ्याभिमान भ्रम निमित्त एव दुःखानुभवः ।

ब्र० सू० शा० भा० २।३।४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को सदा के लिये निष्कण्टक बना दिया है। शंकराचार्य से पूर्व भी संहिताओं, उपनिषदों और अद्वैत प्रतिपादक अन्य माण्डूक्यकारिका आदि ग्रन्थों में माया की स्पष्ट रेखायें मिलती हैं। परन्तु उनका स्वरूप प्रतिष्ठित एवं परमार्जित नहीं है। इसका उल्लेख तृतीय अध्याय के अन्तर्गत किया जायगा। शंकराचार्य ने ही मायावाद के सिद्धान्त को पूर्ण रूप से प्रस्थापित किया है।

शंकराचार्य ने अविद्या एवं जगन्मिथ्यात्व के रूप में मायावाद के सिद्धान्त का विकास किया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में मायावाद का कुछ विकसित रूप दिखाई देता है। इसमें ईश्वर की सृजन शक्ति को माया और परमेश्वर को मायी कहा गया है।[1] शंकराचार्य ने माया को परमेश्वर की अविद्यात्मिका बीज-शक्ति कहा है। यह शक्ति अव्यक्त शब्द के द्वारा निर्दिष्ट की गई है। माया परमेश्वर में आश्रित होने वाली महासुषुप्तिरूपिणी है जिसमें अपने स्वरूप का न जानने वाले संसारी जीव शयन किया करते हैं।[2] अग्नि की अपृथग्भूता दाहिका शक्ति के समान ही माया ब्रह्म की अपृथग्भूता शक्ति है। त्रिगुणात्मिका माया ज्ञान-विरोधी भावरूप पदार्थ है। परमेश्वर की इसी अव्यक्त, अनादि, त्रिगुणात्मिका, अविद्यास्वरूप माया शक्ति के द्वारा ही जगत् की उत्पत्ति होती है।[3] माया के स्वरूप-निर्धारण के सम्बन्ध में शंकराचार्य का कथन है कि वह न सत् है और न असत्। यदि माया सत् हुई होती तो उसका बाध नहीं हुआ होता। जैसा कि ब्रह्मज्ञान होने के उपरान्त इसका बाध उसी प्रकार हो जाता है जिस प्रकार जादूगर के द्वारा बनाये हुये ऐन्द्र-जालिक वृक्ष आदि का।[4] परन्तु इसके विपरीत माया को असत् भी नहीं कहा जा सकता। यदि माया असत् हुई होती तो उसकी प्रतीति कदापि न होती। व्यावहारिक जगत् की प्रतीति माया की सत्यता को भी प्रमाणित करती है। इस प्रकार माया परमार्थ सत् एवं अलीक असत् से विलक्षण होने के कारण प्रातीतिक रूप से सत् है। यही माया का अनिर्वचनीय स्वरूप है। शंकराचार्य का कथन है कि माया न सत् रूप है, न असत् रूप, न सदसत् उभय रूप, वह न

१. मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥ श्वे० उ० ४।१०

२. ब्र० सू० शा० भा० १।४।३

३. अव्यक्तनाम्नीपरमे-शक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिकाया।
कार्यानुमेयासुधियैवमाया यथाजगत् सर्वमिदं प्रसूयते॥ विवेक चूडामणि १०८

४. राधाकृष्णनन्, इण्डियन फिलासफी, द्वितीय भाग, पृ० ५६६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भिन्न है न अभिन्न और न भिन्न अभिन्न उभय रूप । माया न अंग सहित है, अंग रहित । वह न सांग अनंग उभय रूप है । यह सब कुछ न होकर माया अत्यन्त विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय है ।[१] एक ही परमेश्वर माया के कारण अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होता है ।[२] विद्यारण्य स्वामी का कथन है कि स्पष्ट रूप से भासित होने पर भी जिसका निरूपण न किया जा सके वही माया है ।[३] शंकराचार्य के अनुसार यह माया ही जगत् प्रपंच का कारण है ।[४] परन्तु इसे द्रव्य न होने के कारण जगत् का उपादान कारण नहीं माना जा सकता माया केवल एक व्यापार[५] है जिसके द्वारा मायिक जगत् की उत्पत्ति होती है ।

माया के तीन स्वरूप

श्रुति, युक्ति और लोक-व्यवहार के आधार पर माया के तीन स्वरूप निर्धारित किए जा सकते हैं । ये स्वरूप—(१) तुच्छ, (२) अनिर्वचनीय और (३) सत्य होंगे । श्रुति के आधार पर निश्चित माया का तुच्छ स्वरूप होगा । युक्ति के द्वारा माया का प्रतिपादन असम्भव है, अतः यह माया का अनिवर्चनीय स्वरूप मानना चाहिये । तीसरा स्वरूप सत्यस्वरूप माया का लौकिक स्वरूप है । लौकिक दृष्टि से विचार करने पर माया सत्य प्रतीत होती है ।[६] माया स्वतन्त्र एवं अस्वतन्त्र दोनों ही है । चैतन्य के विना माया प्रकाशित नहीं होती इस अर्थ में वह पराधीन है । साथ ही वह असंग आत्मा को भी ससंग बनाकर जगत् की उत्पत्ति करती है । अपनी इसी अन्यथाकरण की शक्ति के द्वारा वह स्वतन्त्र है ।[७]

आवरण और विक्षेप नामक माया की शक्तियां:—

शंकराचार्य ने माया की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियां मानी हैं ।[८] माया की आवरण और विक्षेप शक्तियां ही स्वयप्रकाश एवं चैतन्य आत्मा के स्वरूप बोध की बाधक एवं समस्त प्रपंचात्मक जागतिक विक्षेप की कारण हैं ।

१. विवेक चूड़ामणि, १०९

२. एकएव परमेश्वरः कूटस्थनित्यः, विज्ञानधातुरविद्यया मायया ।
मायाविवदनेकधा विभाव्यते, नान्योविज्ञानधातुरस्ति ।। ब्र० सू० शा० भा० १।३।१९

३. पंचदशी ६।१४१, ४. ब्र० सू० शा० भा० १।३।१९

५. तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको व्यापारः, ६. पंचदशी ६।१३०

७. पंचदशी ६।१३२

८. वाक्य सुधा १३, दामोदर शास्त्री द्वारा संपादित, बनारस १३०१,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मा स्वभाव से नित्योपलब्धिस्वरूप एवं बन्धनरहित है। किन्तु माया की आवरण शक्ति के द्वारा अज्ञानी व्यक्ति उस आत्मा को उसी प्रकार बंधा हुआ समझता है जिस प्रकार कोई मूर्ख व्यक्ति अपनी दृष्टि के सामने बादल होने के कारण सूर्य को ही घनावृत मान ले।[1] ऐसी दशा में यदि उस व्यक्ति को सूर्य के दर्शन नहीं होते तो यह सूर्य का दोष कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता।[2] माया की आवरण शक्ति के द्वारा आवृत जीव अपने आप को सांसारिक विषयों का कर्त्ता भोक्ता आदि समझने लगता है। उसकी यह कर्तृत्व और भोक्तृत्व की अनुभूति उसी प्रकार है जिस प्रकार कि रस्सी में सर्पदृष्टा के हृदय में सर्पादि दर्शन से जात भय आदि की अनुभूति। सर्पादि की भ्रान्ति दूर होने के बाद तज्जन्य भय जिस प्रकार दूर हो जाता है उसी प्रकार अविद्या के नाश होने के बाद कर्तृत्व और भोक्तृत्व की वासना का भी विनाश हो जाता है।

माया विक्षेप शक्ति के रूप में समस्त प्रपंच रूप जगत् की जननी है। जिस प्रकार अज्ञान के द्वारा रस्सी में सर्प की भावना हो जाती है उसी प्रकार माया के द्वारा अज्ञानावृत आत्मा में अज्ञानी के लिये सूक्ष्म शरीर से लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त आकाशादि प्रपंच की उद्भावना हो जाती है।[3] परन्तु जब जीव माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है तो उस सर्वत्र ब्रह्म की ही सत्ता प्रतीत होती है। इतना ही नहीं वह स्वयं भी ब्रह्मरूप हो जाता है। शंकराचार्य के मायावाद की यही मूल विचारधारा है। इसका विशेष विवेचन तृतीय अध्याय के अन्तर्गत किया जायगा।

(ग) आचार सम्बधी विशेषतायें

मानव जीवन का चरम साध्य मोक्ष है। मोक्ष की स्थिति पारमार्थिक है। शंकराचार्य ने पारमार्थिक सत्ता के साथ जगत की व्यावहारिक सत्ता स्थापित करके वेदान्त दर्शन को पलायनवादी होने से बचा लिया है। व्यावहारिक जगत् की सौख्य स्थिति एवं चरम लक्ष्य की प्राप्ति के अर्थ उनके दर्शन का आचार-सम्बन्धी दृष्टि-

१. हस्तामलक १२।

२—"If we some-times do not see the light of the sun, it is no fault of the sun". —Radhakrishnan Indian Phil. Vol. II, Page 567.

३. शक्ति द्वयं हि मायायाः विक्षेपावृत्तिरूपकम्।
विक्षेपशक्तिर्लिंगादि ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्॥
अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेदं बहिश्च ब्रह्म सर्गयोः।
आवृणोत्यपराशक्ति सा संसारस्यकारणम्॥ —दृग्दृश्यविवेकः १३।१५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोण विश्व-समाज को नितान्त उपयोगी देन के रूप में प्राप्त है। आचारसिद्धान्त वेदान्तदर्शन का ही एक अंग है। शंकराचार्य ने आचारसिद्धान्त को एक ओर व्यावहारिक जीवन के साफल्य का साधन सिद्ध किया है दूसरी ओर परम्परया मोक्ष का हेतु भी माना है। इस स्थल पर शंकराचार्य के आचारसिद्धान्त की विशेषताओं का विरूपण किया जायगा।

शङ्कराचार्य का आचारसिद्धान्त

शंकराचार्य का वेदान्तिक-आचारसिद्धान्त ज्ञान और कर्म एवं व्यवहार और परमार्थ का समन्वय है। वह न तो स्पेन्सर के 'न्यू जेरुसलम' (New Jerusalem) की तरह काल्पनिक और न कान्ट के आदर्शलोक (Kingdom of Ends) की तरह अप्राप्य है। शंकराचार्य ने किसी काल्पनिक समाज की व्यवस्था न करके एक ऐसी आध्यात्मिक सत्ता के रूप में साध्य की कल्पना की है जिसमें मनुष्य अपनी चरम पूर्णता प्राप्त कर लेता है। आचार्य ने जिस कर्म-सिद्धान्त को महत्त्व दिया है वह व्यवहार और परमार्थ दोनों का साधक है। उन्होंने राग-द्वेष रहित निष्काम कर्म का सन्देश मानव समाज के श्रेय के लिये प्रस्तुत किया है। साधारणतया मलिन चित्त आत्मतत्त्व का बोध करने में असमर्थ होता है। परन्तु काम्य रहित नित्य कर्म के अनुष्ठान से चित्त शुद्धि होती है जिससे बिना किसी बाधा के जीव आत्मस्वरूप का बोध करता है।[1] इस प्रकार आत्मज्ञान की उत्पत्ति में सहायक होने के कारण नित्यकर्म मोक्ष के साधक हैं। शंकराचार्य ने अपने भाष्य में स्पष्ट कहा है कि कर्म द्वारा संस्कृत होने पर ही विशुद्धात्मा आत्मबोध करने में समर्थ होता है।[2] शंकराचार्य ने राग-द्वेष युक्त सकाम कर्म का खण्डन करके निष्काम कर्म को महत्त्व दिया है। निष्काम कर्म चित्त शुद्धि के द्वारा जीव को मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। गीता में असुर और देवताओं के कर्म की चर्चा की गई है। स्वाभाविक राग-द्वेष का त्याग करके शुभ भावना से धर्माचरण करने वाला व्यक्ति देव कहलाता है। इसके विपरीत स्वभाव सिद्ध राग-द्वेष से अधर्माचरण करने वाला व्यक्ति असुर कहलाता है। यह देवकर्म एक ओर आध्यात्मिक प्राप्ति का साधन है दूसरी ओर सुखी आदर्श समाज का प्रस्थापक। जहां सकाम कर्म का अनुष्ठान तथा अभ्यास मनुष्य को पशुत्त्व की ओर ले जाता है वहां निष्काम कर्म

१. गीता शा० भा० १८।२१० सन्दर्भ।

२. कर्मभिः संस्कृताहि विशुद्धात्मानः शक्नुवन्त्यात्मानमुपनिषत् प्रकाशितमप्रतिबन्धेन वेदितुम् ......एवं काम्यवर्जितं नित्यं कर्मजातं सर्वमात्मज्ञानोत्पत्ति द्वारेण मोक्षसाधनत्वं प्रतिपद्यते। —बृह० उ० भा० ४।४।२२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानव को सुरत्व में परिणत कर देता है। इस प्रकार आचार्य शंकर का निष्काम कर्म ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार का सन्तोष प्रदान करता है।

शांकरदर्शन के सम्बन्ध में यह आक्षेप नितान्त अयुक्त है कि शांकरदर्शन में कर्म की निरर्थकता सिद्ध की गई है। यह कथन तो सत्य ही है कि शंकराचार्य कर्म को मुक्ति में बाधक मानते हैं। अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य[1] एवं बृहदारण्यक[2] के भाष्य में उन्होंने कर्म को मुक्ति का साधन नहीं स्वीकार किया है। परन्तु इससे आचार्य का तात्पर्य कर्म की निरर्थकता से कदापि नहीं है। गीताभाष्य में आचार्य ने स्पष्ट कहा है कि मनुष्य का कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाता। जो जिस भावना से कर्म करता है उसको भगवान् वैसा ही फल देते हैं।[3] शंकराचार्य को मीमांसकों के अनुसार सीधे कर्म से अथवा ज्ञानकर्मसमुच्चय से मुक्तिलाभ स्वीकार करने में आपत्ति है।[4] परन्तु परम्परया शंकराचार्य कर्म को भी मुक्ति का साधन मानते हैं। मुमुक्षु के अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म व्यर्थ नहीं है। आत्मबोध के लिये चित्त-शुद्धि परमावश्यक है। सर्वत्र विद्यमान होने पर भी आत्मा सर्वत्र अवभासित नहीं होता। सभी में आत्मा है परन्तु सभी को आत्म-साक्षात्कार नहीं होता। आत्मसाक्षात्कार के लिये उसी प्रकार निर्मल चित्त की आवश्यकता है जिस प्रकार किसी भी वस्तु के प्रतिबिम्ब के अर्थ स्वच्छ दर्पण की।[5] यद्यपि मोक्ष का मुख्य कारण ज्ञान ही है परन्तु परम्परया कर्म आदि भी मोक्ष प्राप्ति में सहायक हैं।

कर्म का त्रिविध स्वरूप

कर्म के तीन रूप हैं—(१) संचित (पूर्व काल के कर्म जो जमा हैं), (२) संचीयमान (वे नये कर्म जो जीवन में जमा हो रहे हैं), (३) प्रारब्ध (पूर्व काल के वे कर्म जिनका फल-भोग हो रहा है)। संचित कर्म पूर्वकृत कर्म हैं और संचीयमान कर्म भविष्य में उत्पन्न करने वाला कर्म। तीसरे कर्म-प्रारब्ध कर्म का भोग अनिवार्य है। संचित और संचीयमान कर्मों का विनाश कर्मयोग, ध्यान, सत्संग, जप अर्थ और परिपाक के अवलोकन से हो जाता है।[6] निष्काम कर्म

१. ब्र० सू० शा० भा० १।१।४, २. बृ० उ० भा० ३।३।१
३. गीता शा० भा० ४।११, ४. ऐतरेयोपनिषद् भाष्य का उपोद्घात
५. सदासर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासेत।
बुद्धावेवाव भासेत स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत्।। —आत्मबोध १७।
६. कर्मतो योगतो ध्यानात् सत्संगाज्जापतोऽर्थतः।
परिपाकावलोकाच्च कर्मनिर्हरणं जगुः ।। —विज्ञान दीपिका २२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का अनुष्ठान पुण्य पाप आदि कर्मों के नाश का हेतु है। यही पुण्य पाप आदि कारण भूत स्थूल और सूक्ष्म के विलय का हेतु भी है।[1] उपर्युक्त कर्म निर्हार मुक्ति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि कर्म-वासना और वासना जीव-बन्धन का कारण है। अतः मोक्ष लाभ के लिये कर्म निर्हरण अत्यन्त आवश्यक है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि शंकराचार्य का आचार सम्बन्धी सिद्धान्त व्यवहार और परमार्थ दोनों दशाओं में उपयोगी सिद्ध हुआ है। जहाँ दार्शनिक प्लेटो की 'शुभकामना' और अरस्तु के 'नैतिक गुण' के सिद्धान्त भी निहित हैं,[2] शंकराचार्य का आचार सम्बन्धी सिद्धान्त भारतीय दर्शन की अद्वितीय विशेषता है।

(घ) कुछ अन्य देन

शंकराचार्य की उपर्युक्त देन के अतिरिक्त भारतीय दर्शन को कुछ और देन प्राप्त है। आचार्य ने अपने समय में प्रचलित समस्त अवैदिक मतों का खण्डन करके वैदिक धर्म की फिर से स्थापना की थी। इसके अतिरिक्त दार्शनिक उत्थान एवं धर्माचरण के निमित्त भारतवर्ष में चार मठों की स्थापना करके जो वातावरण उत्पन्न किया है वह दार्शनिक जगत् के लिये परम हितकर सिद्ध हुआ है। इस दिशा में उनका धार्मिक प्रचार-प्रयास भी स्तुत्य है। तान्त्रिक उपासना के क्षेत्र में आचार्य ने जिस पद्धति का निर्माण किया है वह अद्वितीय है। भाष्यग्रन्थों में आचार्य ने इस विषय को अन्तरंग वस्तु समझ कर इसका उल्लेख नहीं किया है। भगवती त्रिपुरसुन्दरी के अनन्य उपासक शंकराचार्य ने श्रीविद्या के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह विलक्षण है उन्होंने इस विषय का प्रतिपादन 'सौन्दर्य-लहरी' तथा "प्रपंचसार" नामक ग्रन्थों में बड़े सुन्दर ढंग से किया है। शंकराचार्य एक

---

१. विज्ञान दीपिका ३०।

2. Plato recommends for Philosophers the persuit of wisdom which has for its final fruit the vision of the idea of the good and for others true openion, which is limited to one's station and its duties.

Similarly, Aritotle recommends for the ordinary man "moral vertues", which are emphetically "human affairs" and for those who aim at immortality the exercise of reason which approchends things noble and devine.

—Radhakrishnan, Indian Phil, Vol. II, Page 6

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न महापुरुष थे जिनकी प्रतिभा का प्रतिफलन दर्शन के क्षेत्र में सर्वत्र श्लाघनीय है।

वेदान्त में मायावाद का महत्त्व

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य की विख्याति का प्रमुख कारण मायावाद है। वेदान्त में मायावाद का महत्त्व इसी से जाना जा सकता है कि मायावाद के बिना वेदान्तदर्शन का प्रतिपादन ही असम्भव है। वेदान्तदर्शन से उपनिषद्-दर्शन का ही तात्पर्य है।[१] उपनिषदों के सिद्धान्तों में परस्पर इतना विरोध पाया जाता है कि उनसे किसी एक सिद्धान्त का बोध नहीं होता। उदाहरण के लिये कठोपनिषद्[२] में यदि ब्रह्म को निर्गुण सिद्ध किया गया है तो मुण्डकोपनिषद्[३] में इसके विपरीत ब्रह्म के सगुण रूप की चर्चा मिलती है। वृहदारण्यक[४] में जो जगत् असत् है उसी की तैत्तिरीय[५] में ब्रह्म के द्वारा उत्पत्ति दिखाई गई है। जिस ब्रह्म को कठ[६], केन[७], और वृहदारण्यक[८] में अज्ञेय कहा गया है वही ब्रह्म वृहदारण्यक[९] और तैत्तिरीय[१०] के अनुसार ज्ञेय भी है। छान्दोग्य[११] में यदि जीव और ब्रह्म के ऐक्य का अभिप्राय है तो कठोपनिषद्[१२] में जीव और ब्रह्म के भेद का स्पष्ट संकेत मिलता है।

उक्त उद्धरणों के आधार पर उपनिषद्दर्शन के सिद्धान्तों में परस्पर पर्याप्त विरोध देखा गया है। यह विरोध ही मूल वेदान्तदर्शन की अस्पष्टता का कारण है। परन्तु शंकराचार्य ने मायावाद की स्थापना के द्वारा उपनिषदों के सिद्धान्तों में सामंजस्य ला दिया है। मायावाद के स्वीकार कर लेने पर उपनिषद् सिद्धान्तों का उक्त विरोध स्वतः शान्त हो जाता है। मायावाद सिद्धान्त के अनुसार एकमात्र निर्गुण ब्रह्म ही परमार्थ सत्य है। माया ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति है। माया विशिष्ट ब्रह्म की ईश्वर संज्ञा है। यह ब्रह्म का सगुण रूप है। इस प्रकार मायावाद के अनुसार ब्रह्म सगुण भी है और निर्गुण भी है। असद् रूपा मिथ्याभूता सनातनी माया ही जड़ जगत् का उपादान कारण है। परमार्थ में असद्-रूपा

---

१. वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणम्। —वेदान्त सार ३,
२. क० उ० ३।८, ३।१२, ३. मु० उ० १।१।९
४. वृ० उ० ४।४।१९ ५—ते भृगुवल्ली १
६. क० उ० ३।१२, ७—केन उ० १।५, ६, ७, ८
८. वृ० उ० ४।५।१५ ९— वृ० उ० ४।४।१९
१०. तै० उ० २।१।१, ११—छा० उ० ६।१६।३, १२. कठ० उ० ३।१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माया से उत्पन्न होने के कारण मायिक जगत् भी असत् ही है। परन्तु अध्या न्याय के द्वारा उसी प्रकार ब्रह्म जगत् का कारण प्रतीत होता है जिस प्रकार र सर्प का कारण है। (अविद्या निवृत्ति होने पर सर्प एवं जगत् का स्वतः अप हो जाता है। सद् ब्रह्म में आरोपित होने के कारण ही असत् जगत् भी सद् प्रतीत होता है।) मायावाद के द्वारा ही ब्रह्म की ज्ञेयता एवं अज्ञेयता भी सिद्ध जाती है। (वृत्तिगत ज्ञान के द्वारा ब्रह्मज्ञान में बाधक अविद्या का आवरण जाता है इसलिये ब्रह्म ज्ञेय है।) परन्तु वृत्ति ज्ञान ब्रह्मज्ञान कराने में उसी प्र समर्थ नहीं है जिस प्रकार दीपक सूर्य दर्शन में असमर्थ है। इस अर्थ में ब्रह्म अ है। दूसरी बात यह है कि ब्रह्म ज्ञानावस्था में ज्ञाता और ज्ञेय की भेद सत्ता न हो जाती है। मायावादी के मतानुसार अविद्योपाधिक ब्रह्म ही जीव है। जीव और ब्रह्म के भेद का कारण अविद्या है। अविद्या निवृत्ति होने पर जीव भाव को प्राप्त हो जाता है। इस दृष्टि से दोनों में अभेद है।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि शंकराचार्य का मायावाद वेदान्तदर्शन अस्पष्ट समस्याओं के समाधान का एक सरल एवं सफल प्रयास है। यद्यपि राम प्रभृति आचार्यों ने भी भिन्न-भिन्न प्रकार से उपनिषद्दर्शन के सामजस्य का प्र किया है परन्तु ये आचार्य उपनिषद् प्रतिपाद्य निर्गुण अद्वैतवाद ब्रह्म के स्वरू प्रतिपादन में असफल रहे हैं।

मायावाद के प्रक्रिया के अनुरूप प्रातिभासिक, व्यावहारिक एवं पारमा सत्ताओं की स्थापना से वेदान्तदर्शन में जो व्यावहारिकता, कर्मण्यता और आ रात्मकता आ गई है उससे वेदान्तदर्शन का मूल्य और भी अधिक बढ़ गया इस प्रकार यह कहना असंगत न होगा कि वेदान्तदर्शन में जो स्थान मायावा है वह किसी अन्य सिद्धान्त का नहीं।

शांकरवेदान्त के अध्ययन के प्रयास

(वेदान्त दर्शन भारतीय दर्शन का सम्राट है और शांकरवेदान्त उसकी पताका। उसी के बल पर आज वेदान्तदर्शन का सम्मान है और रहेगा। कता के क्रोड़ में पोषित मानव से जन्य प्रेरणा ही दार्शनिक अध्ययन की प्रवृत्ति मूल है।) फलतः इस विषय में अध्ययन की प्रवृत्ति सदा से रही है। शंकराचा पूर्व भी लगभग १५ वेदान्त के आचार्य हुए हैं जिन्होंने वेदान्त दर्शन के सम्ब अपने पुष्ट विचार प्रकट किये हैं। शांकरवेदान्त की प्रौढ़ि एवं उसकी प्रख्याति कारण इस ओर अध्ययन की प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक ही था। इसके परि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वरूप प्राचीन और अर्वाचीन भारतीय और पश्चिमी सभी विद्वानों ने शांकरवेदान्त के अध्ययन का प्रयास किया है। शांकरवेदान्त के अध्ययन के प्रयास रूप में जो ग्रन्थ एवं लेख लिखे गये हैं उनमें से प्रमुख-प्रमुख का ही यहां उल्लेख किया जायगा। अध्ययन की सुविधा के लिये शांकरवेदान्त सम्बन्धी ग्रन्थों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से करना समीचीन होगा।

१ संस्कृत में वेदान्त के मूल-ग्रन्थ एव टीका-ग्रन्थ। २—अंग्रेजी के आलोचनात्मक ग्रन्थ। ३—हिन्दी के आलोचनात्मक ग्रन्थ। ४—जर्मन भाषा के आलोचनात्मक ग्रन्थ। ५—बंगला के आलोचनात्मक ग्रन्थ। ६—महाराष्ट्री के आलोचनात्मक ग्रन्थ। ७—पत्र-पत्रिकायें।

क—संस्कृत पत्र-पत्रिकायें। ख—अंग्रेजी पत्र-पत्रिकायें। ग—हिन्दी पत्र-पत्रिकायें।

१—संस्कृत में वेदान्त के मूलग्रन्थ एवं टीकाग्रन्थ

विज्ञान दीपिका—इसके लेखक आचार्य पद्मपाद हैं। इस ग्रन्थ में पद्मपादाचार्य ने वेदान्त सम्मत आचार पद्धति का विवेचन किया है। इसके अनुसार संसारोच्छेद के अर्थ कर्म निर्हरण नितान्त आवश्यक हैं।

आत्मानात्म विवेक—इसके लेखक भी आचार्य पद्मपाद ही हैं। इसमें आचार्य ने आत्मा के सम्बन्ध में गहन विवेचन प्रस्तुत किया है। यत्र-तत्र माया का विवरण भी दिया है।

नैष्कर्म्य सिद्धि[१]—इसके लेखक सुरेश्वराचार्य, भूतपूर्व मण्डन मिश्र हैं। इस ग्रन्थ में लेखक ने नैष्कर्म्य को ही मोक्ष का साधन सिद्ध किया है। यह वेदान्त का प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में तीन प्रकार के समुच्चयवाद का खण्डन भी किया गया है।

इष्ट सिद्धि या स्वराज्य सिद्धि—इसके लेखक भी आचार्य सुरेश्वर ही हैं। इसमें आचार्य ने ब्रह्मज्ञान के सम्बन्ध में अपने तर्क दिये हैं। इस ग्रन्थ में दी गई ब्रह्मज्ञान की प्रक्रिया श्लाघनीय है

संक्षेप शारीरक—इसके लेखक सुरेश्वराचार्य के शिष्य सर्वज्ञात्म मुनी हैं। इसकी रचना ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य के आधार पर ही हुई है। विषयों का क्रम भी वैसा ही है। इस ग्रन्थ की चार प्रमुख टीकायें इसके महत्त्व को प्रदर्शित करती हैं। ये टीकायें नृसिंहाश्रम की 'तत्त्वबोधिनी', मधुसूदन सरस्वती का 'सारसंग्रहः,

१. भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना १९२५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरुषोत्तम दीक्षित की 'सुबोधिनी' तथा रामतीर्थ की 'अन्वयार्थ प्रकाशिका' हैं।

इष्ट सिद्धि—इस ग्रन्थ के लेखक विमुक्तात्मा हैं। यह ग्रन्थ अद्वैत वेदान्त के ग्रन्थों में नितान्त मौलिक माना जाता है। इसका प्रकाशन 'बड़ौदा गायकवाड़ ग्रन्थमाला' में हुआ।

शब्द निर्णय—इसके लेखक प्रकाशात्मयति हैं। इसका प्रकाशन 'अनन्त शयन ग्रन्थावली में हुआ है।

खण्डन खण्ड खाद्य[1]—यह ग्रन्थ वेदान्त के शिरोमणि ग्रन्थों में से है। इसके रचयिता काव्यानन्द के भोक्ता नैषधीयचरित के रचयिता श्रीहर्ष हैं।

वेदान्त कौमुदी[2]—इसके लेखक अद्वयाश्रम के शिष्य रामद्वय हैं। यह ग्रन्थ अप्रकाशित ही था। मद्रास विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सुब्रह्मण्य शास्त्री ने इसका सम्पादन किया है।

न्यायमकरन्द—अद्वैत वेदान्त के इतिहास में ग्रन्थ का उचित सम्मान है। इसके लेखक आनन्दबोध भट्टारक हैं।

तत्वप्रदीपिका[3]—इस ग्रन्थ को चित्सुखी भी कहते हैं। इसके लेखक चित्सुखाचार्य हैं। अद्वैत वेदान्त का यह नितान्त मौलिक ग्रन्थ है।

शास्त्र दर्पण[4]—इसके लेखक अमलानन्द हैं। इस लघुकाय ग्रन्थ में सुयोग्य विद्वान् ने अद्वैत वेदान्त की श्रेष्ठ मीमांसा की है। अमलानन्द ने ही वेदान्त कल्पतरु की भी रचना की है।

वैयासिक न्यायमाला[5]—इस ग्रन्थ के लेखक विद्यारण्य स्वामी के गुरु आचार्य भारती तीर्थ हैं। आचार्य का यह ग्रन्थ अद्वैत वेदान्त के समझने के लिये नितान्त उपादेय है। इस ग्रंथ में भारती तीर्थ ने ब्रह्मसूत्र के चारों सूत्रों का सार संग्रह केवल ४ श्लोकों में ही कर दिया है।

पंचदशी—इसके लेखक विद्यारण्य मुनि हैं। इन्हें ही माधवाचार्य भी कहते हैं। पंचदशी अद्वैत वेदान्त के प्रमुख प्रकरण ग्रन्थों में से है। इसमें १५ प्रकरण में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों को सरल ढंग से स्पष्ट किया गया है। कई स्थलों पर माया की वर्णना भी की गई है। छठे प्रकरण में माया का सुन्दर विवेचन मिलता है।[6]

१. मेडिकल हाल बनारस, १८८८। २. यूनिवर्सिटी आफ मद्रास, १९५५
३. उदासीन संस्कृत विद्यालय, बनारस, १९५६।
४. वाणी विलास पैस, श्रीरंगम्, १९१३। ५. पूना संस्करण, १९११।
६. बुद्धि सेवाश्रम रतनगढ़।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवन्मुक्ति विवेक[१]—इसके लेखक भी विद्यारण्यमुनि ही हैं। इस ग्रन्थ में मुक्ति के सम्बन्ध में विवेचन करते हुये संन्यासियों के समस्त धर्मों का निरूपण किया गया है।

सर्व दर्शन संग्रह[२]—विद्यारण्य मुनि ने इस ग्रन्थ में समस्त दर्शनों का सार संग्रह किया है। यह ग्रन्थ विभिन्न दर्शनों की कुंजिका है।

पंचीकरण विवरण—इसके लेखक शांकरभाष्य के प्रसिद्ध टीकाकार आनन्दगिरि हैं। इसमें अद्वैत वेदान्त के मुख्य सिद्धान्त पंचीकरण का विवेचन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है।

वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावलि[३]—यह ग्रन्थ वेदान्त का सुप्रसिद्ध प्रमाण ग्रन्थ है। ग्रन्थ की विवेचन शैली युक्तियुक्त पाण्डित्यपूर्ण एवं प्रांजल है। इसके लेखक प्रकाशानन्द हैं। आशु

अद्वैत रत्न—इसके रचयिता मल्लनाराध्य हैं। इस ग्रन्थ में लेखक ने द्वैत का खण्डन करके अद्वैत का प्रस्थापन किया है।

अद्वैत सिद्धि[४]—इसके लेखक काशी के सुप्रसिद्ध संन्यासी विद्वान् मधुसूदन सरस्वती हैं। अद्वैत सिद्धान्त का यह प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में मिथ्यात्व का प्रतिपादन पांच प्रकार से किया गया है।

वेदान्त कल्पलतिका—इसकी रचना भी मधुसूदन सरस्वती ने ही की है। इसमें लेखक ने मुक्ति के स्वरूप का विवेचव बड़े सुन्दर ढंग से किया है।

अद्वैतरत्न रक्षण—इसके लेखक भी मधुसूदन सरस्वती ही हैं। इसमें अद्वैत का निरूपण अत्यन्त तर्क प्रतिष्ठित शैली के आधार पर किया गया है।

वेदान्त तत्त्वविवेक[५]—इसकी रचना नृसिंहाश्रम ने की है। इस ग्रन्थ में लेखक ने गहन तत्त्व का विवेचन् सरल शैली में करके अद्वैत का मण्डन किया है।

अद्वैत दीपिका[६]—यह ग्रन्थ भी नृसिंहाश्रम विरचित ही है। इस लघुकाय ग्रन्थ में आचार्य ने अद्वैत का प्रतिपादन बड़ी सुन्दर युक्तियों से किया है।

भेद धिक्कार[७]—यह ग्रन्थ भी नृसिंहाश्रम रचित ही है। यह वेदान्त का अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

---

१. वासुदेव संपादित, पूना १९१६
२. कल्याण मुम्बई संवत् १९८२
३. आशुबोध विद्याभूषण, कलिकाता
४. निर्णय सागर, सन् १९१७
५. गोपाल शास्त्री नेने, मैडिकल हाल, बनारस, १९१९
६. इ० जै० लजारस एण्ड कं०, काशी
७. लक्ष्मण शास्त्री संपादित, बनारस १९०४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिद्धान्त लेश-संग्रह[1]—इस ग्रन्थ के रचयिता अद्वैत दर्शन के प्रमुख प्रतिपादक अप्पय दीक्षित हैं। इस ग्रन्थ में दीक्षित जी ने अद्वैत वेदान्त के प्रमुख-प्रमुख मतों का प्रामाणिक विवरण दिया है। अद्वैत वेदान्त के ऐतिह्य-अनुसन्धान की दृष्टि से इस ग्रन्थ का महान् मूल्य है।

माध्व तन्त्र मुख-मर्दन[2]—इसके लेखक भी अप्पय दीक्षित ही हैं। इसमें दीक्षित जी ने माध्वसिद्धान्त का खण्डन बड़े युक्ति सम्पन्न तर्कों द्वारा किया है।

अद्वैत विद्या मुकुर—इसके लेखक अप्पय दीक्षित के पिता श्री रंगराजाध्वरी हैं।

विवरण दर्पण—इसकी रचना भी रंगराजाध्वरी ने ही की है। इन दोनों ग्रन्थों में लेखक ने न्याय, सांख्य एवं वैशेषिक मतों का खण्डन करके अद्वैत मत का प्रतिपादन किया है।

वेदान्त परिभाषा[1]—इस ग्रन्थ में वेदान्त के प्रमाण विषयक विचारों की चर्चा लेखक धर्मराजाध्वरीन्द्र ने बड़े सुन्दर ढंग से की है। वेदान्त के ग्रन्थों में इसका समुचित समादर है।

तत्त्व कौस्तुभ - इसके रचयिता वैयाकरण भट्टोजी दीक्षित हैं।

अद्वैत विद्या विलास—इस ग्रन्थ के लेखक सदाशिव ब्रह्मेन्द्र हैं। इस ग्रन्थ में लेखक ने अद्वैत का प्रतिपादन किया है।

वेदान्त सार[4]—इस ग्रन्थ की रचना सदानन्द योगीन्द्र ने की है। सुयोग्य विद्वान् ने इस लघुकाय ग्रन्थ में गागर में सागर भर दिया है। इस पर प्रो० रामशरण जी की टीका नितान्त उपादेय है।

तत्त्वानुसन्धान—इसकी रचना महादेव सरस्वती ने की है। यह एक ऐसा प्रकरण ग्रन्थ है जिसमें अद्वैत वेदान्त का मण्डन सरल शैली में किया गया है। इस ग्रन्थ की भाषा भी सरल है।

आत्म-विद्या विलास—इसके लेखक श्री सदाशिवेन्द्र सरस्वती हैं। इस ग्रन्थ में लेखक ने आत्म-विद्या का युक्तियुक्त विवेचन किया है।

अद्वैत रस मंजरी—इस ग्रन्थ में लेखक सदाशिवेन्द्र सरस्वती ने अद्वैत मत का प्रतिपादन विवेचनात्मक तर्कों के आधार पर किया है।

---

१. अच्युत ग्रन्थमाला, काशी २. रामनाथ दीक्षित, हनुमानघाट, बनारस १९४१
३. 'कल्याण' बम्बई सं० १९८९ ४. ओरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना १९२९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यास तात्पर्य निर्णय—इसकी रचना आयन्न दीक्षित ने की है। अद्वैतवादी लेखक ने इस ग्रन्थ में भगवान् व्यास के सूत्रों का सामंजस्य विभिन्न अद्वैत परक सिद्धान्तों के साथ किया है। अद्वैत दर्शन के क्षेत्र में इस ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ब्रह्मविद्याभरण—इस की रचना अद्वैतानन्द ने की है। इस में ब्रह्मसूत्र के चारों अध्यायों की व्याख्या है। इसे शांकरभाष्य की वृत्ति कह सकते हैं।

ब्रह्मसूत्र दीपिका—आचार्य शंकरानन्द ने इस ग्रन्थ में बड़ी सरल भाषा में शांकर मत के अनुसार ब्रह्मसूत्र की व्याख्या की है।

ब्रह्मामृतवर्षिणी[1]—इस टीका के रचयिता रामानन्द सरस्वती हैं। यह टीका सिद्धान्ततः शांकरभाष्य का ही अनुसरण करती है। ब्रह्मसूत्र के समझने के लिये यह एक सरल प्रयास है।

रत्नप्रभा[2]—यह टीका ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य की सरलतम टीका है। इसमें प्रायः भाष्य के प्रत्येक पद की ही व्याख्या की गई है। इसकी रचना गोविन्दानन्द ने की है।

भामती[3]—वाचस्पति मिश्र की यह टीका ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य पर सर्वोत्तम टीका है। शांकरभाष्य की विद्वत्तापूर्ण टीकाओं में इसका सर्वप्रथम स्थान है।

विद्या श्री—ब्रह्मसूत्र शारीरकभाष्य की इस टीका के रचयिता विमुक्तात्मा है।

पंचपादिका[4]—आचार्य पद्मपाद ने गुरु की आज्ञा से शारीरकभाष्य की व्याख्या लिखना आरम्भ किया था। परन्तु आज केवल चार सूत्रों की ही व्याख्या उपलब्ध है। इस व्याख्या का नाम पंचपादिका है।

भाव प्रकाशिका—यह टीका शारीरक भाष्य के ऊपर है। इसके रचयिता चित्सुखाचार्य हैं।

न्याय निर्णय—वेदान्त सूत्र के शांकरभाष्य पर यह एक सुबोध टीका है। इसकी रचना आनन्दगिरि ने की है।

ब्रह्मसूत्र वृत्ति—इसकी रचना रंगनाथ जी ने की है। यह रचना शांकरभाष्य के अनुसार ही है। इन्होंने ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद के

---

1. ब्रह्मानन्द संपादित, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, १९११
2. निर्णय सागर, १९०९
3. बालशास्त्री संपादित, बनारस १८८०
4. रामशास्त्री संपादित, बनारस १९९१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्तर्गत 'प्रकरणत्वात्' यह एक नवीन सूत्र माना है।

वेदान्त कल्पतरु[1]—यह वाचस्पति मिश्र की भामती का अति उत्कृष्ट व्याख्यान ग्रन्थ है। इसके रचयिता अमलानन्द है। भामती परिज्ञान के लिये इस टीका की महती उपयोगिता है।

कल्पतरु परिमल[2]—यह वेदान्त कल्पतरु की टीका है। इसकी रचना प्रसिद्ध विद्वान् अप्पय दीक्षित ने की है।

तत्व बोधिनी—यह टीका सर्वज्ञात्म मुनि के संक्षेप शारीरक की टीका है। इसकी रचना नृसिंहाश्रम ने की है।

सुबोधिनी[3]—यह टीका भी संक्षेप शारीरक ग्रन्थ की ही है। इसकी रचना पुरुषोत्तम दीक्षित ने की है। संक्षेप शारीरक के सिद्धान्तों से अवगत होने के लिये यह एक सरल प्रयास है।

अन्वयार्थ प्रकाशिका[4]— संक्षेप शारीरक की इस टीका के कर्त्ता रामतीर्थ...

चन्द्रिका—यह सुरेश्वराचार्य के नैष्कर्म्य सिद्धि की टीका है। इसके रचयिता विमुक्तात्मा हैं।

विवरण—पद्मपादाचार्य की पंचपादिका पर इस प्रौढ़ व्याख्या की रचना मिलती है। वाचस्पति मिश्र की भामती के बाद इसी टीका का महत्व है। भामती प्रस्थान की ही तरह इसे भी विवरण प्रस्थान कहते हैं। इसके रचयिता प्रकाशात्म यति हैं।

पंचपादिका दर्पण—इस टीका के रचयिता आचार्य अमलानन्द हैं। यह पद्मपादाचार्य की पंचपादिका की व्याख्या है।

अभिप्राय प्रकाशिका—इसके लेखक भी चित्सुखाचार्य ही हैं। यह 'ब्रह्मसिद्धि' ग्रन्थ के ऊपर है।

भावतत्त्व प्रकाशिका— सुरेश्वराचार्य के ग्रन्थ नैष्कर्म्य सिद्धि की टीका है। इसमें आचार्य सुरेश्वर के विवेचन का समुचित एवं सरल स्पष्टीकरण है। इसके लेखक भी आचार्य चित्सुख ही हैं।

न्याय मकरन्द टीका—प्रसिद्ध ग्रन्थ न्यायमकरन्द पर भी आचार्य ने टीका लिखी है। यह टीका बड़ी सरल है।

---

१. रामशास्त्री तैलंग संपादित, बनारस १८९५-१८९७।
२. अनन्तकृष्ण शास्त्री संपादित, निर्णय सागर १९१७।
३. आनन्दाश्रम संस्कृत सीरिज, पूना। ४. काशी संस्कृत सीरिज, बनारस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खण्डन खण्ड खाद्य व्याख्यान—श्री हर्ष के प्रसिद्ध ग्रन्थ खण्डन खण्ड खाद्य पर चित्सुखाचार्य ने यह टीका लिखी है। वेदान्त के मार्मिक ग्रन्थ के आलोड़न का यह सरल प्रयास है।

कल्पतरु मंजरी—भामती की टीका कल्पतरु की यह व्याख्या है। इसके लेखक श्री वैद्यनाथ जी हैं।

ऋतु प्रकाशिका—यह टीका भामती की व्याख्या है। इसके लेखक अखण्डानन्द हैं।

तत्वदीपन—इसके लेखक भी अखण्डानन्दन हैं। इनकी तत्त्वदीपन रचना पंचपादिका की विवरण टीका के ऊपर एक व्याख्यात्मक निबन्ध है।

बृहदारण्यकवार्तिक व्याख्या—आचार्य सुरेश्वर कृत बृहदारण्यक वार्तिक पर आनन्दगिरि की व्याख्या बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इस टीका में पाण्डित्य का अद्भुत प्रकाश है।

गीताभाष्य की टीका—गीता के शांकरभाष्य पर आनन्दगिरि की टीका बड़ी उपादेय है। इससे शांकरभाष्य का अक्षर अक्षर बड़ी सरलता से लग जाता है।

उपनिषद् भाष्य टीका—उपनिषद् साहित्य वेदान्त विद्या का आगार है। इस पर शांकरभाष्य भी उपलब्ध है। आनन्दगिरि ने अपनी टीका से इस भाष्य का बड़ा सुन्दर विवेचन किया है।

सिद्धान्त दीपिका—प्रकाशानन्द की वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली वेदान्त दर्शन के क्षेत्र में शिरोधार्य है। उन्हीं के शिष्य नाना दीक्षित ने मुक्तावलि पर सिद्धान्त-दीपिका टीका लिखी है।

सिद्धान्त बिन्दु[1]—इसकी रचना प्रख्यात विद्वान् मधुसूदन सरस्वती ने की है। शंकराचार्य ने दशश्लोकी की रचना की थी। सरस्वती जी की यह टीका दश-श्लोकी के ऊपर ही है

गूढ़ार्थल दीपिका—यह श्री मधुसूधन सरस्वती जी कृत गीता की टीका है। यह गीता की सर्वोत्तम टीका है। इसमें प्रायः गीता के प्रत्येक शब्द की व्याख्या उपलब्ध होती है।

वेदान्त रत्न कोष—इसकी रचना भी नृसिंहाश्रम ने ही की है। यह टीका आचार्य पद्मपाद की पंचपादिका की व्याख्या है।

प्रकाशिका—यह टीका नृसिंहाश्रम द्वारा रचित है। यह प्रकाशात्मयति की विवरण टीका के ऊपर है।

१. त्र्यम्बक शास्त्री संपादित, काशी संस्कृत सीरिज, बनारस १९२८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाव प्रकाशिका—नृसिंहाश्रम की भाव प्रकाशिका टीका तत्त्वदीपन टीका है।

वेदान्त शिखामणि—धर्मराजाध्वरीन्द्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ वेदान्त परिभाषा ऊपर इस टीका की रचना मूल लेखक के पुत्र रामकृष्ण ने की है।

लघुव्याख्या—मधुसूधन सरस्वती के ग्रन्थ सिद्धान्तबिन्दु पर नारायणतीर्थ लघुव्याख्या टीका है।

न्याय रत्नावली[1]—इसकी रचना ब्रह्मानन्द सरस्वती जी ने की है। टीका भी सिद्धान्तबिन्दु की ही व्याख्या है।

लघुचन्द्रिका—अद्वैतसिद्धि वेदान्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उसी के स्पष्टी एवं विवेचन के लिये गौड़ ब्रह्मानन्द ने लघुचन्द्रिका की रचना की है। लेखक प्रयास में पूर्णतया सफल हुआ है।

ब्रह्मतत्त्व समीक्षा—मण्डन मिश्र की ब्रह्मसिद्धि की व्याख्या ही ब्रह्म समीक्षा है। इसकी रचना भी भामती टीकाकार वाचस्पति मिश्र द्वारा ही की है। इस टीका का संकेत वाचस्पति मिश्र ने अपनी भामती के अन्तर्गत किया

सुबोधिनी—सदानन्द विरचित वेदान्तसार का स्थान वेदान्त के क्षेत्र प्रमुख है। नृसिंह सरस्वती ने उसी के ऊपर 'सुबोधिनी' नामक टीका लिखी।

विद्वन्मनोरंजनी - इसकी रचना स्वामी रामतीर्थ ने की है। यह टीका सदानन्द जी के वेदान्तसार के ऊपर ही है।

पदयोजनिका—शंकराचार्य के उपदेश सहस्री ग्रन्थ के ऊपर रामतीर्थ पदयोजनिका टीका है। इस टीका में शांकरवेदान्त का स्पष्ट विवेचन होता है।

बालबोधिनी—इस टीका के रचयिता प्रसिद्ध मीमांसक विद्वान् आपदेव यह टीका सदानन्द के वेदान्तसार ग्रन्थ के ऊपर है। यह टीका वेदान्तसार सुबोधिनी और विद्वन्मनोरंजनी टीकाओं से भी उत्कृष्ट है। इस ग्रन्थ में वेदान्त का ही समर्थन है।

विवरणोपन्यास—आचार्य पद्मपाद की पंचपादिका के ऊपर प्रकाशात्म विवरण टीका है। विवरण टीका की ही व्याख्या रामानन्द सरस्वती ने विवर न्यास में की है।

भावबोधिनी इसकी रचना प्रो० रामशरण त्रिपाठी ने की है। यह सदानन्द के वेदान्तसार की सरल व्याख्या है।

१. त्र्यम्बक शास्त्री संपादित, काशी संस्कृत सीरिज़।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृष्णालंकार - अप्पय दीक्षित की प्रसिद्ध रचना 'सिद्धान्त लेश' के ऊपर अच्युत कृष्णानन्द तीर्थ की कृष्णालंकार टीका है।

वनमाला—कृष्ण-भक्त अच्युत कृष्णानन्द तीर्थ ने तैत्तिरीयोपनिषत् शांकर-भाष्य पर 'वनमाला' नाम की टीका भी लिखी है। इस टीका में शांकरवेदांत का समुचित विवेचन है।

अद्वैतचिन्ताकौस्तुभ[1]—महादेव सरस्वती ने तत्त्वानुसंधान नामक ग्रन्थ की रचना की है। उन्होंने तत्त्वानुसंधान के ऊपर अद्वैत चिन्ताकौस्तुभ की रचना की है। इस ग्रन्थ में अद्वैत सिद्धान्त के सम्बन्ध में उठने वाली शंकाओं का सुन्दर समाधान प्राप्त है। वेदान्त महोदधि का यह प्रशस्त रत्न है।

शतभूषणी[2]—इसकी रचना महामहोपाध्याय अनन्तकृष्ण शास्त्री ने की है। इस ग्रन्थ में अविद्या एवं माया का विस्तृत विवेचन किया गया है।

ख्यातिवाद[3]—इसके लेखक स्वर्गीय विद्वान् शंकरचैतन्य भारती हैं। इसमें ख्यातिवाद का विस्तृत विवेचन किया गया है।

संस्कृत के उक्त मूल ग्रन्थों एवं टीका ग्रन्थों के अतिरिक्त भी शांकरवेदान्त के अध्ययन के प्रयास रूप में अनेक मौलिक एवं टीकाग्रन्थ मिलते हैं। परन्तु अनावश्यक विस्तार के भय से यहां उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

२—अंग्रेजी के आलोचनात्मक ग्रन्थ

अंग्रेजी के आलोचनात्मक ग्रन्थों में भारतीय दर्शन के वे इतिहासग्रन्थ और अनुवादग्रन्थ भी आ जाते हैं जिनमें प्रासंगिक रूप से शांकरवेदान्त की आलोचना की गई है। अंग्रेजी भाषा में प्राप्त शांकरवेदान्त की आलोचना का एक प्रमुख स्थान है। यह आलोचना पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों ही विद्वानों द्वारा लिखित है। आज भी इस भाषा में आलोचना का प्रसार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। यहां कतिपय प्रमुख रचनाओं का ही उल्लेख आवश्यक होगा।

The six Systems of Indian Philosophy[4]

इस ग्रन्थ की रचना प्रसिद्ध विद्वान् फ्रैड्रिक मैक्समूलर ने की है। इस ग्रन्थ के ४ भाग हैं। द्वितीय भाग में शांकरवेदान्त का विवेचन है। यह ग्रन्थ भारतीय

---

१. गिरीन्द्रनाथ दत्त संपादित, कलकत्ता १६०१।
२. वी० जी० पाल एण्ड कं०, मद्रास १६५६।
३. सरस्वती भवन, टैक्स्ट्स नं० ५८।
4. Sushil Gupta, Calcutta.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दर्शन के अध्ययन के दृष्टिकोण से नितान्त उपादेय है।

Three Lecturers on the Vedanta Philosophy[1]

लेखक मैक्समूलर ने इस ग्रन्थ में वेदान्त दर्शन के सम्बन्ध में जो विवे[चन] प्रस्तुत किया है, वह दार्शनिक अध्ययन का प्राण है। इस ग्रन्थ में माया सम्ब[न्धी] विवेचन तुलनात्मक रीति से किया है।

A History of Indian Philosophy[2]

इस ग्रन्थ के रचयिता डा० सुरेन्द्रनाथ गुप्त हैं। इस ग्रन्थ के ५ भाग [हैं]। अंग्रेजी में लिखे गये इतिहास ग्रन्थों में इसका प्रमुख स्थान है। प्रथम भाग के द[शम] अध्याय में शांकरवेदान्त का विवेचन किया गया है। अज्ञान के सम्बन्ध में लेखक [ने] स्वतन्त्र रूप से विचार किया है।

Indian Philosophy[3]

इस ग्रन्थ के रचयिता डा० राधाकृष्णनन् हैं। यह ग्रन्थ दो भागों में [है]। इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग में शांकरवेदान्त की आलोचना की गई है। इस ग्रन्[थ में] माया का भी विस्तृत विवेचन किया गया है।

An Introduction to Indian Philosophy[4]

इस ग्रन्थ के लेखक सतीशचन्द्र चटर्जी एवं धीरेन्द्र मोहनदत्त हैं। प्र[स्तुत] विद्वान् लेखकों ने इस ग्रन्थ में भारतीय दर्शन की एक वृहद् रूपरेखा प्रस्तुत की [है]। इस ग्रन्थ के दशम अध्याय में वेदान्तदर्शन का विवेचन किया गया है।

Indian Philosophy[5]

इसकी रचना डा० चन्द्रधर शर्मा ने की है। इस ग्रन्थ में प्रसंग रूप से शां[कर] वेदान्त का वर्णन भी किया गया है।

History of Indian Philosophy

इस ग्रन्थ की रचना यदुनाथ सिन्हा ने की है। इस ग्रन्थ के द्वितीय भा[ग के] सप्तम् अध्याय में लेखक ने शांकरवेदान्त का विवेचन किया है। इस सम[्बन्ध] में लेखक का अद्वैतवाद, प्रकृति, माया, पराविद्या एवं अपराविद्या सम्बन्धी वि[चार] शांकरदर्शन के विद्यार्थी के लिये एक उचित रूपरेखा प्रदान करता है।

1. Longmans Green, London.
2. Cambridge London 1951.
3. Allen and Unwin, 1948.
4. University of Calcuuta, 1954.
5. Nand Kishore and Bros., Banaras, 1952

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

The Essentials of Indian Philosophy[1]

इस ग्रन्थ के रचयिता प्रो० हिरियिन्ना हैं । इस ग्रन्थ के सप्तम, अष्टम अध्यायों में शांकरवेदान्त का पृथक रूप से विवेचन किया गया है । यह अध्ययन तुलनात्मक एवं मौलिक है ।

Outlines of Indian Philosophy[2]

इसके लेखक भी हिरियिन्ना ही हैं । इस ग्रन्थ में लेखक ने भारतीय दर्शन सूक्ष्म रूपरेखा प्रस्तुत की है ।

A Study of Shankar

इसके रचयिता श्री नलिनीमोहन शास्त्री हैं। शांकरवेदान्त के आलोचनात्मक अध्ययन के दृष्टिकोण से यह ग्रन्थ अनुपम है । पंचम अध्याय में लेखक ने माया और अविद्या का पृथक रूप से विवेचन किया है ।

Aspects of Advait[3]

इस ग्रन्थ के दो भाग हैं प्रथम भाग –'ब्रह्म एण्ड माया' है । इसके लेखक के० सुन्दरम् अय्यर हैं । द्वितीय भाग – 'अद्वैत एण्ड माडर्न थाट' हैं । इसकी रचना दीवान बहादुर के० एस० रामास्वामी शास्त्री ने की है । अय्यर साहब ने माया का जो वैज्ञानिक अध्ययन इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है वह अद्वितीय है ।

The Doctrine of Maya[4]

इस ग्रन्थ की रचना डा० प्रभुदत्त शास्त्री ने की है । इस ग्रन्थ में लेखक ने माया का इतिहास देते हुए माया के विभिन्न अर्थों के सम्बन्ध में विचार किया है । इस ग्रन्थ के रचयिता ने शांकर मायावाद का विकास ऋग्वेद काल से ही माना है ।

The Doctrine of Maya[5]

उक्त ग्रन्थ के रचयिता रे० चौधरी हैं । इस ग्रन्थ के ९ अध्याय हैं । इस के दूसरे तीसरे और चौथे अध्याय में माया के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है । परन्तु रे० महोदय का ध्यान माया के विविध पक्षों एवं मूलानुसंधान की ओर नहीं गया है ।

Aspects of the Vedanta[6]

इस ग्रन्थ की रचना एम० एन० . काशीनाथ अय्यर एवं सीतानाथ तत्त्वभूषण प्रभृति विद्वानों ने की है ।

---

1. Allen and Unwin, London 1948. 2. Allen and Unwin, London.
3. Vani Vilas, Srirangam. 4. Luzac & Co., London, 1911.
5. Das Gupta & Co., Calcutta, 1950
6. Natesan, Madras.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Compromises in the History of Advaitic Thought[1]

इस ग्रन्थ के रचयिता महामहोपाध्याय एस० कुप्पूस्वामी शास्त्री हैं। यह ग्रन्थ शास्त्री जी के द्वारा कलकत्ता यूनिवर्सिटी में दिये गये सन् १९४० के प्रवचनों का संग्रह है। इस ग्रन्थ में माया और अध्यास का विवेचन वैज्ञानिक रीति से किया गया है।

A Study of the Vedanta[2]

यह ग्रन्थ एस० के० दास द्वारा रचित है। इस ग्रन्थ में शांकरवेदान्त पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। यह ग्रन्थ सन् १९२९ के श्री गोपाल वसु मलिक फैलोशिप लैक्चर्स का संग्रह है।

The Cospel of Advait[3]

इसकी रचना डंकन ग्रीन लीस ने की है। इस ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में जगत् की स्वप्न सिद्धि का विवेचन विद्वान् लेखक के मौलिक एवं खोजपूर्ण अध्ययन का फल है। भूमिका में दी गई शांकरवेदान्त की चर्चा अत्यन्त उपयोगी है।

Thoughts from the Vedanta[4]

कृष्णास्वामी अय्यर ने इस ग्रन्थ की रचना की है। इस लघुकाय ग्रन्थ में वेदान्त की विभिन्न विचारधाराओं का सूक्ष्म वर्णन मिलता है।

An Introduction to Advaita Philosophy—

इस ग्रन्थ के रचयिता कोकिलेश्वर शास्त्री हैं। शास्त्री जी ने इस ग्रन्थ में शांकरवेदान्त का विद्वत्तापूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है।

Studies in Vedanta[5]

इसके लेखक वासुदेव जे० कीर्तिकर हैं। कीर्तिकर ने इस ग्रन्थ में शांकरवेदान्त के विभिन्न सिद्धान्तों की तुलना पाश्चात्य सिद्धान्तों के साथ की है। द्वितीय अध्याय में अविद्या का विवेचन भी किया गया है।

Sacret Books of the East[6]

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत ३४वें भाग में डा० थीबो ने ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य का अनुवाद किया है। डा० थीबो की इस अनुवाद की भूमिका अत्यन्त मार्मिक है। डा० थीबो ने इस भूमिका में मायावाद के उदय और विकास के सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया है।

1. Research Institute, Madras 1940.
2. University of Calcutta, 1937.
3. Theosophical Publishing House, Adyar, Madras.
4 Vani Vilas. Srirangam. 5 Taraporevala, Bombay 1924.
6. Clarendon, 1890.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२—हिन्दी के आलोचनात्मक ग्रन्थ

विचार सागर:—इसकी रचना साधु निश्चलदास ने की है। इस ग्रन्थ में ब्रह्मज्ञान के अनुभवी विद्वान् साधुने शांकरवेदान्त का मण्डन स्वाभाविक शैली में किया है। इस ग्रन्थ में ख्यातिवाद, अध्यास, अविद्या एवं माया का विवेचन भी विस्तार से किया गया है।

वृत्ति प्रभाकर:—इसकी रचना भी निश्चलदास ने ही की है। साधु-सन्तों में इस ग्रन्थ का समादर भी विचार सागर के ही समान है।

विचार चन्द्रोदय:—इस ग्रन्थ के लेखक पीताम्बर जी हैं। इस ग्रन्थ में पीताम्बर जी ने शांकरवेदान्त के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण सरल रीति से किया है।

अद्वैतवाद:—लेखक गंगाप्रसाद उपाध्याय ने इस ग्रन्थ में अद्वैतवाद का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। माया और अविद्या का विवेचन भी इस ग्रन्थ में विस्तार से किया गया है।

श्री शंकराचार्य का आचार-दर्शन[1]—यह ग्रन्थ डा० रामानन्द तिवारी का अनूदित शोध प्रबन्ध है। इस ग्रन्थ में डा० तिवारी ने शंकराचार्य के आचारसिद्धांत का गम्भीर अध्ययन किया है।

श्री शंकराचार्य—इसके लेखक प्रो० बलदेव उपाध्याय हैं। उपाध्याय जी ने इस ग्रन्थ में शांकरदर्शन के विशेष-विशेष सिद्धान्तों की सूक्ष्म प्रक्रिया दी है।

भारतीय दर्शन[2]—डा० उमेश मिश्र ने इस ग्रन्थ में भारतीय दर्शन के प्रायः सभी सिद्धान्तों का विवेचन किया है। शांकरदर्शन के सम्बन्ध में लेखक ने गम्भीर दृष्टि अपनायी है।

हिन्दी के इन उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त भारतीय दर्शन के अन्य इतिहास ग्रंथों एवं अन्य आलोचनात्मक ग्रन्थों में भी शांकरवेदान्त के अध्ययन का प्रयास किया गया है। इस स्थल पर इन ग्रन्थों का उल्लेख अनावश्यक विस्तार समझकर उपेक्ष्य है।

२—जर्मन भाषा के आलोचनात्मक ग्रन्थ

Das System des Vedanta[3]—

इस ग्रन्थ की रचना जर्मन-विद्वान् डायसन ने की है। इस ग्रन्थ में डायसन

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००६।
२. सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ १९५७।
3. Leibzic, F. A Brockhaus, 1883.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने वेदान्त का सूक्ष्म एवं गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया है।

Maya-Lehre and Kantianismus[1]—

इसकी रचना डा० श्रोडर ने की है। इस ग्रन्थ में माया की तुलना पाश्च सिद्धान्तों के साथ की गई है।

५—बंगला के आलोचनात्मक ग्रन्थ

वेदान्तदर्शनेर इतिहास—इस ग्रन्थ को ३ भागों में पूर्ण किया गया इसकी रचना प्रज्ञानानन्द सरस्वती ने की है। इस ग्रन्थ में शांकरवेदान्त सिद्धान्तों का विस्तृत निरूपण किया गया है।

आचार्य शंकर और रामानुज—इस ग्रन्थ की रचना राजेन्द्रनाथ घो की है। घोष जी ने इस ग्रन्थ में शंकराचार्य और रामानुज के सिद्धान्तों तुलनात्मक विवेचन किया है।

६—महाराष्ट्री के आलोचनात्मक ग्रन्थ

दासबोध स्वामी समर्थ रामदास जी ने इस ग्रन्थ की रचना की इसका हिन्दी अनुवाद[2] बाबू रामचन्द्र वर्मा ने किया है।

वैदिक धर्म आणि षड् दर्शन में[3]—इस ग्रन्थ के व्याख्याता रामचन्द्र रा हैं। इस ग्रन्थ में भी प्रासंगिक रूप से शांकरवेदान्त की चर्चा आई है।

७—पत्र-पत्रिकायें

संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में भी शांकरवेदान्त से न्धित लेख निकलते रहते हैं। यहां कतिपय पत्रिकाओं और उनके लेखों का किया जायगा।

(क) संस्कृत पत्र-पत्रिकायें

कलकत्ते में स्थापित संस्कृत साहित्य परिषद् की ओर से 'संस्कृत परिषद्' नामक एक मासिक पत्र निकलता है। इसका संपादन कालीपद जी चार्य करते हैं। इस पत्र में भी शांकरवेदान्त के सम्बन्ध में लेख निकलते हैं। सं० १८७८ चैत्र में प्रकाशित पत्र में चारुकृष्ण दर्शनाचार्य का विमर्शः' लेख इस सम्बन्ध में उद्धरणीय है। काशी से प्रकाशित 'संस्कृत र और नागपुर से प्रकाशित 'संस्कृत भवितव्यम्' प्रभृति पत्रों में भी शांकरवेदान्त लेख मिलते हैं।

---

1. Berlin, 1904. २. हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, २०१३।
३. नागपुर विश्वविद्यालय प्रकाशन।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(ख) अंग्रेजी पत्र-पत्रिकायें

भारतीय दर्शन के साहित्य में अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन पत्र-पत्रिकाओं में सदा से प्रतिष्ठित विद्वानों के लेख निकलते रहे हैं। यहां कुछ पत्रों और उनमें प्राप्त कतिपय लेखों का उल्लेख ही अपेक्षित है।

इण्डियन फिलौसौफिकल क्वार्टरली— अक्टूबर सन् १९३५ मे प्रकाशित इस पत्र में टी० आर० वी० मूर्ति का 'दर्शनोदय' लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में अद्वैत दर्शन और सांख्य दर्शन का तुलनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।

इण्डियन कल्चर (५ वीं जिल्द)—इस पत्र में अशोकनाथ शास्त्री का 'शून्य एण्ड ब्रह्म' नामक लेख शांकर अद्वैतवाद और बौद्ध शून्यवाद के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास है।

उक्त पत्र की ही सातवीं और आठवीं जिल्द में भी शांकरवेदान्त से सम्बन्धित लेख मिलते हैं। सातवीं जिल्द में डा० पौरोथी और ए० एल० स्टिडे का 'दि स्टैन्डं सिम्बल्स इन इण्डियन फिलासफी' नाम का लेख है। आठवीं जिल्द के अन्तर्गत एच० जी० नरहरी का—'दी मीनिंग आफ ब्रह्म एण्ड आत्मन्' नाम का लेख प्रकाशित हुआ है। इसी भाग में पी० एम० मोदी का रिलेशन आफ ब्रह्म एण्ड जगत्' नामक लेख भी है। इस लेख में कार्य-कारण सम्बन्ध पर विचार किया गया है।

इण्डियन हिस्टोरीकल क्वार्टरली—इस पत्र की दूसरी तीसरी और चतुर्थ जिल्दों में शांकर वेदान्त पर लेख मिलते हैं। दूसरी जिल्द में उमेशचन्द्र भट्टाचार्य का—'दि गीता लिट्रेचर एण्ड इट्स रिलेशन विद ब्रह्मविद्या' नामक लेख है। इस लेख में अद्वैतवेदान्त और गीतादर्शन का साम्यमूलक दृष्टिकोण दिया है। तीसरी जिल्द के अन्तर्गत एस० बी० वेंकटेश्वर का 'ओरिजिन आफ हिन्दू इकोनिज्म' नामक लेख मिलता है। इसी पत्र की चतुर्थ जिल्द में उमेशचन्द्र एम० ए० का लेख भी है जिसमें इन्होंने वेदान्त विद्या का विवेचन चार कालों के अन्तर्गत किया है। ये काल प्रागुपनिषद् काल, उपनिषद्काल, सूत्रकाल और टीकाकारों का काल है। उक्त पत्र की पांचवीं, छठी जिल्दों में भी अद्वैतवेदान्त पर लेख मिलते हैं। पांचवीं जिल्द के अन्तर्गत के० आर० पिशरोटी महोदय का 'थ्री ग्रेट फिलौसफर्स आफ केरल' नाम का लेख है। छठी जिल्द में सतीन्द्र कुमार मुकर्जी का—'शंकर आन दि रिलेशन बिटवीन दि वेदाज़ एण्ड रीज़न' नामक लेख प्राप्त है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन पत्र पत्रिकाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी के रिपोर्ट साहित्य के अन्तर्गत शांकरवेदान्त के अध्ययन का प्रयास मिलता है।

(ग) हिन्दी पत्र-पत्रिकायें

कल्याण—इस पत्र में वेदान्त से सम्बन्धित अनेक लेख मिलते हैं। वेदा[न्तांक] में तो सारे वेदान्तदर्शन का सार ही निहित है। इसमें मायावाद पर भी शान्तिनाथ का 'मायावाद वैजयन्ती' नामक लेख है। वेदान्तांक में ही महा[मही]पाध्याय गोपीनाथ कविराज का—'प्राचीन अद्वैतवाद के साथ शंकर के अद्वैत सम्बन्ध' नामक लेख भी मिलता है।

चण्डी—अखिल भारतीय शाक्त सम्मेलन प्रयाग की ओर से श्री पराक्रम जंग बहादुर के सम्पादकत्व में पत्रिका का प्रकाशन होता है। सं० २ वैशाख—ज्येष्ठ की पत्रिका में श्यामानन्द नाथ का 'प्रथम साधन सोपान' नाम लेख है। इस लेख में शांकर-मायावाद की तुलना तान्त्रिकों के मायावाद [से की] गई है। इस पत्रिका में शांकर-मायावाद सम्बन्धित कई लेख मिलते हैं।

शांकरवेदान्त के अध्ययन में मायावाद के अध्ययन की उपे[क्षा]

शांकर-दर्शन के सम्बन्ध में प्राप्त उपर्युक्त आलोचना के निर्देश से यह [स्पष्ट] है कि शांकर-वेदान्त का अध्ययन गम्भीरता से किया गया है। संस्कृत, अंग्रेजी, जर्मन, बंगला, महाराष्ट्री आदि सभी भाषाओं में शांकरवेदान्त [का] साहित्य उपलब्ध होता है। शंकराचार्य के परवर्ती संस्कृत के विद्वानों ने [शांकर] वेदान्त के सिद्धान्तों का मौलिक विवेचन किया है। इन विद्वानों की र[चनाओं] में पाण्डित्य की अद्‌भुत छाप है। सन्दर्भ रूप से इन विद्वानों ने माया का [विवेचन] भी किया है। परन्तु इन विद्वानों का अध्ययन प्रायः तुलनात्मक नहीं है। [इन] विद्वानों ने शंकराचार्य के मायावाद का अध्ययन स्वतंत्र रूप से नाम मात्र [को] किया है। अंग्रेजी में प्राप्त आलोचनात्मक ग्रन्थों में माया का आलोच[नात्मक] विवेचन भी प्राप्त होता है। (इस सम्बन्ध में मैक्समूलर, थीवो, हिरि[यन्ना], नलिनीमोहन शास्त्री, राधाकृष्णनन्, दास गुप्ता और कुप्पु स्वामी शास्त्री [आदि] विद्वानों के प्रयास श्लाघनीय हैं।) परन्तु इन विद्वानों के अध्ययन मायाव[ाद के] स्वतंत्र अध्ययन न होने के कारण अपूर्ण हैं। जर्मन-विद्वानों में डायसन का [प्रयास] अत्यन्त स्तुत्य है। इतर भाषाओं के ग्रन्थों में भी मायावाद की स्वतन्त्र अ[ध्ययन] का अभाव ही कहा जायगा। मायावाद के सम्बन्ध में प्रो० प्रभुदत्त शास्त्री

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रे. चौधरी के ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। इन विद्वानों ने माया के सिद्धान्त का विवेचन आलोचनात्मक दृष्टि के साथ किया है। रे० महोदय ने अपने ग्रन्थ में माया की उपोगिता एवं ख्यातिवाद के सिद्धान्त की विस्तृत चर्चा की है। इस विद्वान् ने पाश्चात्य दर्शन के सन्तुलन के आधार पर मायावाद के सिद्धान्त के अध्ययन का प्रयास किया है। परन्तु इस ग्रन्थ में मायावाद का अध्ययन आलोचनात्मक दृष्टि से अपूर्ण है। लेखक ने तुलनात्मक अध्ययन के लिये मायावाद के तत्सम सिद्धान्तों का उल्लेख तक नहीं किया है। प्रो० प्रभुदत्त शास्त्री ने निश्चय ही माया का आलोचनापूर्ण इतिहास दिया है। हिन्दी ग्रन्थों में गंगाप्रसाद; ने अपने अद्वैतवाद में मायावाद की विशेष चर्चा की है। परन्तु इस विद्वान् ने भी माया के तुलनात्मक अध्ययन की ओर पूर्ण ध्यान नहीं दिया है। आश्चर्य है कि अद्वैत-वेदान्त के मूलभूत सिद्धान्त मायावाद के सिद्धान्त का स्वतन्त्र अध्ययन शांकरवेदान्त के अध्येत्ताओं की दृष्टि में उपेक्ष्य बना रहा।

प्रस्तुत अध्ययन का दृष्टिकोण और उसकी विशेषतायें

मायावाद के इस अध्ययन की अपनी कुछ पृथक् विशेषतायें हैं। इस अध्ययन की दिशा पूर्णतया आलोचनात्मक है। इस अध्ययन का दृष्टिकोण मायावाद का मौलिक एवं आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत करना है। यों तो, जैसा कि कहा गया है मायावाद के इस सम्बन्ध में कई एक अध्ययन मिलते हैं। परन्तु उनमें इस सिद्धान्त के सांग और आलोचनात्मक विवेचन का अभाव हो कहा जायगा। इस लेखक ने मायावाद के सिद्धान्त का अध्ययन प्राचीन एवं अर्वाचीन निकर्षों के आधार पर करने का प्रयास किया है। वर्तमान की निष्पन्न विचारधारा विगत की अस्पष्ट रेखाओं में निगूढ़ रहा करती है। उस निगूढ़ तत्त्व का अनुसन्धान किये बिना न आज की विचारधारा का मौलिक विवेचन किया जा सकता है और न इतिहासगत महत्व ही समझा जा सकता है। अतएव इस ग्रन्थ में मायावाद के सिद्धान्त पर विचार करने से पूर्व इस सिद्धान्त के मूल स्रोतों को खोजने का प्रयत्न किया गया है। तदुपरान्त इस सिद्धान्त के उदय और विकास का इतिहास स्पष्ट किया गया है। मायावाद के प्रतिपादन के विभिन्न रीतियों के सन्तुलन के आधार पर ही इस विषय का प्रतिपादन लेखक को अभीष्ट रहा है। इस अध्ययन में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकराचार्य के मायावाद की प्रतिक्रिया से उदित होने वाली दर्शन-पद्धतियों आलोचनात्मक विवेचन भी किया गया है । (शांकर-मायावाद के यथार्थ स्व बोध के लिये तान्त्रिक-मायावाद, गौड़पादाचार्य का मायावाद एवं अन्य सम्बन्धी विचारों का भी अध्ययन अपेक्षित है । इन विचारों के साथ शां मायावाद की तुलना के द्वारा इन सिद्धान्तों की समताओं और विषमताओं पर विचार किया गया है ।) इसके अतिरिक्त शांकर–मायावाद के सम्बन्ध में प्र 'प्रच्छन्नबुद्धत्व' आदि धारणाओं के निराकरण का प्रयास भी इस अध्ययन की विशे है । यह निवेद्य है कि प्रस्तुत लेखक उक्त दिग्दर्शन की पूर्णता का गर्व नहीं क परन्तु इस अध्ययन के सम्बन्ध में उसकी सप्रयत्न वाञ्छा अवश्य रही है ।

—::०::—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शङ्कराचार्य

[उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन]

द्वितीय-अध्याय

—: शंकर के मायावाद की पृष्ठभूमि :—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्कालीन परिस्थितियां

(किसी युग के कलाकार, दार्शनिक, धर्मवेत्ता एवं राजनीतिज्ञ की जननी उस काल की परिस्थितियां हुआ करती हैं।) स्वयं भगवान् कृष्ण जगत् की अधार्मिक परिस्थितियों के कारण ही 'धर्मसंस्थापनार्थ' इस धरा पर अवतार लेते हैं।[1] शंकराचार्य शिव का अवतार थे। उनके दर्शन एवं जीवन पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। आचार्य शंकर ने जिस वेदान्तदर्शन एवं वैदिक धर्म की स्थापना की थी उसमें तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं दार्शनिक परिस्थितियों का महान् योग है। यहां शंकराचार्यकालीन इन परिस्थितियों का उल्लेख करना समीचीन होगा। ये परिस्थितियां निम्न हैं :-

१—राजनैतिक परिस्थितियां। २—सामाजिक परिस्थितियां।
३ - धार्मिक परिस्थितियां। ४—दार्शनिक परिस्थितियां।

१—राजनैतिक परिस्थितियां

यद्यपि वर्तमान युग में राजनीति और धर्म का विकास दो पृथक् दिशाओं में हो रहा है परन्तु प्राचीन युग में राजनीति और धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध था। जनता के शासक राजा-महाराजाओं का धार्मिक होना परम आवश्यक था। धर्म का पालन करने वाले राजा के प्रति ही प्रजा की श्रद्धा होती थी। शंकराचार्य को अपने वैदिक धर्म की स्थापना में राजनैतिक परिस्थितियों से पर्याप्त सहायता मिली थी। हमने शंकराचार्य का जीवनकाल ७८८–८२० ए० डी० माना है। यहां इस काल की राजनैतिक परिस्थितियों के शांकरदर्शन एवं धर्म पर प्रभाव की दिशा में ही अध्ययन का प्रयत्न है।

सप्तम शती से द्वादश शती तक का ६०० वर्ष का काल भारत के इतिहास में मध्ययुग के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग को अराजकता एवं अव्यवस्था का युग कहा जा सकता है। (सप्तम शती के पूर्वार्द्ध में स्थानेश्वर और कन्नौज के राजा हर्षवर्द्धन ने उत्तरी भारत में और चालुक्य पुलकेशी द्वितीय ने दक्षिणापथ में विशाल साम्राज्यों का निर्माण किया था।) परन्तु इनका राज्य स्थिर न रह सका। अष्टम शती में उत्तरी भारत में पाल, गुर्जर प्रतिहार, कर्कोटक आदि राजवंशों ने और दक्षिणी भारत में राष्ट्रकूट, पल्लव, गंग, चोल, चालुक्य आदि राजवंशों ने शासन

---

१. गीता ४। ८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया था। यही दशा ग्यारहवीं शताब्दी तक बनी रही। इस काल में कोई राजनैतिक सत्ता नहीं थी जो समस्त भारतवर्ष को एकसूत्र में बांधने की रखती। चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित, हिमालय से लेकर समुद्रपर्यन्त योजन बिस्तीर्ण राज्य का अन्त पहले ही हो गया था। गुप्त सम्राटों के वाल्हीक देश तक का विशाल राज्य भी नष्ट हो चुका था। मौर्योत्तर काल प्रधान विशेषता इतिहासवेत्ताओं के कथनानुरूप भारत में बौद्ध धर्म का ह्रास सनातन वैदिक धर्म का पुनरुत्थान है। इस काल के धार्मिक परिवर्तन का राजनैतिक चेतना है। अशोक ने बौद्ध धर्म के आधार पर 'धम्मविजय' की नीति का अवलम्बन किया था वह निर्बलता की नीति थी। अशोक अहिं बल पर ही शासन कर रहा था परन्तु उसकी सैनिक शक्ति अभी बलहीन न उसके उत्तराधिकारियों द्वारा भी धर्मास्त्र का ही प्रयोग होने के कारण माग का समस्त बल क्षीण हो गया था। अन्तिम मौर्य सम्राटों के काल में यवनों आक्रमण होने पर मागध सेना की दृष्टि में अशोक का 'अहिंसा परमोधर्मः' बौद्धसिद्धान्त विफल प्रतीत हुआ। साथ ही साथ जनता में ऐश्वर्य से जीवन करने वाले बौद्ध-भिक्षुओं के प्रति भी भारी अश्रद्धा उत्पन्न हो गई। जनता आस्था बौद्धधर्म से हटकर वैदिक धर्म की ओर आरम्भ हो गई। शंकराचार्य स्थापित वैदिकधर्मसाधना के मूल में यही राजनैतिक पृष्ठभूमि थी।

गुप्त सम्राटों में कुछ शैव, कुछ वैष्णव और कुछ बौद्ध थे। एक ही में जन्म-ग्रहण करने पर भी इन सम्राटों में धर्मभेद पाया जाता था। हर्षवर्धन सूर्य के उपासक होते हुए भी बौद्ध स्थविरों में भी श्रद्धा रखते थे। शिव की भक्ति भी प्रिय थी। पालवंशी राजा बौद्ध थे परन्तु उन्हें ब्राह्मण को दान देने में भी संकोच न था। परन्तु यह धर्मभेद कुछ धार्मिक सम्राटों ही सीमित रह गया था। जनता की आस्था महाविहारों में रहने वाले ऐश्वर्य बौद्धों में न रहकर सर्वस्व त्यागी दण्डी संन्यासियों में विशेष रूप से होने लगी इस युग (सप्तम शताब्दी) में बौद्धधर्म एवं वैदिक धर्म के अनुयायियों में की परम्परा का भी आविर्भाव हुआ। कुमारिल और आचार्य शंकर इसी देन हैं।[1] कुमारिल ने बौद्ध सिद्धान्तों का खण्डन करके वैदिक अनुष्ठानों एवं काण्ड को महत्त्व दिया। इसी युग की परिस्थितियों से प्रेरित होकर शंकरा बौद्धधर्म का उन्मूलन करने के लिये समस्त भारतवर्ष की दिग्विजय एवं

१- एनशियेन्ट इण्डिया पृ० ४५७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवैदिक मतों का खंडन करके वैदिकदर्शन एव धर्म की स्थापना की। यद्यपि बौद्धसंघ की स्थापना हुए लगभग एक सहस्र वर्ष बीत चुके थे परन्तु शंकराचार्य के द्वारा की गई मठ स्थापना के उपरान्त बौद्धसघों का अस्तित्व मिट चुका था। इस काल में बौद्धविहारों में विहार करने वाले बौद्ध भिक्षुओं की अपेक्षा मठों में रहने वाले त्यागी संन्यासियों में आत्मबल और स्फूर्ति थी। इस प्रकार आचार्य शंकर को अपने धर्म एवं दर्शन की स्थापना में तत्कालीन धर्म मिश्रित राजनैतिक परिस्थितियों से पूर्ण सहयोग मिला था।

२–सामाजिक परिस्थितियां

मध्ययुग में बौद्ध धर्म के पतन एवं ब्राह्मणधर्म के अभ्युत्थान के कारण धर्म के क्षेत्र में सामाजिक अव्यवस्था फैल रही थी। समाज को एक ओर बौद्ध संघों से घृणा हो रही थी, दूसरी ओर ब्राह्मणधर्म का प्रभाव भी समाज पर अक्षुण्ण रूप पड़ता जा रहा था। सामाजिक दुरूहता की इस परिस्थिति में एक ऐसे समाज-हितैषी सूत्रधार की आवश्यकता थी। जो उसे सत् पथ की ओर जागरूक कर सके। शंकराचार्य ने इसी परिस्थिति से प्रभावित होकर भारतवर्ष में संन्यासी संघ के रूप में चार मठों की स्थापना की ये मठ आज भी ज्योतिर्मठ, शृंगेरी मठ, गोवर्द्धन मठ और शारदा मठ के नाम से प्रसिद्ध हैं। सामाजिक दृष्टि से इन मठों का बड़ा महत्त्व है। इन मठों के अधीश दण्डी संन्यासी होते हैं। ये संन्यासी अपने त्यागमय जीवन से गृहस्थसमाज को सद् धर्म की ओर जागरूक करते थे। इन्हें परवर्ती बौद्ध संन्यासियों की तरह विलासिता एवं सुख-साधनों से स्नेह न था।[१] ये संन्यासी त्याग की साक्षात् मूर्ति थे। ये एक ओर समाज को व्यावहारिक जगत् के सम्बन्ध में सदुपदेश देते थे, दूसरी ओर समाज में आत्मसाक्षात्कार की भावना जाग्रत करते थे। मठों के आचार्यों का महत्त्व इता बढ़ गया था कि धार्मिक विषयों में राजा लोग इनसे परामर्श करते थे। ये संन्यासी केवल मुमुक्षु मात्र न होकर व्यावहारिक जगत् में भी प्रवीण थे। कतिपय आलोचक शांकरदर्शन को, उनकी व्यावहारिक सत्ता की ओर से आंख मीचकर पलायनवादी कहने का साहस भी करने लगे हैं। यह कथन एक भ्रान्त धारणा मात्र है। ये संन्यासी समय आने पर धर्म रक्षा के लिये अधार्मिकों के वध के लिये भी प्रस्तुत रहते थे। डा० फर्कुहर का कथन है कि अकबर के काल में मुसलमान फकीरों का हिन्दू साधुओं पर अत्याचार और हत्या जब तत्कालीन वेदांती मधुसूदन सरस्वती से न सही गई तो वे स्वयं अकबर के पास गये[१]। सरस्वती

P. V Kane, History of Dharm Shastra Vol. 2nd, Page 975.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जी ने ही संन्यासियों को यवन साधुओं से युद्ध करने की प्रेरणा भी दी।[1] इ संन्यासियों के तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती भारती और पुरी के दश भेद थे। इन संन्यासियों ने सत् पथ के अनुसरण में पर्याप्त प्रयास किया है और आज भी वर्तमान शङ्कराचार्य एवं महान् समाज सुधारक स्वामी करपात्री जी प्रभृति दण्डी संन्यासी समाज सुधार में पूर्णतया संलग्न हैं।

मध्ययुग में ब्राह्मणधर्म के अभ्युत्थान के साथ-साथ वर्ण-व्यवस्था एवं जाति प्रथा का स्वरूप भी अति संकुचित हो गया था। हिन्दुओं की इस संकुचितता क उल्लेख करते हुए अलबेरुनी ने लिखा है "हिन्दुओं की वृत्ति बड़ी संकुचि थी।"[2] ब्राह्मणधर्म के पुनरुद्धार के साथ वर्ण-व्यवस्था ने महान् कट्टर रूप लिया। यद्यपि वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप वैदिककालीन संस्कृति से चला आ र था परन्तु मध्ययुगीन वर्ण-व्यवस्था की संकुचित भावना को वैदिककालीन व व्यवस्था में अवसर न था। व्यवसाय—व्यवस्था के आधार पर इंगलैण्ड प्रभृ देशों में भी लार्डस, क्लर्जी, मिडिल क्लास और लेबर्स के रूप में वर्णव्यवस्था क स्वरूप मिलता है। परन्तु अष्टम शताब्दी की वर्णव्यवस्था में जो कट्टरपन्थी वह कदापि मानव धर्म के उपयुक्त न थी। ब्राह्मणों की प्रभुत्व शक्ति, जन्म आधार पर जाति की व्यवस्था, जातियों में आपस में खान-पान एवं विवाह प्र पर प्रतिबन्ध, इस युग की विशेषतायें थीं। यद्यपि स्मृति एवं अन्य धार्मिक ग्र के अनुरूप उपर्युक्त बातें निषिद्ध न थीं। इस युग में अस्पृश्यता ने भी बल स्वरूप धारण कर लिया था। यहां तक कि नीच जाति के व्यक्ति की छाया म से ही ब्राह्मण भ्रष्ट हो जाते थे। स्वयं शंकराचार्य को भी आरम्भ में अस्पृश् का भय लगा था। काशी में शंकराचार्य ने मार्ग में एक चाण्डाल स्पर्श दोष के भय से वाग्पमान भी किया था।[3] परन्तु चाण्डाल रूप में भि भगवान् शंकर ने उनकी इस संकुचित भावना को एकात्मवाद के प्रतिपादन में बा बतलाया था। शंकराचार्य पर इस घटना का अमिट प्रभाव पड़ा था। शां दर्शन की एकात्मवाद की विचार पद्धति के अनुरूप संकुचित भेदव्यवस्था को अव नहीं रह जाता। यह कहना उपयुक्त होगा कि शंकराचार्य पर तत्कालीन सामा

1. J. R. A. S. 1925 Page 479, 486
२. देखिये आर० सी० मजुमदार द्वारा एनशियेन्ट इण्डिया में उद्धृत अलबेरूनी क पृष्ठ ५०० ।
३. देखिये शंकराचार्य जीवन चरित्र, पृ० १४ (खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिस्थितियों का गहरा प्रभाव था। इन परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही उन्होंने अपने दर्शन एवं धर्म की प्रचार-व्यवस्था की थी।

३—धार्मिक परिस्थितियां

शंकराचार्य के पूर्ववर्ती युग में भारतवर्ष में अनेक अवैदिक मतमतान्तरों का प्रचार था। इन मतान्तरों से संघर्ष होने पर भी वैदिक धर्म आज तक सतत रूप से गतिशील बना रहा है। वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म का संघर्ष प्राचीनकाल से चला आ रहा है। यद्यपि बौद्ध धर्म की आधार शिला उपनिषद् ही थे परंतु गौतम बुद्ध ने अपने धर्म और दर्शन के सम्बन्ध में अनेक नवीन उद्‌भावनायें की थीं। श्रुति को अप्रामाणिक मानकर उन्होंने आत्मवाद की अवहेलाना तथा यज्ञवाद का घोर विरोध किया था। विक्रम पूर्व चतुर्थ शतक में मौर्यकाल में इस धर्म ने राज्याश्रय प्राप्त कर लेने के कारण बहुमुखी उन्नति प्राप्त कर ली थी। अशोक प्रियदर्शी के काल से तो बौद्धधर्म जन-जन के मानस-पटल का आधेय बन गया था। मौर्यों के पतनकाल के उपरान्त द्वितीय शतक में ब्राह्मणवंशी पुष्यमित्र ने शुंगवंश की स्थापना की थी। पुष्यमित्र ने वैदिकधर्म की जागृति का अथक प्रयास किया था। उसने दो अश्वमेध यज्ञ भी किये थे। मनुस्मृति भी इसी काल की रचना है।

शुंगों से कतिपय शताब्दियों के बाद कुषाण युग आता है। इस काल में शुंग कालीन प्रतिक्रिया के रूप में बौद्ध धर्म का पुनः विकास आरम्भ हो गया, शक-वंशीय कनिष्क ने बौद्धों की चतुर्थ संगीति आमन्त्रित की थी इस राजा ने बौद्ध धर्म दर्शन का प्रचार भिक्षुओं के द्वारा चीन और जापान तक कराया था। इस काल की प्रतिक्रिया गुप्तकाल से आरम्भ हो गई थी। गुप्त नरपति परम वैष्णव थे। इस काल में वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार बढ़ना आरम्भ हो गया था। अश्वमेध की प्राचीन परिपाटी का विकास इधर फिर आरम्भ हुआ। परन्तु अभी बौद्ध धर्म का समूलोन्मूलन नहीं हुआ था। बौद्ध प्रचारक अब भी राजाओं पर निज धर्म का प्रभाव जमा लेने में संलग्न थे। ये राजाओं से वेद विरुद्ध धर्म के पालन का आग्रह करते थे।

तत्त्व ज्ञान की दृष्टि से गुप्त तथा वर्धन युग का भारत के इतिहास में गण्य महत्त्व है। इसी काल में बौद्ध न्याय का उदय हुआ था। नागार्जुन, वसुबन्धु, दिग्नाथ तथा धर्मकीर्ति जैसे बौद्ध नैयायिक विद्वान् भी इसी युग में हुए थे। इधर ब्राह्मण नैयायिकों में वात्सायन, उद्योतकर तथा प्रशस्तपाद ने बौद्ध न्याय का खण्डन करके अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था। जैन मतावलम्बी समन्तभद्र,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा सिद्धसेन दिवाकर श्रुति को अप्रामाणिक सिद्ध कर रहे थे। इस प्रकार बौ एवं जैन दोनों ही धर्म वैदिक धर्म के विरुद्ध प्रचार में रत थे। इसलिये इस यु में एक ऐसे श्रुति समर्थक प्रयास की आवश्यकता थी जिससे वैदिक कर्मकाण्ड ए धर्म की पुन: प्रतिष्ठा की जा सके। इस आवश्यकता की पूर्ति कुमारिल एवं शंक ने की थी। शंकराचार्य ने अनेक वेद विरुद्ध मतों का खण्डन करके वेद सम्मत अद्वै तत्त्व का प्रतिपादन प्रौढ़ युक्तियों के सहारे किया था।

वाणभट्ट ने हर्षचरित में सप्तम शताब्दी के धर्मों का उल्लेख किया है तदनुसार उस काल में भागवत्, कपिल, जैन, लोकायतिक (चार्वाक), काणा पौराणिक, ऐश्वरकारणिक, कारन्धमिन् (धातुवादी), सप्ततान्तव (मीमांसक) वैयाकरण, बौद्ध, पांचरात्रिक और औपनिषद् धर्म का प्रचार था।

शंकराचार्य से पूर्वकाल में भारतवर्ष में तन्त्र का भी महान् प्रचार था इस युग में शैव, शाक्त, गाणपत्य तथा वैष्णव सभी प्रकार के तान्त्रिकों का प्रभुत्व था वैष्णव तन्त्र के अनुसार परम-तत्त्व, मुक्ति. भुक्ति, योग तथा संसार इन पांच तत्त्व का निरूपण किया गया था। रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद का सिद्धान्त भी इ पर आधारित था। नकुलीश द्वारा संस्थापित पाशुपत मत का भी इस युग प्रचार था। लगुड़ धारण करने के कारण इन्हें लगुलीश भी कहते थे। पाशुपत म के अनुयायी उदिताचार्य का उल्लेख भी मिलता है।[१] उग्र शैव -तान्त्रिक सम्प्रदा के स्वरूप में कापालिक मत का भी शंकराचार्य के पूर्व भारतवर्ष में महान् प्रचा था। प्रबोध चन्द्रोदय और कर्पूर मंजरी में इस मत का वर्णन मिलता है। महारा पुलकेशी द्वितीय के पुत्र नागवर्धन भी कापालिक मत के अनुयायी थे। शंकर भारत में शाक्त मत का विशेष प्रचार था। शाक्त मत की इस उपासना में सात्वि रूप की अपेक्षा तामस रूप ही प्रबल था। शंकराचार्य ने शाक्त मत के तामस रू का खण्डन करके उसमें सात्विकता का प्राण भर दिया। इसी प्रकार लो उपासकों ने गाणपत्य मत में भी तामस वृत्ति को अवसर दे दिया था। दक्षिण वक्रतुण्डपुरी गाणपत्य उपासना का केन्द्र थी। सप्तम शताब्दी का युग भारत में धर्म-संकट का युग था। इस युग में प्राय: सभी मत अवैदिक थे। शंकराचार्य इन समस्त अवैदिक मतों का खण्डन करके वैदिक धर्म और दर्शन की प्रस्थापना

१. गुप्त नरेश विक्रमादित्य द्वितीय के राज्यकाल में ६१ गुप्त संवत् का एक महत्त्व पूर्ण (शिलालेख) मथुरा में मिला है। इस शिलालेख में पशुपतमतानुयायी उदिताचार्य के गुरु मन्दिर में उपमितेश्वर और कपिलेश्वर नामक शिवलिंगों की स्थापना का वर्णन है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी। इस प्रकार शंकराचार्य के धर्म और दर्शन पर तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

४—दार्शनिक परिस्थितियाँ

भारतीय दर्शन के विकास की दृष्टि से मध्ययुग का महत्त्व अत्यधिक है। इस युग में बौद्ध, जैन एवं हिन्दू तीनों प्रकार के दर्शनों की दिशायें आलोकित हुई थीं। चतुर्थ शताब्दी में बौद्ध विद्वान् असंग ने महायानोत्तर तन्त्र एवं सूत्रालंकार प्रभृति ग्रन्थों में क्षणिक विज्ञानवाद का प्रतिपादन किया था। पांचवीं शताब्दी में दिङ्नाग ने प्रमाणसमुच्चय नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की थी। मध्ययुगीन धर्मकीर्ति और शान्तरक्षित ने तो बौद्धधर्म को विकास की चरम सीमा पर पहुंचा दिया था। (धर्मकीर्ति (सातवीं सदी) द्वारा रचित ग्रन्थों में प्रमाणवार्तिक और प्रमाणविनिश्चय सर्व प्रधान हैं।) धर्मकीर्ति के इन ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में भी अनुवाद हो गया है। दार्शनिक असंग ने जिस विज्ञानवाद को जन्म दिया था उसी का समर्थन धर्मकीर्ति ने अपनी दार्शनिक रचनाओं में किया था। परन्तु धर्मकीर्ति ने असंग द्वारा प्रतिपादित मत में यत्किंचित् परिवर्तन अवश्य कर दिया था। धर्मकीर्ति के परवर्ती शान्तरक्षित, कमलशील और ज्ञानश्री जैसे बौद्ध दार्शनिकों ने अपने पूर्ववर्ती दार्शनिकों द्वारा निर्दिष्ट दार्शनिक दिशा का ही विकास किया था। बौद्ध दर्शन के चार सम्प्रदाय—वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक हैं।

बौद्धों के समान ही जैन दार्शनिकों ने भी दर्शनशास्त्र की एक विशेष विद्या को जन्म दिया था। जैन-दर्शन का प्रारम्भ उमास्वाति और कुन्दकुन्दाचार्य नामक विद्वानों ने किया था। इन जैन दार्शनिकों में सिद्धसेन दिवाकर (पांचवीं शताब्दी) समन्तभद्र (सातवीं शताब्दी), हरिभद्र (८वीं शताब्दी) भट्ट अकलंक (आठवीं शताब्दी), विद्यानन्द (नवीं शताब्दी), हेमचन्द्र (११वीं शताब्दी) और मल्लिषेण सूरि के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इन दार्शनिकों में अंतिम तीन को छोड़कर सभी शंकर के पूर्ववर्ती एवं समकालीन दार्शनिक हैं।

बौद्ध धर्म के खण्डन एवं ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान की धारणा से मध्ययुग में आस्तिक दर्शन के साहित्य-प्रणयन की प्रवृत्ति प्रधान थी। मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक मुनि जैमिनि इसी युग में थे। जैमिनि ने ही मीमांसा सूत्रों की रचना की थी। दूसरी शताब्दी ई० पू० के के लगभग उपवर्ष, भवदास और शबर स्वामी ने इन सूत्रों पर वृत्तियां लिखी थीं। शबरस्वामी द्वारा लिखा हुआ शाबर-भाष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मीमांसा दर्शन का अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है। आठवीं शती में कुमारिल भट्ट ने बौद्ध धर्म का खण्डन करके मीमांसा के सिद्धान्तों की सयुक्तिक पुष्टि की थी। कुमारिल के ही विचार सूत्र का विस्तार मण्डनमिश्र ने अपने विधिविवेक एवं भावना विवेक नामक ग्रन्थों में किया था। इधर महर्षि वादरायण ने वेदान्तसूत्र का निर्माण करके वेदान्तदर्शन की रूप-रेखा खींची थी। शंकराचार्य से पूर्व आचार्य गौड़पाद माण्डूक्योपनिषत् पर कारिकाओं का निर्माण कर चुके थे। इन दार्शनिक परिस्थितियों का प्रभाव शंकराचार्य पर विशेष रूप से स्वीकार्य है। शांकरदर्शन में इसके पूर्ववर्ती दर्शनों की छाया स्पष्ट रूप से दर्शनीय है।

कहना न होगा कि उक्त राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं दार्शनिक परिस्थितियां शांकरदर्शन की प्रेरक पृष्ठभूमि के रूप में वर्तमान थी। वैदिक दर्शन के उद्धार के लिये मायावाद की स्थापना में भी शंकराचार्य को इन परिस्थितियों से अप्रत्यक्ष पृष्ठभूमि प्राप्त हुई थी।

वैदिक पृष्ठभूमि

वेद विश्व जनीन संस्कृति, साहित्य, विज्ञान एवं दर्शन की अमर निधि है। वैसे तो शंकराचार्य के मायावाद का दर्शन के क्षेत्र में नितान्त मौलिक एवं स्वतन्त्र स्थान है परन्तु इस सिद्धान्त की पृष्ठभूमि संहिताओं और उपनिषदों में मिलती है। इस स्थल पर क्रमशः संहिताओं और उपनिषदों की पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में विचार किया जायगा।

संहिताओं में मायावाद की पृष्ठभूमि

संहिताओं के अन्तर्गत ऋग्वेदसंहिता, यजुर्वेदसंहिता और अथर्ववेदसंहिता में मायावाद की यत्किंचित् पृष्ठभूमि प्राप्त होती है। इस स्थल पर क्रमशः इन संहिताओं के सम्बन्ध में विवेचन किया जायगा।

क—ऋग्वेदसंहिता और माया

ऋग्वेदसंहिता के दशम मण्डल के १७७ वें सूत्र में आसुरी माया का वर्णन किया गया है। इस सूक्त का देवता भी माया ही है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में बतलाया गया है कि विद्वानों ने मानसिक चक्षु से एक पतंग (जीवात्मा) को देखा जो कि आसुरी माया से आक्रान्त है। विद्वानों ने कहा कि यह समुद्र के बीच घटित हो रहा है। वे विद्वान् लोग विधाता की किरणों में जाने की इच्छा करते हैं।[1] यहां पतंग को माया लिप्त जीवात्मा, समुद्र को परमात्मा और विधाता

1. पतंगमक्तमसुरस्य मायाया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः।
समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः॥ —ऋ० सं०१०-१७७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किरणों को परमात्मा-लोक के प्रकाश का प्रतीक कहना समीचीन ही होगा। जीवात्मा माया से आच्छन्न हैं, यह बात चिन्तन के द्वारा ही सम्भव है। समुद्रवत् परमात्मा के बीच में ही जीवात्मा रहता है। परमात्मा के आलोकमय धाम मे जाने से ही माया से मुक्ति मिलती है। सायणाचार्य ने अपने भाष्य में भी इस दार्शनिक मत का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि माया से व्याप्त जीवात्मा को वेदान्ताभिज्ञानी पुरुष अन्तर्मुखी स्थिति के द्वारा देखते हैं और परमात्मसाक्षात्कार करते हैं। उनका कथन है कि उपाधि के परित्याग से जीवात्मा का परमात्मा के साथ साक्षात्कार होता है। सायणाचार्य ने मन्त्र में आये हुए 'समुद्र' शब्द को परमात्मा का प्रतीक मानकर उसे दृश्य जगत् का अधिष्ठान और जगत् को अध्यस्त कहा है। अतः ज्ञानीजन सकल दृष्य जगत् के मिथ्या होने के कारण सत्-चित्-सुखात्मक परब्रह्म की प्राप्ति की ही कामना करते हैं।[1] यदि देखा जाय तो शंकराचार्य का समस्त अद्वैत सिद्धान्त सायणाचार्य के इस मत में अन्तर्भूत हो जाता है। विलसन ने भी उक्त मन्त्र पर विचार करते हुए माया को भौतिक जगत् की सृष्टि का कारण माना है।[2]

ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल के ४७ वें सूक्त के १८ मन्त्र माया का वर्णन इन्द्र की अनेक रूप धारण करने वाली शक्ति के अर्थ में हुआ है। इस मन्त्र के अनुसार इन्द्र अनेक रूपों को धारण करके पृथक-पृथक रूपों में प्रकट होते है। इन्द्र माया द्वारा अनेक रूप धारण करके यजमानों के पास उपस्थित होते हैं क्योंकि इन्द्र के रथ में हजार घोड़े जोते गये हैं।[3]

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के ३८ वें सूक्त के ७ वें मन्त्र में यजमानों के मायिक स्वरूप का वर्णन किया गया है जो यजमान अभीष्टदाता इन्द्र के लिये गौओं के भोग योग्य हव्य को शीघ्र दुहते है, जिनके अनेक नाम हैं, उन्होंने नवीन असुर

---

१. समुद्रवन्त्यस्माद् भूतानीति समुद्रः परमात्मा। तस्मिन्नधिष्ठान भूतेऽन्तर्मध्ये सर्वदृश्यजातमध्यस्तत्वेन विचक्षते विपश्यन्तीति। अतो दृग्व्यतिरिक्तस्य सर्वस्य मिथ्यात्वाद् वेधसो विधातारस्ते मरीचीनां वृत्तिज्ञानानां पदमधिष्ठानभूतं सच्चियत् सुखात्मकं यत्परं ब्रह्मतदेवेच्छन्ति। तद्भावप्राप्तिमेवकामयन्ते।

—सायणभाष्य, ऋ० सं० १०–१७७–१ वैदिक संशोधन मण्डल, पूना।

2. Wilson, Notes—10, 12, 26, Rigved, Vol. VI, Poona 1928.

३. रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पूरूरूप ईयते युक्ताह्यस्य हरयः शतादश॥

—ऋ० सं० ६–४७–१८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बल को धारण करते हुए तथा माया का विकास करते हुए अपने अपने-अपने रू को इन्द्र को समर्पित किया। इसी सूक्त के ८ वें मन्त्र में जगत् के लोगों को माया भी कहा गया है। इस मन्त्र के अनुसार सारे मायावी लोग इन्द्र की नाना विध कीर्तियां देखते हैं।[१] पंचम मण्डल के ८५ वें सूक्त के ५ वें मन्त्र में माया का प्रयोग वरुणदेव की महती प्रज्ञा के अर्थ में हुआ है। वरुण अपनी महती प्रज्ञा के द्वारा अन्तरिक्ष में अवस्थित होकर मानदण्ड की तरह सूर्य द्वारा पृथ्वी और अन्तरिक्ष को परिच्छिन्न करते हैं।[२] ८५ वें सूक्त के षष्ठ मन्त्र में वरुणदेव की अहिंस्य प्रज्ञा के अर्थ में माया शब्द का प्रयोग हुआ है।[३]

ऋग्वेद के नवम मण्डल के ८३ वें सूक्त के तृतीय मन्त्र में माया शब्द का प्रयोग प्रज्ञा के अर्थ में किया गया है। इस मन्त्र में मायावी का प्रयोग प्रज्ञावान् के अर्थ में मिलता है। ज्ञानीजन सोम की प्रज्ञा से अग्नि आदि संसार को बनाते हैं। सोम की प्रजा से ही मनुष्य दर्शक देवों ने औषधियों में गर्भ धारण किया।[४]

ऋग्वेद के दशम मण्डल के ५४ वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र में इन्द्र के मायिक स्वरूप का वर्णन किया गया है। वामदेवीय वृहदुक्थ ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र! तुमने अपने शरीर को बढ़ाकर और अपने सारे कार्यों की घोषणा कर जिन सब बलसाध्य व्यापारों को सम्पन्न किया वह सब माया मात्र हैं, तुम्हारे सारे युद्ध में माया-भर है।[५]

ऋग्वेद के ५ वें मण्डल के ६३ वें सूक्त के तृतीय मन्त्र में मित्रावरुण की माया का वर्णन है। ऋषि अर्चनाना मित्रावरुण से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि तुम दोनों अत्यन्त राजमान, उद्यतबल वारिवर्षक, द्यावा पृथिवी के पति और सर्व-दृष्टा हो! तुम दोनों विचित्र मेघों के साथ स्तुति श्रवण करने के लिये आगमन करो।

---

१. 'विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि।' ऋ० सं० ३-३८-९

२. इमामूष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्रवोचम्।
मानेनेव तस्थिवां अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण॥
—ऋ० सं० ५-८५-५

३. इमामू नू कवितमस्य मायां महीं देवस्यनकिरा दधर्ष। —ऋ० वे० सं० ५-८५-६

४. मायाविनोममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरोगर्भमादधुः। —ऋ० सं० ९-८३-३

५. यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु।
मायेत् सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननुपुरा विवित्से॥
—ऋ० सं० १०-५४-२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदुपरान्त अपनी माया द्वारा द्युलोक मे वर्षा करो। इससे अग्रिम मन्त्र में भी मित्रावरुण की स्वर्ग स्थित माया का वर्णन है।[१]

ऋग्वेद के एक मन्त्र में वरुण की उस माया शक्ति का वर्णन है जिसके द्वारा वे समस्त संसार को धारण करते हैं।[२]

ऋग्वेदसंहिता के उक्त स्थलों के अतिरिक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के एकादश सूक्त के सप्तम मन्त्र में, तेतीसवें सूक्त के दशम मन्त्र में, इक्यानवें सूक्त के पांचवें मत्र में, एक सौ इक्यावनवें सूक्त के नवम मन्त्र में और तृतीय मण्डल के साठवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में भी माया का वर्णन हुआ है। ऋग्वेदसंहिता में माया शब्द का प्रयोग इन्द्रादि देवताओं की शक्ति और प्रज्ञा के अर्थ में ही अधिक हुआ है। ऋग्वेद के अन्तर्गत प्रयुक्त माया शब्द का अर्थ यद्यपि शांकर मायावाद की विचारधारा से भिन्न है। तथापि ऋग्वेद के माया सम्बन्धी वर्णन मायावाद के लिये एक पृष्ठभूमि अवश्य तैयार करते हैं।

ख–यजुर्वेदसहिता और माया

यजुर्वेद के अन्तर्गत माया का संकेत अनेक स्थानों पर मिलता है। यजुर्वेद के ११ वें अध्याय के ६९ वें मन्त्र में आसुरी माया का वर्णन किया गया है। इस स्थल पर प्राप्त माया की अभिव्यक्ति में अचिन्त्यरूपता एवं विचित्रता की भी छाया प्रतीत होती है।

यजुर्वेद के १३ वें अध्याय के ४४ वें मन्त्र में भी माया की चर्चा की गई है। इस मन्त्र में माया के 'महीम्' और 'साहस्रीम' विशेषण दिये गये हैं।[3] इसके अतिरिक्त यजुर्वेद के अन्य मन्त्रों में भी माया सम्बन्धी वर्णना पाई जाती है।[४] यजुर्वेद में भी माया शब्द विशेषतया प्रज्ञा अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

ग–अथर्ववेदसंहिता और माया

अथर्ववेद में माया का वर्णन निर्मात्री शक्ति के रूप में मिलता है।[५] इसके अतिरिक्त अथर्ववेदसंहिता में एक स्थल पर रोगी और निरोगी स्त्री-पुरुषों को अश्विनीकुमारों की माया को धारण करके रस पोने का उपदेश दिया गया है।[६]

---

१. चित्रेमिरभ्रैरुपतिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया। —ऋ० सं० ५-६३-३
२. ऋ० सं० ८-४१-३
३. वरुत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञाना रजसः परस्मात्।
महीं साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने माहिंसीः परमे व्योमन्॥ —यजुर्वेद १३-४४
४. यजुर्वेद २३-५२ ५. अथर्ववेदसंहिता ८-९-५
६. अ० वे० सं० २-२९-६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋग्वेद के इन्द्र की माया की ही तरह अथर्ववेद में वृत्रासुर की माया की चर्चा आई है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में इन्द्र को सम्बोधित करके कहा गया कि हे स्वायत्त बलवाले इन्द्र! तुम मन के समान वेगवान् एवं पर्वत वाले वज्र माया के द्वारा बढ़ते हुये प्रसिद्ध वृत्रासुर को विशेष रूप से नष्ट कर चुके हो। यो बल से सम्पन्न, महत्त्वमय इन्द्र! तुमने उन दृढ शत्रु नगरों को भी घर्षक वज्र विदारित कर दिया है जिनका विनाश अन्य किसी के द्वारा असम्भव था।[१] अथर्व के २०वें काण्ड में ही इन्द्र से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि हे दीप्त इन्द्र! आप द्युलोकवासी जनों के राजा हैं। आप दक्षिण हस्त में वज्र धारण करिये और उस वज्र से सब आसुरी मायाओं को बाधित करिये। जीर्ण के अयोग्य हे इन्द्र! आप आसुरी मायाओं को बाधित करिये।[२]

अथर्ववेद में असुरों की प्रवंचना के लिये भी माया शब्द का प्रयोग किया है। २०वें काण्ड के उनतीसवें सूक्त के चतुर्थ मन्त्र के अन्तर्गत इन्द्र से स्तुति की है कि आप मायाओं (प्रवंचनाओं) से उद्गमन करने की इच्छा वाले और द्युलो पर चढ़ना चाहने वाले असुरों को उलटा मुख करके नीचे गिरा देते हैं।[३] सायण इस मन्त्र में प्रयुक्त माया शब्द का अर्थ प्रवंचना ही किया है।[४]

अथर्ववेदसंहिता में माया का वर्णन इन्द्र की शक्ति के अर्थ में भी मिल है। इन्द्र की स्तुति के प्रसंग में इन्द्र को अपनी मायाओं से दस्युओं को पीस डा वाला कहा गया है।[५]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अथर्ववेद संहिता में परवर्ती मायावाद की पृ भूमि के स्पष्ट दर्शन होते हैं। प्रवंचना और शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त अथर्ववेद माया शब्द मायावाद की विचारधारा के बहुत कुछ समीप है।

उपनिषदों में मायावाद की पृष्ठभूमि

शंकराचार्य के मायावाद के सिद्धान्त की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के मत हैं। प्रथम मत के अनुसार शंकराचार्य के मायावाद का उदय स्वतन्त्र रू शंकराचार्य की प्रतिभा का ही प्रतिफल है। द्वितीय मत के अनुसार शंकराचार्य मायावाद बौद्ध दर्शन के शून्यवाद आदि सिद्धान्तों के अटूट प्रभाव का परिणाम इस मत के अनुयायी विद्वान् तो शंकराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध तक कहते हैं। ए

१. अ० वे० सं० २०–३६–६। २. अ० वे० सं० २०–३६–९।
३. अ० वे० सं० २०–२९–४। ४. 'मायाभिः आत्मीयाभिर्वंचनाभिः' सायणभाष्य।
—अ० वे० सं० २०–२९
५. अ० वे० सं० २०–११–६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मत के अनुसार शंकराचार्य के मायावाद का उदय एकदम उपनिषदों से स्वीकार किया गया है। इस मत के अनुयायी विद्वानों का विचार है कि शंकराचार्य का मायावाद उपनिषद्वर्ती सिद्धान्त का ही विश्लेषण है। इस सम्बन्ध में मेरी धारणा है कि शंकराचार्य का मायावाद एक स्वतन्त्र सिद्धान्त है जिसके स्रोत उपनिषदों में एक पृष्ठभूमि के रूप में प्राप्त होते हैं। इस स्थल पर मायावाद की उपनिषद्वर्ती पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में विचार विनिमय किया जायेगा।

ईशोपनिषद् में सत्य के आवरण के रूप में एक स्वर्णमय पात्र की वर्णना की गई है। यह स्वर्णमय पात्र संसार के समस्त आकर्षण का मूल है, यही अन्तर्वर्ती सत्य के ज्ञान में बाधक है।[1] अतः सत्य ज्ञान के लिये इस आवरण का हटाना आवश्यक है। वेदान्तसार में भी माया की आवरण और विक्षेप शक्तियों का वर्णन किया गया है।

कठोपनिषद् में अविद्या के द्वारा मोहित हुए अज्ञानी पुरुषों के अन्धानुकरण की चर्चा की गई है। ये अज्ञानी पुरुष अविद्या के द्वारा मोहित होकर अपने आप में पाण्डित्य का आरोप कर लेते हैं। इनकी दशा अन्ध पुरुष द्वारा निर्देशित अन्ध पुरुष सी ही होती है। इनके लिये सत्य के दर्शन असम्भव ही हैं।[2]

मुण्डकोपनिषद् में अविद्या ग्रन्थि का वर्णन है। यह ग्रन्थि तभी खुलती है जब कि परमात्मा का ज्ञान हो जाता है।[3]

छान्दोग्योपनिषद् में विद्या और अविद्या के भेद का निरूपण किया गया है जो कर्म विद्या, श्रद्धा और योग से युक्त होकर किया जाता है वही प्रबलतर होता है। इस प्रकार विद्या के निरूपण के द्वारा अविद्यामूलक कर्म का निषेध किया गया है।[4]

बृहदारण्यक उपनिषद् में भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता है कि मुझे असत् से सत् की ओर ले जाओ, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाओ, मृत्यु से अमृत की ओर ले जाओ। भक्त का यह विचार मिथ्या जगत् से दुःखित होने के उपरान्त

---

१. हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ —ई० उ० १५

२. कठ० उ० १–२–४, १–२–५

३. पुरुषएवेदं विश्वं कर्म तपोब्रह्म परामृतम् एतद्योवेद निहितं गुहायाम् सो विद्या ग्रन्थिं विकिरतीह सौम्य। —मुण्डकोपनिषत् २–१–१०

४. नानातु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति। —छा० उ० १–१–१०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसी आत्मिक प्रेरणा के अनुरूप ही होता है। इस स्थल पर मिथ्यात्व की तुल असत्, अन्धकार एवं मृत्यु से की गई है।[१]

कठोपनिषद् में कहा है कि धीर पुरुष ध्रुव अमृत तत्त्व को जान कर अ जागतिक ज्ञान की प्रार्थना नहीं करते। यहां माया का मिथ्या एवं अध्रुव रू वर्णन किया गया है।[२]

छादोग्योपनिषद् में एक स्थल पर असत्य को उसी प्रकार सत्य का आव कहा गया है जिस प्रकार अक्षेत्रज्ञ के लिये वसुधा के अन्तर्वर्ती निखिल रत्न आ होने के कारण अप्राप्य बने रहते हैं जिस प्रकार प्रतिदिन कर्षण करने पर वसुधागत उन रत्नों की उपलब्धि अक्षेत्रज्ञ को नहीं होती उसी प्रकार सांसा जीव भी अपने में वर्तमान आत्मा का ज्ञान करने में असमर्थ रहते हैं। ये अज्ञा प्रतिदिन मायाचक्र से ही भ्रान्त होते रहते हैं। यहां माया का स्वरूप अनृ असत्य के द्वारा चित्रित किया गया है।[3]

प्रश्नोपनिषद् में कहा है कि जो आचार की कुटिलता, मिथ्या और माया मुक्त हैं वे ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति कर सकते हैं।[४]

माया सम्बन्धी उपर्युक्त विचारधारा की पुष्टि श्वेताश्वतरोपनिषद् में होती है। यहां कहा गया है कि परमात्मा के अभिध्यान से उसके साथ जीव परमात्मा के एकीभाव से एवं 'अहं ब्रह्मास्मि' इस तत्त्व भाव से विश्व माया निवृत्ति होती है।[५] विश्वमाया का अर्थ शंकराचार्य ने अपने भाष्य में सुख दु मोहात्मक अशेष प्रपंच रूप माया किया है।[६]

वृहदारण्यकोपनिषद् में एक स्थान पर माया का वर्णन इन्द्र की अनेक धारिणी शक्ति के अर्थ में भी किया गया है।[७] यह वर्णन ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल ४७वे सूत्र के १८वें मन्त्र में भी ठीक इसी रूप में प्राप्त है।[८]

श्वेताश्वतरोपनिषद् में एक स्थान पर अविद्या के अर्थ में भी माया का प्र मिलता है। अविकारि. अक्षर ब्रह्म अपनी शक्ति के द्वारा अखिल विश्व प्रपं उत्पन्न करता है। उस माया से ही ब्रह्म अन्यवत् होकर बंध गया है।[९] यहां

---

१. वृ० उ० १-३-२८, २. कठ० उ० ११-४-२, ३. छा० उ० ८-३-१
४. प्र० उ० १-१६
५, तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभाद् भूयश्चान्ते विश्वमाया निवृत्तिः। —श्वे० उ० १-१०
६. सुखदुःखमोहात्म का शेप प्रपंचरूप माया निवृत्तिः। —शा० भा० श्वे० उ० १-१०
७. वृह० उ० २-५-१९, ८. ऋ० सं० ६-४७-१८,
९. अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः। —श्वे० उ० ४-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्मरणीय है कि ईश्वर की आवरणस्वरूप माया और जीव को भ्रमित करने वाली अविद्या में कोई भेद नहीं रक्खा गया है। परवर्ती वेदान्त में यह भेद परम अपेक्षित है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में ही माया का वर्णन प्रकृति के अर्थ में भी हुआ है। माया को प्रकृति और महेश्वर को मायी सिद्ध किया है।[1]

श्वेताश्वतरोपनिषद् में ही परमात्मा को जालवान् भी कहा गया है। जाल से यहां माया का तात्पर्य है। परमेश्वर मायोपाधिक होकर ही अपनी शक्तियों के द्वारा शासन करता है।[2]

बृहदारण्यकोपनिषद् में की गई द्वैत की चर्चा भी माया के अस्तित्व को स्वीकार करती है। एक आत्मतत्त्व के ज्ञान के द्वारा अखिल द्वैत प्रपंच का निरास स्वतः हो जाता है।[3]

छान्दोग्योपनिषद् में आत्मा के अतिरिक्त समस्त प्रपंच को मिथ्या सिद्ध करते हुए कहा है कि घट, कमण्डलु आदि मृत्तिका के विकार केवल वागाश्रित होकर नाम मात्र के हैं। वास्तव में एक मृत्तिका ही सत्य है।[4] उसी प्रकार एक आत्मा के अतिरिक्त समस्त प्रपंच रूप जगत् भी मिथ्या है।

उपनिषदों के उपर्युक्त स्थलों के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उपनिषद्गत विचारधारा में शांकर-मायावाद की स्पष्ट पृष्ठभूमि मिलती है।

योगवासिष्ठ-दर्शन प्रभृति कुछ अन्य पृष्ठभूमियां

वैदिक पृष्ठभूमि के अतिरिक्त शंकराचार्य के मायावाद के लिये कुछ अन्य पृष्ठभूमियां भी प्राप्त थीं। इन पृष्ठभूमियों में योगवासिष्ठदर्शन और श्रीमद्-भगवद् गीता प्रभृति ग्रन्थों की पृष्ठभूमि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस स्थल पर क्रमशः इनका विवेचन किया जायेगा।

योगवासिष्ठ गत पृष्ठभूमि

योगवासिष्ठ नामक ग्रन्थ में अद्वैत वेदान्त का विस्तृत रूप से उपदेशात्मक विवेचन मिलता है। योगवासिष्ठ-दर्शन का प्रमुख सिद्धान्त 'कल्पनावाद' है। इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त जगत् कल्पना है।[5] इस काल्पनिक जगत् की उत्पत्ति

---

१. मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । —श्वे० उ० ४–१०, २. श्वे० उ० ३–१
३. यत्रहि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति इतर इतरं पश्यति तदितर इतरं शृणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं विजानाति । —बृ० उ० २–४–१४
४. छा० उ० ६–१–४, ५. यो० वा० ६ पू० ११४–१७ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का कारण चित्त है।[1] कल्पना मन का ही विकार है। Kingsland महोदय ने भी जगत् का मूल कारण चित्त को ही स्वीकार किया है। उन्होंने चित्त, आत्मा और आत्मा को जगत् का केन्द्र माना है।[2] इस कल्पनामूलक जगत् की सत्य प्रतीति का कारण माया है। माया का वर्णन योगवासिष्ठ के अन्दर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में पाया जाता है।

योगवासिष्ठ के उत्पत्ति प्रकरण में माया का स्वरूप वर्णन लता के रूपक के आधार पर किया गया है। माया शुद्ध चैतन्य में उत्पन्न हुई लता के समान है। चित्त उस माया रूपी लता का मूल है। इन्द्रिय उसके पत्ते और कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड उसके फल हैं। इस लता का नर्तन वायु के द्वारा होता है।[3] इस स्थल पर माया का वर्णन प्रकृति के रूप में किया गया है।

उत्पत्ति प्रकरण में ही एक स्थान पर मायाकाश में प्रकाशमान, आवरण रहित इस जगत् नामक कल्पना रूप नगरी को नि:सीम भ्रान्ति का रूप दिया गया है।[4] उत्पत्ति प्रकरण में अज्ञानी के लिये जगत् की सत्यता का वर्णन करते हुए महर्षि वसिष्ठ ने कहा है कि जिस प्रकार मरुभूमि में स्थित सूर्य का आतप होता है, मृगों की दृष्टि में सत्य जल रूप से प्रतीत होता है और मृगों के भ्रम का कारण बन जाता है। उसी प्रकार यही असत्य जगत् मूढ़मतिमान पुरुष की दृष्टि में सत्य सा प्रतीत होता है। इस प्रकार महर्षि ने यह सिद्ध किया है कि जगत् की सत्यता का कारण अज्ञान है।[5] ही यह अज्ञान मायाजन्य है।

योगवासिष्ठ के अनुसार जगत् की स्थिति स्वाप्निक है। समस्त विश्व स्वप्नरूप में सत्य है। उस स्वाप्निक विश्व में जिस प्रकार आप मेरी दृष्टि में सत्य हैं उसी प्रकार अन्य लोग भी आपकी और मेरी दृष्टि से सत्य हैं।[6] इस प्रकार यह सब स्वप्न और जाग्रत रूप प्रपंच सत्य नहीं है। किन्तु अधिष्ठानता से सत्य प्रतीत होता है। यह स्वाप्निक जगत् का व्यवहार स्वप्नस्त्री समागम की

१. योगवासिष्ठ ३–६१–२४

2. The mind is, as it were, a definite centre in which the self which in itself is universal and absolute can centre itself so as to particularise a 'world'. —Rational mysticism Page 354.

३. यो० वा० ३–५–१७, ४. यो० वा० ३–२१–४

५. यो० वा० ३–४२–३

६. एवं विश्वमिदं स्वप्नस्तत्र सत्यं भवान्मम् ।
यथैव त्वं तथैवान्ये स्वप्ने स्वप्नवरानृणाम् ॥ —यो० वा० ३–४२–१७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिथ्या है। स्वप्नस्त्री की तरह ही यह समस्त मिथ्या जगत् अपने में आसक्ति कराकर जीव को मोहित करता है।[1] स्वप्न केवल मायास्वरूप है क्योंकि उसकी पूर्णरूप से अभिव्यक्ति नहीं होती। बादरायण भी माया के स्वरूप को पूर्णरूप से अभिव्यक्त नहीं मानते हैं।[2]

योगवासिष्ठ में अविद्या का चित्रण भी विस्तृत रूप से प्राप्त होता है। ११३ वें सर्ग में अविद्या को संसार की बीजकणिका के रूप में स्वीकार किया गया है। यह कृत्रिम वेष वाली अविद्या संसार रूप घट शरावों को उत्पन्न करने वाली कुम्भकार चक्रिका के समान है। चित्त को मोह में डालने वाली वासना रूपा यही माया है।[3] यद्यपि यह अविद्या जड़ है तथापि चांचल्य के कारण चैतन्यमयी सी प्रतीत होती है। यह अविद्या उस विद्युत के समान है जो जल की आशा से मेघ में रहती है। अविद्या मूढ़जनों में त्रास की जननी है। इस अविद्या की कर्तृत्व शक्ति भी वास्तविक नहीं है। चित्रलिखित स्त्री के समान अविद्या कर्तृत्व की योग्यता नहीं रखती। मनोराज्य के समान अविद्या आकार मात्र से प्रकाशमान है। उसमें सत्य का अभाव है। यद्यपि यह लाखों शाखा प्रशाखाओं से युक्त प्रतीत होती है। तथापि परमार्थ रूप से यह कुछ भी नहीं है। मनोहर और सत्य ब्रह्म को यह अविद्या असत् रूप से देखती है और अमनोज्ञ एवं असत्य जगत् को सत्य रूप से देखती है। विषयाकार रूपा एवं उद्भूत वासना रूप अविद्या महाबलवती है।[4] यह उसी प्रकार मन को मोह लेती है जिस प्रकार जाल पक्षियों को फांस लेता है।

उत्पत्ति प्रकरण के ११४ वें सर्ग में श्री रामचन्द्र जी के पूछने पर वसिष्ठ जी ने अविद्या के नाश का उपाय भी बतलाया है। वसिष्ठ जी कहते हैं कि सर्वव्यापक ज्ञानस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार होने पर यह अविद्या उसी प्रकार नष्ट हो जाती है जिस प्रकार द्वादश सूर्यों के एक साथ उदित होने पर सूर्यातप के आस्वाद की इच्छुक छाया का विनाश हो जाता है।[5] 'जिस प्रकार सूर्य का उदय होने पर तमस्विनी का विनाश सम्भव है उसी प्रकार विवेक के उदय होने पर अविद्या भी विलीन हो जाती है।[6]

१. वही ३-८२-२४
२. ब्रह्मसूत्र ३-२-३
३. यो० वा० ३-११३-११, ३-११३-१२
४. वही ३-११३-१८, २३, २४, ३२, ३३, ४७
५. वही ३-११४-५
६. यो० वा० ३-११४-६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकराचार्य ने माया के सम्बन्ध में जिस अनिर्वचनीय ख्यातिवाद की स्व
प्रतिष्ठा की है उसका 'सदसद् विलक्षण' लक्षण भी योगवासिष्ठ में मिलता है
स्थिति प्रकरण में वसिष्ठ जी कहते हैं कि भाव-अभाव, ग्रहण और त्याग आदि
प्रतीति चेतन में कल्पित मात्र है। मनश्चापत्य की जननी यह प्रतीति न सत्य
और न असत्य।[१] सदसद् से विलक्षण कहने का योगवासिष्ठकार का तात्
अप्रत्यक्ष रूप से अनिर्वचनीयत्त्व का ही है। आगे चलकर ३७ वें सर्ग में भी माि
जगत् को सदसद् विलक्षण कहा गया है। वसिष्ठ जी कहते हैं कि जगत् को एक
असत् भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि बाह्य ज्ञान की स्थिति में जगत् सत् ही दिख
पड़ता है। परन्तु उसे सद् भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसका बाध होता है
अतः उसे सदसत् से विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय ही कहना उपयुक्त होगा
आचार्य के अनिर्वचनीयवाद की अस्पष्ट रूपरेखा तो इन उद्धरणों में प्राप्त हो
है परन्तु उसमें शंकराचार्य की सी सैद्धान्तिक पुष्टि नहीं है। ठीक भी है, योग
सिष्ठ की ये दार्शनिक अभिव्यक्तियां किसी सिद्धान्त की समर्थक न होकर मुमुक्षु
के लिये संसार की असारता के सम्बन्ध में दिये गये उपदेश मात्र हैं।

रज्जु और सर्प का उदाहरण वेदान्त का प्रमुख एवं जटिल उदाहरण है। इस
स्पष्टता में कभी-कभी बड़े-बड़े दार्शनिक भी असफल रहते हैं।[३] योगवासिष्ठक
ने भी इस प्रसिद्ध उदाहरण की चर्चा की है। जिस प्रकार रज्जु में सर्प का भ्र
होता है उसी प्रकार बन्धनरहित चिदाकाश रूप आत्मा ने बन्धन की कल्पना की है
भ्रान्ति विषयक यह वर्णना अप्रत्यक्ष रूप से माया की ही पोषक है।

योगवासिष्ठ में माया का स्वरूपचित्रण भी मिलता है। एक स्थल
वशिष्ठ जी कहते हैं कि हे राम ! यह माया नष्ट होने पर हर्षप्रद होती है। मा
का स्वभाव परिलक्षित नहीं होता। ज्ञान के द्वारा विचारित होने पर यह स्व
नष्ट हो जाती है।[५] यह अविद्या विवेक का आवरण है। यही जगत् को उत्
करती है। परन्तु यह कौन है, इसका ज्ञान नहीं हो पाता।[६] माया जब

१. यो० वा० ४–२०–३ २. यो० वा० ४–३७–६
३. राधाकृष्णन, इण्डियन फिलासफी, द्वितीय भाग, पृ० ५६९।
४. यो० वा० ४–२१–४६
५. ईदृशीराम मायेयं या स्वनाशेन हर्षदा।
न लक्ष्यते स्वभावोऽस्याः प्रेक्ष्यमाणैव नश्यति ॥ —यो० वा० ४–४१–१५
६. वही ४–४१–१६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अप्रेक्ष्यमाण रहती है तभी तक स्फुरित होती है परन्तु प्रेक्ष्यमाण होने पर नष्ट हो जाती है। अपरिज्ञायमान दशा में ही यह पराक्रम दिखाती है।[1] संसार बन्धनी यह माया विचित्र है। यद्यपि यह असत्य है परन्तु फिर भी सत्य सी प्रतीत होती है।[2] वसिष्ठ जी रामचन्द्र जी से कहते हैं कि परमार्थ रूप से यह माया सत्य नहीं है। इसकी पारमार्थिक असत्यता के सम्बन्ध में कहे गये आचार्यों के उपदेश और श्रुति वाक्यों के अनुभव एवं अभ्यास के द्वारा आप तत्त्वविद् बनकर इस माया के आशय को समझोगे। योगवासिष्ठकार ने प्रकृति की अविद्या रूप का वर्णन करते हुए नवधा अविद्या का वर्णन किया है। पहले कार्याविद्या और कारणाविद्या ये अविद्या के दो भेद किये गये हैं। फिर सूक्ष्म, मध्य तथा स्थूल भेद से अविद्या के तीन भेद होते हैं। इन तीन के भी सत्त्व, रज और तम के भेद से तीन-तीन भेद और होते हैं। इस प्रकार इस अविद्या के नौ भेद हैं।[3]

योग-वासिष्ठ के अन्तर्गत निर्वाण प्रकरण में कहा है कि चेत्य के वीजभूत मल के आश्रित चित ही जगत् में अविद्या के नाम से विख्यात है। वही चेत्य के वीजभूत मल का अतिक्रमण करके उपाधियों से वर्जित होकर आत्मरूपता को प्राप्त करती है।[4]

निर्वाण प्रकरण (पूर्वार्द्ध) के दशम सर्ग का नाम अविद्या चिकित्सा सर्ग है। इस सर्ग में वसिष्ठ जी ने अविद्या के दूरीकरण का उपाय बतलाया है। वसिष्ठजी कहते हैं कि जिस प्रकार दीपक के लाने पर अन्धकार के रूप का निश्चय नहीं होता वरन् अविमल मूर्तिमान् तमस् का केवल नाश ही होता है उसी प्रकार ज्ञान होने पर, असद् रूप यह विद्या न जाने कहां भाग जाती है। अविद्या अवस्तु होने के कारण असद् रूप है इसका दर्शन तभी तक होता है जब तक कि ज्ञानदृष्टि से विचार न किया जाय।[5] वास्तव में अविद्या नाम की वस्तु कहीं भी नहीं है। समग्र जगत् अखण्ड स्वरूप ब्रह्म ही है। ब्रह्म ने ही सत् एवं असत् रूप में विस्तारभूत इस सम्पूर्ण जगत् का निर्माण किया है।[6]

निर्वाण प्रकरण के उत्तरार्ध में वसिष्ठ जी कहते हैं कि प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमाण

---

१. अप्रेक्ष्यमाणा स्फुरति प्रेक्षिता तु विनश्यति।
मायेयमपरिज्ञायमान रूपैव वल्गति। वही ४-४१-१७

२. अहो नु खलु चित्रेयं माया संसारबन्धनी।
असत्यैवाति सत्यैव स्वज्ञानं विहितं तया॥ —वही ४-४१-१८

३. यो० वा० पू० ६-९-८

४. यो० वा० पू० ६-१०-५

५. यो० वा० पू० ६-१०-३५, ३६

६. यो० वा० पू० ६-१०-४३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माया न परमार्थ रूप सत्य आत्मा में है और न असद् रूप शून्य में। इस माया का द्रष्टा कोई जीव भी नहीं है। इस प्रकार शून्य अशून्य से विलक्षण जगत् भ्रान्ति अनिर्वचनीय ही भासती है।[१]

निर्वाण प्रकरण के परमात्मामिधान् नामक सर्ग में ईश्वर का वचन है। परमार्थ तत्त्व का चिन्तन करने से संसार माया का विभेद नष्ट हो जाता है। शान्त हो जाने पर अभ्यास के द्वारा शिवतत्त्व का ज्ञान हो जाता है। निर्वाण प्रकरण के ही शक्रगमन नामक सर्ग में अंगना चूड़ाला की माया का वर्णन आया है। चूड़ाला अरण्य भूमि में अपनी माया से सुरगण एवं अप्सराओं के साथ इन्द्र के दर्शन कराती है।[२] चूड़ाला स्वप्नदर्शन सर्ग में भी चूड़ाला की माया की चर्चा की गई है।[3]

योगवासिष्ठ के पंचम प्रकरण में गाधि और भगवान् के संवादों में माया का विशेष वर्णना मिलती है। पंचम प्रकरण में एक स्थल पर गाधि जगत् की मायिक सत्ता से चकित होकर माया के आविर्भाव के सम्बन्ध में पूछते हैं।[४] इसी स्थल पर गाधि कहते हैं कि मुझे भगवान् ने जिस माया को दिखाया था वह मुझे विस्मृत हो गई है।[५] इसी प्रसंग में भगवान् कहते हैं कि हे गाधि! तुमने मेरी गरीयसी माया और मायनिमित्तक जगज्जाल कार्य को देखा।[६] यहां माया की परमेश्वर की शक्ति के रूप में व्यंजना मिलती है।

वशिष्ठ जी ने एक स्थल पर परमात्मा की माया का भी वर्णन किया है। इस स्थल पर माया का स्वरूप अति विस्तृत, दुर्ज्ञेय, महामोहमय एवं विषम बताया गया है।[७] योगवासिष्ठ के उक्त स्थलों के अतिरिक्त भी अनेक स्थलों पर माया की वर्णना मिलती है।[८]

योगवासिष्ठ के इस माया सम्बन्धी विश्लेषण के आधार पर हमें माया के स्वरूपवर्णन की कई विधायें मिलती हैं। अध्ययन की दृष्टि से इनका निम्नरूप में वर्गीकरण किया जा सकता है :—

१—अविद्या के रूप में माया का वर्णन।

१. वही उ० ६–४०–१३,   २. वही पू० ६–१०७–१७,
३. वही पू० ६–१०८–१,   ४. वही ५–४८–३१,
५. वही ५–४८–३४,   ६. यो० वा० ५–४८–४०,   ७. वही ५–५०...
८. वही ५–४८–३४, ५–४८–५४, ५–४९–६, ५–४९–२२, ५–४९–२४, ५–४९...
५–५०–४, ५–५०–५, ५–५०–६, ५–५०–७, उत० ६–१६...
उत० ६–१५९–४...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२—माया का स्वाप्निक वर्णन ।

३—परमात्मा की शक्ति के रूप में माया का वर्णन ।

४—रूपकों के आधार पर माया का अप्रत्यक्ष वर्णन ।

योगवासिष्ठ के इस अध्ययन में शंकराचार्य की माया सम्बन्धी पृष्ठभूमि के अन्वेषण का प्रयास रहा है। यह कहना युक्ति-युक्त होगा कि योगवासिष्ठ में शंकराचार्य के माया सम्बन्धी विवेचन की एक स्पष्ट दिशा मिलती है परन्तु इस दिशा में प्राप्त मायापरक विचारधारा का स्वरूप विच्छृङ्खल ही कहा जायगा। दृष्टिकोणभेद के कारण योगवासिष्ठ के इन माया सम्बन्धी वर्णनों में अध्ययन की उस सैद्धान्तिक-प्रक्रिया और विषय प्रतिपादन की निष्ठा का अभाव है जो किसी विषय के पूर्ण अध्ययन के लिये अपेक्षित है। इसी अंश में योगवासिष्ठगत माया सम्बन्धी विभिन्न वर्णन सैद्धान्तिक दृष्टि से अपूर्ण हैं। इन वर्णनों को आचार्य की माया सम्बन्धी विचारधारा की पृष्ठभूमि के रूप में ही स्वीकार करना उचित होगा। सप्तम अध्याय के अन्तर्गत योगवासिष्ठदर्शन और शंकराचार्य के मायावाद का तुलनात्मक विवेचन अपेक्षित होगा।

श्रीमद्भगवद्गीता गत पृष्ठभूमि

मायावाद की उपर्युक्त पुष्ठभूमियों के अतिरिक्त श्रीमद्भगवद्गीता आदि ग्रन्थों में भी माया की पृष्ठभूमि मिलती है। श्रीमद्भगवद्गीता में माया का वर्णन परमेश्वर की शक्ति के रूप में किया गया है। अष्टादश अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि परमेश्वर यन्त्रारूढ़ प्राणियों को अपनी माया से भ्रमाता हुआ सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है।[1] गीता के परमेश्वर की माया अद्भुत एवं त्रिगुणात्मिका है। उस माया के बन्धन से वे ही मुक्ति लाभ कर सकते हैं जो परमात्मा की शरण लेते हैं।[2] गीता में माया को ज्ञान की बाधिका सिद्ध किया गया है। श्रीकृष्ण का कथन है कि माया द्वारा ज्ञान के नष्ट होने के कारण आसुरी प्रवृत्तियों से युक्त दूषित कर्म करते मूढ़जन मुझे नहीं प्राप्त करते।[3]

गीता के उक्त माया सम्बन्धी वर्णन यद्यपि न्यून रूप में ही मिलते हैं परन्तु

---

१. ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।। —श्रीमद्भगवद्गीता १८-६१

२. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।। वही ७-१४

३. श्रीमद्भगवद्गीता ७-१५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनमें माया की एक सबल पृष्ठभूमि मिलती है। 'दोग्धा गोपालनन्दन' के द्वारा, सगृहीत उपनिषत्सार रूप—गीता में शांकर-मायावाद की आधार-शिलाओं का पाया जाना स्वाभाविक ही है।

शंकराचार्य के पूर्ववर्ती वेदान्त के प्रमुख आचार्य और उनमें मायावाद के बीज

शंकराचार्य से पूर्व भी वेदान्त के अनेक ऋषियों और आचार्यों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन ऋषियों का वेदान्त आर्ष वेदान्त के नाम से प्रचलित है। इन आचार्यों में जैमिनी[1], आश्मरथ्य[2], बादरि[3], औडुलोमि[4], काशकृत्स्न[5], कार्ष्णाजिनि[6], आत्रेय[7], काश्यप[8] और बादरायण के नाम उल्लेखनीय हैं। इन ऋषियों के अतिरिक्त शंकराचार्य से पूर्व कई आचार्य हुए हैं। जिनकी अद्वैत वेदान्त से सम्बन्धित विचारधाराएं मिलती हैं। इन वेदान्ताचार्यों की दार्शनिक विचार-धाराओं में शंकराचार्य के मायावाद के भी स्फुट एवं अस्फुट बीज मिलते हैं। इस स्थल पर इन आचार्यों के दार्शनिक मतों में मायावाद के बीजान्वेषण का प्रयास है।

भर्तृप्रपंच

शंकराचार्य के पूर्ववर्ती आचार्यों में इनका विशिष्ट स्थान है। इन्होंने कठोपनिषद् एवं बृहदारण्यक उपनिषद् पर भाष्य रचना की थी। इनका दार्शनिक सिद्धान्त भेदाभेद, द्वैताद्वैत एवं अनेकान्तवाद के नाम से प्रचलित था। इनके मत का उल्लेख शंकराचार्य के शारीरक भाष्य में उपलब्ध होना है।[9] उनका मत है

---

१. ब्र० सू० १–२–२८, ३१, १–३–३१, १–४–१८, ३–२–४०, ३–४–२, ४–४–५, ४–४–११, ३–४–१८, ३–४–४०, ४–३–१२

२. वही १–२–२९, १–४–२०

३. वही १–२–३०, ३–१–११, ४–३–७, ४–४–१०

४. वही १–४–२१, ३–४–५५, ४–४–६, ५. वही १–४–२२, ६. वही ३–१–९

७ वही ३–४–४४, ८. शाण्डिल्य भक्तिसूत्र २९।

९. (ननु) अनेकात्मकं ब्रह्म, यथा वृक्षोऽनेकशाखः, स्वमनेकशक्तिप्रवृत्तियुक्तं ब्रह्म अत एकत्वं नाना त्वंचोभयमपि सत्यमेव। यथा वृक्षइत्येकत्वम्, शाखा इति नानात्वम्। यथा च समुद्रात्मनैकत्वम्, फेन तरंगाद्यात्मना नानात्वम्। यथा च मृदात्मनेकत्वम्, घटशरावाद्यात्मना नानात्वम्। तत्रैकत्वेनांशेन ज्ञानान्मोक्ष व्यवहार सैत्स्यति, नानात्वांशेन तु कर्मकाण्डाश्रयौ लौकिक वैदिक व्यवहारौ सेत्स्यत इति। एवं च मृदादि दृष्टान्ता अनुरूपा भविष्यन्ति। —ब्र० सू० शा० भा० २–१–१४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि परमार्थ एक भी है और अनेक भी। ब्रह्मरूप में परमार्थ एक है परन्तु जगद्-रूप में वही नाना है। इसीलिये उन्होंने कर्म अथवा ज्ञान को पृथक् रूप में न स्वीकार करके दोनों का समुच्चय स्वीकार किया है। उनका सिद्धान्त ज्ञान कर्म समुच्चयवाद के नाम से भी प्रचलित है। इनके अनुसार विद्या, कर्म तथा संस्कार जीव में पूर्व से विद्यमान् रहते हैं। परमात्मा से अभिव्यक्त होकर अविद्या जीव में विकार उत्पन्न करती है और अनात्मस्वरूप अन्तःकरण का धर्म बन जाती हैं। इनका विचार है कि जीव मोक्ष लाभ करने के पहले हिरण्यगर्भभाव को प्राप्त होते हैं। हिरण्यगर्भावस्था मुक्तावस्था नहीं है। इन्होंने मुमुक्षु एवं मुक्त पुरुष के आत्म-दर्शन में भेद सिद्ध किया है। मुमुक्षु का आत्मदर्शन परिच्छिन्न कर्मात्मदर्शन तथा मुक्त का आत्मदर्शन अपरिच्छिन्न परमात्मदर्शन है। मुमुक्षु का परिच्छेदक विज्ञान ही अविद्या है। अविद्या के द्वारा परब्रह्म ही हिरण्यगर्भपद वाच्य होता है। भर्तृप्रपंच ने मोक्ष के दो स्वरूप माने हैं। एक, अपरमोक्ष या अपवर्ग और दूसरा परामुक्ति अथवा ब्रह्मभावापत्ति। प्रथम प्रकार का मोक्ष इस देह में ब्रह्म-साक्षात्कार होने पर होता है। यही जीवन्मुक्ति है। परन्तु देहपात के अनन्तर ब्रह्म में लय होना परम मोक्ष का स्वरूप है। द्वितीय प्रकार का मोक्ष अविद्या निवृत्ति का फल है। अविद्यानिवृत्ति के साथ-साथ जीव के ब्रह्म भाव की उपलब्धि का प्रतिबन्धक शरीर छूट जाता है। इसी दशा में परामुक्ति की प्राप्ति होती है।[1] इस प्रकार भर्तृप्रपंच के इस मत में अविद्या के रूप में मायावाद के यत्किंचित् बीज मिलते हैं।

भर्तृमित्र

इनकी चर्चा जयन्तकृत न्यायमंजरी, यामुनाचार्य के सिद्धित्रय और कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक[2] में मिलती है। मुकुलभट्ट ने अपने अभिधावृत्ति मातृका ग्रन्थ में भी भर्तृमित्र का नाम दिया है।[3] इस उल्लेख से पता चलता है कि भर्तृ-मित्र भी वेदान्त के ही आचार्य थे। यह तर्क अभी संदिग्ध ही है कि यामुनाचार्य द्वारा उल्लिखित भर्तृमित्र और श्लोक वार्तिक में उद्धृत भर्तृमित्र एक ही थे अथवा भिन्न-भिन्न।

भर्तृहरि

वैयाकरण भर्तृहरि रचित कोई वेदान्त ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता परन्तु इनकी

१. वेदान्तांक पृ० ६३३, ६३४, २. श्लोक वार्तिक १-१-१-१०, १-१-६-१३०, १३१
३. अभिधावृत्तिमातृका पृ० १६.

Rajguru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गणना वेदान्त के आचार्यों में ही की गई है। इनकी रचना व्याकरण का ग्रन्थ वाक्यपदीय है। भर्तृहरि भी अद्वैतवादी थे परन्तु इनका अद्वैत आचार्य शंकर के अद्वैत से भिन्न था। इनका सिद्धान्त दार्शनिक जगत् में शब्दाद्वैतवाद के नाम से प्रचलित है। मेरा विचार है कि परवर्ती मण्डनमिश्र प्रभृति स्फोटवादी दार्शनिकों ने भी भर्तृहरि के शब्दाद्वैतवाद के सहारे पर ही अपने सिद्धान्त का प्रासाद खड़ा किया होगा। उमामहेश्वर कृत तत्त्वदीपिका में भर्तृहरि के अद्वैतवादी होने की चर्चा की गई है।[1]

भर्तृहरि शब्दाद्वैतवाद-सिद्धान्त के अनुसार परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी में से 'पश्यन्ती' को ही शब्द ब्रह्मरूप मानते थे। मेरा दृष्टिकोण है कि इस मत के अनुसार 'पश्यन्ती' ही 'परा' वाक् रूप में व्यवहृत की जाती रही होगी। भर्तृहरि के अनुसार यह जगत् शब्द ब्रह्म का ही परिणाम है। अविद्या के कारण अद्वैत रूप शब्द नाना अर्थ रूपों में परिवर्तित हो जाता है। वस्तुतः वाचक (शब्द) और वाच्य (अर्थ) में पार्थक्य कदापि सम्भव नहीं है। वाचक और वाच्य का विभाग काल्पनिक है परन्तु काल्पनिक एवं अयथार्थ होने पर भी अर्थ का अवलम्ब ग्राह्य ही है। अविद्या के द्वारा ही विद्या का ज्ञान सम्भव है। भर्तृहरि ने स्वयं इस सम्बन्ध में लिखा है—

उपाया शिक्षमाणानां बालानामुपलालनाः।
असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते॥

इस प्रकार भर्तृहरि ने शब्द ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् को अविद्याजनक माना है। सूर्यनारायण शुक्ल ने भी भर्तृहरि के मत को उद्धृत करते हुए कहा है कि शब्द ब्रह्मवादियों के अनुसार परा वाक् ही ब्रह्म है वही अविद्या के द्वारा नाना रूप में भासती है।[2] शुक्ल जी ने शब्द ब्रह्मवादी मत की आलोचना करते हुए उद्धृत श्लोक के टिप्पणी में ही शब्द ब्रह्मवादियों द्वारा प्रतिपादित अनिर्वचनीया माया

---

१. महाभाष्यं व्याचक्षाणो भगवान् भर्तृहरिरपि अद्वैतमेवाभ्युप गच्छति यथोक्तं शब्दकौस्तुभे स्फोटवादान्ते—तदेवं पक्षभेदे अविद्यैव वा ब्रह्मैव वा स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति व्युत्पत्त्या स्फोट इति स्थितम्।

—तत्वदीपिका

(बलदेव उपाध्याय के श्री शंकराचार्य ग्रन्थ से उद्धृत)।

२. 'शब्द ब्रह्मवादिनस्तु (परा वाग्) एव ब्रह्म तदेव अविद्यया नानारूपं भासते इति प्राहुः'

—भावप्रदीप, वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड श्लोक १३२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ओर भी संकेत किया है।[१] इन साक्ष्यों के आधार पर यह निःसंदेह स्वीकार किया जा सकता है। कि शब्दाद्वैतवादियों को भी अपने सिद्धान्त के लिये येन केन प्रकारेण माया को भी स्वीकार करना पड़ा था। भर्तृहरि के वाक्यपदीय में अपरोक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में ही माया के बीज उपलब्ध होते हैं।

उपवर्ष

उपवर्ष नामक आचार्य का संकेत कई स्थानों पर प्राप्त होता है। शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में उपवर्ष नामक प्राचीन वृत्तिकार के मत का उल्लेख किया है।[2] शाबरभाष्य के ऊपर वृत्ति रचना करने वाले उपवर्ष का प्रमाण भी उपलब्ध होता है।[3] शाबरभाष्य पर वृत्ति रचयिता एवं आचार्य शंकर द्वारा उद्धृत उपवर्ष एक ही थे, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है।

बोधायन

डा० थीबो का विचार है कि बोधायन ने ब्रह्मसूत्र पर एक वृत्ति की रचना की थी। उसके वचनों का ही उद्धार आचार्य रामानुज ने अपने भाष्य में किया था।[४] प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् जैकोबी का मत है कि बोधायन ने मीमांसा सूत्र पर भी वृत्ति की रचना की थी।[५] प्रपंच हृदय नामक ग्रन्थ में भी बोधायन रचित वृत्ति का उल्लेख किया गया है। इस वृत्तिका नामक इस ग्रन्थ में 'कृत कोटि' बतलाया गया है।[६]

टंक

रामानुज ने अपने वेदार्थ संग्रह में इनका नामोल्लेख किया है। इस उल्लेख के अनुसार यह रामानुज के पूर्ववर्ती विशिष्टाद्वैतवादी आचार्य ठहरते हैं।

---

१. ब्रह्मवादे शब्दब्रह्मवादे च अनिर्वचनीय मायाया कथं शुद्धब्रह्मणः संकीर्णता यतः मूले एकमेवाद्वैतं चैतन्यं शब्दो वा परमार्थं तत्त्वं ततो द्वैतस्य कथं कस्य सन्निधौ स्फुरणम् ... ...।

टिप्पणी, वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड १३२।

(काशी संस्कृत सिरीज)।

२. ब्र० सू० शा० भा० ३-३-५३

3. देखिये—Fitz Edward Hall. Index to Sanskrit Philosophy, Page 167.

4. Sacred Books of the East, Introduction, Vol. XXXIV Page 21.

5. Journal of the American Oriental Society 1911, Page 17.

६. प्रपंच हृदय पृ० ३९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मनन्दी

मधुसूदन सरस्वती ने संक्षेप शारीरक की टीका में इनके मत को उद्धृत किया है।[1] इस मत के अनुसार ये अद्वैती आचार्य ही प्रमाणित होते हैं। प्राचीन साहित्य में ये छान्दोग्यवाक्यकार अथवा वाक्याकार के नाम से प्रसिद्ध थे। विशिष्टाद्वैतवादी आचार्य टंक और ब्रह्मनन्दी को एक ही मानते हैं। इन्हें आचार्य ने विवर्तवादी, भास्कर ने परिणामवादी तथा रामानुज ने भक्तिवादी कहा। ब्रह्मनन्दी द्वारा लिखित छान्दोग्य के वाक्यों पर ही द्रविड़ाचार्य ने भाष्य रची की थी।[2]

भारुचि

आचार्य रामानुज ने अपने वेदार्थ संग्रह में और श्रीनिवासदास ने यतीन्द्रमत दीपिका[3] में इनका संकेत किया है। विज्ञानेश्वर[4] और माधवाचार्य ने धर्मशास्त्रकार भारुचिका उल्लेख किया है। पी० वी० काने ने इनका समय नवमी शती का पूर्वार्द्ध माना है।[6]

कपर्दी और गुहदेव

रामानुज ने अपने वेदार्थ-संग्रह में इन्हें अपना उपजीव्य बतलाया है। अतः ये भी सगुण ब्रह्म के ही प्रतिपादक होंगे। इनके सम्बन्ध में कोई विशेष परिज्ञान नहीं हो सका है।

द्रविड़ाचार्य

इन्होंने वृहदारण्यक और छान्दोग्य पर भाष्य रचना की थी। शंकराचार्य ने अपने भाष्य में इन्हें आगमवित्[7] और सम्प्रदायवित्[8] कहा है। वृहदारण्यक भाष्य के अन्तर्गत तत्त्वमसि के प्रसंग में आचार्य ने इनके द्वारा निर्दिष्ट व्याध संवर्धित राजपुत्र की रोचक आख्यायिका दी है। व्याधकुलोद्भूत राजपुत्र अपने प्राचीन गौरव, मान एवं प्रतिष्ठा को भूल चुका था। परंतु गुरु के द्वारा बतलाने पर उसे अपनी प्राचीन बातों का तुरन्त ध्यान आ गया। इसी प्रकार जीव भी आचार्य

१. देखिये-संक्षेप शारीरक (३-२-१७) पर मधुसूदन सरस्वती की टीका।
2. K. B. Pathak Commomoration, Volume PP. 151-158.
३. यतीन्द्र मत दीपिका, पृ० २, पूना संस्करण।
४. मिताक्षरा १-१८, २-१२४, ५. पाराशर संहिता टीका, २-३
6. History of Dharm Shastra, Vol. I, Page 265.
७. भा० का० शा० भा० २-३३, ८. छा० उ० भा० ३१५ [आनन्दाश्रम सिरीज]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपदेश के अनुसार अपने मूल विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त होता है। यही जीव और ब्रह्म का अपृथग्भाव इनकी अद्वैत सम्बन्धी विचारधारा का पोषक है। रामानुज सम्प्रदाय में भी द्रविड़ाचार्य नाम से एक प्राचीन वेदान्ताचार्य का उल्लेख है।[1] यामुनाचार्य ने भी अपने सिद्धित्रय के आरम्भ में 'भगवता बादरायणेन इदमर्थमेव सूत्राणि प्रणीतानि, विवृतानि च परिमित गम्भीरभाष्यकृता' कहकर इन्हीं भाष्यकार द्रविणाचार्य की ओर संकेत किया है।

सुन्दरपाण्ड्य

इनके बारे में यह अनुमान लगाया जाता है कि इन्होंने एक वार्तिक ग्रन्थ की रचना की थी। एक मत यह भी है कि सुन्दरपाण्ड्य, राजा नेडूमारण बायनर का ही नामान्तर है।[2] सुन्दर पाण्ड्य ने पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा पर वृत्तियां लिखी थीं।

ब्रह्मदत्त

शंकर पूर्व वेदान्तियों में ब्रह्मदत्त प्रमुख है। इनकी किसी रचना का पता नहीं चलता। परन्तु विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त मतों के आधार पर ही इनकी दार्शनिक दशा का ज्ञान सम्भव है। आचार्य सुरेश्वर की नैष्कर्म्य सिद्धि,[3] वेदान्तदेशिक की तत्त्वमुक्ति कलाप की सर्वार्थ सिद्धि[4] टीका में ब्रह्मदत्त के मत का संकेत मिलता है। ब्रह्मदत्त जीव की अनित्यता स्वीकार करते हैं। एकमात्र नित्य पदार्थ ब्रह्म ही है।[5] जीव उसी ब्रह्म से उत्पन्न होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है। ब्रह्मदत्त ज्ञान की अपेक्षा उपासना का अधिक महत्त्व स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार उपनिषदों का तात्पर्य 'तत्त्वमसि' आदि ज्ञान परक महावाक्य में न होकर 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' आदि उपासनापरक वाक्यों के प्रतिपादन में है। ब्रह्मदत्त की

---

1. वेदार्थ संग्रह, पृ० १५४ (काशी संस्करण)
2. M. M. Kuppuswamt Shastri, Some problems of Identity in the cultural history of Ancient India 'यह लेख J. O. R. M. के प्रथम खण्ड के अन्तर्गत (पृ० १–१५) प्राप्त है।
3. नैष्कर्म्य सिद्धि १–६७
4. सर्वार्थ सिद्धि (तत्त्वमुक्ति कलाप की टीका) २–१६
5. 'एकं ब्रह्मैव नित्यं तदितरदखिलं तत्र जन्मादि भागित्यायातं, तेन जीवोपि अचिदिव जनिमान्'

—सर्वार्थ सिद्धि २–१६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्मति में आत्मज्ञान में उपासना विधि का श्रेय है ।[1] ब्रह्मदत्त के अनुसार अंग है तथा उपासना अंगी इस प्रकार इस आचार्य ने 'ज्ञानकर्म समुच्चय' के सिद्धान्त को ही स्वीकार किया है। वेदान्त के उपरि निर्दिष्ट आ... के अतिरिक्त श्रीनिवासदास ने यतीन्द्रमत दीपिका में श्री परांकुश, नाथमुनि ज्योतिश्वर आदि आचार्यों का उल्लेख भी किया है। इन आचार्यों के मत सम्बन्ध में कोई विशेष संकेत प्राप्त नहीं होता ।

शंकराचार्य के पूर्ववर्ती इन वेदान्ताचार्यों के सूक्ष्म दिग्दर्शन के अनुसार कहना उपयुक्त ही होगा कि शंकराचार्य ने जिस अद्वैतवाद के सिद्धान्त का ... किया था उसकी सूक्ष्म पृष्ठभूमि उन्हें अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से मिल चुकी ... अद्वैत प्रतिपादन के लिये अपेक्षित माया के सिद्धान्त के बीज भी इन ... आचार्यों के दार्शनिक मतों में वर्तमान थे । शंकराचार्य के पूर्ववर्ती वेदान्त के आ... में सर्वोच्च स्थान आचार्य गौड़पाद का है। ये शंकराचार्य के परमगुरु थे । ... परमगुरु से शंकराचार्य को मायावाद के प्रतिपादन के लिये जो सबल आधार ... था, शंकराचार्य का मायावाद उसी पर प्रतिष्ठित है । इस स्थल पर शंक... के दर्शन पर गौड़पादाचार्य के प्रभाव के अध्ययन के पूर्व, गौड़पादाचार्य के ... का विवेचन किया जायगा ।

गौड़पादाचार्य के मायावाद का स्वरूप

अद्वैत वेदान्त के इतिहास में गौड़पादाचार्य का प्रमुख स्थान है । गौड़... चार्य का प्रमुख सिद्धान्त 'अजातिवाद' है। इस सिद्धान्त के अनुसार केवल ... आत्मा ही सत्य है। अद्वैत सत्य के अतिरिक्त किसी पदार्थ की भी उत्पत्ति ... होती ।[2] इसीलिये इस सिद्धान्त का नाम 'अजातिवाद' पड़ा है।

अजातिवाद के सिद्धान्त के समर्थन के लिये आचार्य गौड़पाद ने मा... के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था । आचार्य गौड़पाद की 'माण्डूक्यकारि...' 'माया' शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर आया है इसके अतिरिक्त अन्य ...

---

१. केचित् स्वसम्प्रदाय वलावष्टम्भादाहुः—यदेतत् वेदान्त वाक्यात् अहं ब्रह्मेति विज्ञानं ... तन्नैव स्वोत्पत्तिमात्रेण अज्ञानं निरस्यति किं तर्हि अहनि अहनि द्राघीयसा कालेन उ... सतो भावनोप चयान्निःशेषमज्ञानमपगच्छति 'देवोभूत्वा देवानप्येति' इति श्रुते ।

—नैष्कर्म्य सिद्धि

(नैष्कर्म्य सिद्धि की)—ज्ञानामृत विद्यासुरभि नामक टीका में इसे ब्रह्मदत्त का ही मत ... किया गया है ।)

२. माण्डूक्यकारिका ३–४८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में भी मायावाद की चर्चा मिलती है। यहां माण्डूक्यकारिका के आधार पर ही गौड़पादाचार्य के मायावाद के सिद्धान्त का स्वरूप निश्चित किया जायगा। गौड़पादाचार्य ने मायावाद का प्रतिपादन तीन प्रमुख सिद्धान्तों के अन्तर्गत किया है। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:—

१—आत्मा अपनी माया के द्वारा आत्मा में भेदों की कल्पना करता है।[1] आत्मा में कर्तृत्वादि व्यवस्था की साधिका यही माया है।[2]

२—माया के द्वारा पारमार्थिक अद्वैत सत्य भी द्वैतावस्था को प्राप्त हो जाता है।[3]

३—समस्त द्वैत प्रपंच चित्त का ही विस्तार है।[4]

द्वैत की स्वरूप स्थिति के विवेचन के लिये गौड़पाद ने आत्मा, माया और चित्त इन तीन के सम्बन्ध में विचार किया है। परन्तु इन तीनों में मुख्य स्थान माया का है। माया के ही द्वारा आत्मा में भेद कल्पना एवं द्वैत की स्थिति सम्भव है। चित्त में भी द्वैत का विकास-क्रम माया के द्वारा ही सुबोध्य है।[5] गौड़पादाचार्य ने अपने मायावाद के सिद्धान्त के प्रतिपादन के पूर्व द्वैत जगत् की सृष्टि के सम्बन्ध में ७ सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।

प्रथम सिद्धान्त के अनुसार द्वैत सृष्टि ईश्वर की विभूति का फल है।[6] यह सिद्धान्त सृष्टि चिन्तकों के अनुसार ही है। पारमार्थिक चिन्तकों की दृष्टि में सृष्टि का कोई स्थान नहीं।[7] द्वितीय सिद्धान्त के अनुसार जगत् की स्थिति स्वप्न सदृश है।[8] जिस प्रकार मिथ्या होने पर भी स्वाप्निक पदार्थ सत्य प्रतीत होते हैं उसी

---

१. 'कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मा देवः स्वमायया'। माका० २–१२

२. सर्वस्य मिथ्यात्वेऽपि मायया विकल्पित भेदानुरोधेन कर्तृत्वादि व्यवस्था सिध्यतीति भावः। आनन्दगिरि टीका मा० का० पृ० ४१७ (वाणीविलास)।

३. मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाजं कथंचन। मा० का० ३–१९

४. 'चित्तस्पन्दितमेवेदम्' मा० का० ४–७२

5. Mind in this sense is the ground of the world, as conditioned by Maya.

—Dr. Mahadevan, Gaudpada, Page 151

६. मा० का० १–७

७. विभूतिर्विस्तार ईश्वरस्य सृष्टिरिति सृष्टि चिन्तकामन्यन्ते न तु परमार्थ चिन्तकानां सृष्टावादर इत्यर्थः। —शा० मा० मा० का० १–७

८. स्वप्नमाया स्वरूपेति, मा० का० १–७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार मिथ्या जगत् भी माया के कारण सत्य प्रतीत होता है। तृतीय मत के अनुसार सृष्टि प्रभु की इच्छामात्र फल का है।[1] चतुर्थ मत के अनुसार काल चिन्तक भूत सृष्टि, काल के द्वारा मानते हैं।[2] 'कालः प्रत्यक्ष ईश्वरः' वाली उक्ति भी इसी ओर संकेत करती है। पंचम मत के अनुसार ईश्वर ने भोग के लिए सृष्टि की उत्पत्ति की है।[3] षष्ठ मत के अनुसार सृष्टि की रचना ईश्वर की क्रीड़ा मात्र है।[4] इन छः मतों की स्थापना करके गौड़पादाचार्य ने अन्त में सिद्धान्त रूप में अपने मत का उल्लेख किया है। आचार्य के सप्तम मत के अनुसार सृष्टि ईश्वर की स्वाभाविक रचना है।[5] जिस प्रकार सर्प की अधिष्ठान भूत रज्जु में अज्ञान वशात् स्वभावतः ही सर्प आदि का आभास हो जाता है। उसी प्रकार आत्मा में माया के कारण आकाशादि की उत्पत्ति होती है।[6] 'आत्मन आकाश सम्भूतः' श्रुति का तात्पर्य भी यही है।

परवर्ती दर्शन में प्राप्त माया की—अनादि, अनिर्वाच्य एवं भावरूप विशेषताओं का संकेत गौड़पादाचार्य के दर्शन में भी प्राप्त होता है। माण्डूक्यकारिका में एक स्थान पर आचार्य ने कहा है कि अनादि माया के द्वारा सुप्त जीव जब जगता है तभी अद्वैत का बोध होता है।[7] अनिर्वचनीयता के सम्बन्ध में गौड़पाद का कथन है कि मायिक जगत् चिन्तना का विषय न होने के कारण अचिन्त्य है।[8] गौड़पादाचार्य का विचार है कि जगत् का कार्य-कारणत्त्व न असद् हेतुक असत है, असद् हेतु वाला सत् है, न सत् हेतुवाला सत् है और न सत् हेतु वाला असत् ही है। यह तर्क भी माया के अनिर्वचनीयत्त्व का ही बोधक है। आचार्य गौड़पाद ने माया को भावरूप भी स्वीकार किया है। क्योंकि असद् वस्तु कदापि प्रपंच का आधार नहीं हो सकती। (जगत् के विषय वस्तु असत्य हैं परन्तु माया के कारण सत्यवत् प्रतीत होते हैं। प्राणादि को आत्मा से पृथक स्वीकार करना रज्जु से पृथक सर्पादि के समान ही है।[10] जिस प्रकार सर्प का अधिष्ठान रज्जु है

१. इच्छामात्रं प्रभोसृष्टिरिति सृष्टौविनिश्चिताः, मा० का० १–८
२. 'कालात् प्रसूतिं भूतानां मन्यन्ते कालचिन्तकाः', मा० का० १–८
३. 'भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये', मा० का० १–९। ४. 'क्रीडार्थमिति चापरे', मा० का० १–९
५. 'देवस्येष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा, मा० का० १–९
६. आनन्दगिरि, मा० का० १–९
७. अनादि माययासुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते। अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा। मा० का० १–१६
८. मा० का० ४–४१ ९. मा० का० ४–४० १०. मा० का० २–३०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार प्राणादि का अधिष्ठान आत्मा है। इन दोनों की पृथगनुभूति का कारण माया है। आत्मा से न कुछ पृथक है और न कुछ अपृथक है। गौड़पादाचार्य का कथन है कि समस्त देहादि संघातों का कारण आत्ममाया ही है।[1] परमार्थ में देहादि संघात की स्थिति भी नहीं है। सत् मायावी से ही माया के द्वारा जगत् की उत्पत्ति होती है। आत्मा के जिन विभिन्न धर्मों की कल्पना की जाती है वे सब पारमार्थिक रूप से उत्पन्न नहीं होते। इन विभिन्न धर्मों का जन्म मायोपम है।[2] मायामय जीव की उत्पत्ति और मरण के कारण ही समस्त सांसारिक जीवों का मरण और उत्पत्ति सम्भव है।[3] वास्तव में न किसी जीव की उत्पत्ति होती है और न मरण।

गौड़पादाचार्य के दर्शन के सम्बन्ध में हर्मन जैकोबी का कथन है कि गौड़पादाचार्य के मायावाद एवं बौद्धों के शून्यवाद अथवा विज्ञानवाद में घनिष्ट सम्बन्ध है।[4] इतना ही नहीं डा० दास गुप्ता का तो यह विश्वास है कि आचार्य गौड़पाद सम्भवतः बौद्ध ही थे।[5] प्रो० विधुशेखर भट्टाचार्य का कहना है कि गौड़पादाचार्य ने अपनी कारिका में बौद्ध-दर्शन के सिद्धान्तों का ही समर्थन किया है।[6] इस स्थल पर इस विषय का विवेचन विषयान्तर होने के कारण इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गौड़पादाचार्य के मायावाद का मुख्य प्रयोजन बौद्ध-दर्शन का समर्थन न होकर उपनिषद् विचारधारा का स्पष्टीकरण है। इसलिये इनके मायावाद को बौद्ध-शून्यवाद अथवा विज्ञानवाद पर आधारित न मानकर उपनिषद् दर्शन पर ही प्रतिष्ठित मानना चाहिए।

गौड़पादाचार्य के मायावाद का शंकराचार्य पर प्रभाव

गौड़पादाचार्य के मायावाद का शंकराचार्य पर अक्षुण्ण प्रभाव है। अपने मायावाद के सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिये शंकराचार्य को गौड़पादाचार्य की माण्डूक्यकारिकाओं से एक सबल पृष्ठभूमि प्राप्त हुई थी। प्रो० रानाडे का मत है कि शंकराचार्य ने उपनिषदों एवं गौड़पाद के सिद्धांतों के आधार पर ही अपने मायावाद के सिद्धान्त का विकास किया है।[7] शंकराचार्य ने माण्डूक्यकारिका पर भाष्य रचना

---

१. मा० का० ३।२ २. मा० का० ४।१८ ३. मा० का० ४।६९

3 J. A. O. S. 1913 P. 52, 54.

5. A History ot Indian Philosophy, Vol. I, Page 429.

6. The Agam Shastra of Gaudpada, Page LIV, University of Calcutta, 1943.

7. Constructive Survey of Upnishadic Philosophy, P. 230.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी की है। इस भाष्य में भी आचार्य, गौड़पादाचार्य के मायावाद से प्रभावित हुए हैं। गौड़पादाचार्य के कतिपय स्थलों का तो शंकराचार्य पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि शंकराचार्य ने इन स्थलों को ज्यों का त्यों अपना लिया है। गौड़पादाचार्य ने माण्डूक्यकारिका (१-१७) में द्वैत जगत् को माया मात्र कहकर अद्वैत की पारमार्थिक सत्ता सिद्ध की है। मेरा विचार है कि गौड़पाद की कारिका से ही प्रभावित होकर शंकराचार्य ने विवेकचूड़ामणि का निम्नलिखित श्लोक में लिखा होगा—

मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः।
इति ब्रूते श्रुति साक्षात् सुषुप्तावनुभूयते ॥ विवेकचूड़ामणि

विवेकचूड़ामणि के उक्त श्लोक का प्रथम चरण माण्डूक्यकारिका के प्रथम प्रकरण की सत्रहवीं कारिका का द्वितीय चरण है।

गौड़पादाचार्य ने माण्डूक्यकारिका (१-१६) में अनादि माया को ही द्वैत का कारण सिद्ध किया है। शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में आचार्य गौड़पाद को वेदान्तार्थ सम्प्रदायवेत्ता आचार्य कहकर गौड़पादाचार्य की उपर्युक्त कारिका को उद्धृत किया है।[1] अपने पूर्ववर्ती आचार्य को वेदान्तार्थ तत्त्ववेत्ता आचार्य कहना शंकराचार्य पर पड़ने वाले अमिट प्रभाव का ही प्रतीक समझना चाहिये।

गौड़पादाचार्य ने माण्डूक्याकारिका (३-१५) में द्वैत के कार्य-कारण भाव के सम्बन्ध में दिये गये मृदादि दृष्टान्तों का महत्त्व जीव और परमात्मा की एकत्व बुद्धि के निमित्त सिद्ध किया है। आचार्य गौड़पाद की दृष्टि में मृत्तिका एवं लोह आदि के दृष्टान्तों से भेद की कल्पना अनुचित है। शंकराचार्य ने भी अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य (१-४-१४) में मृदादि दृष्टान्तों के द्वारा वर्णित सृष्टि प्रपंच को कार्य कारण के अभेद का ही प्रतिपादक माना है।[2] इस स्थल पर शंकराचार्य ने गौड़पाद की कारिका को भी उद्धृत किया है।

गौड़पादाचार्य नें मायामय बीज के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति सिद्ध की है।

१. अत्रोक्तं वेदान्तार्थसंप्रदायविद्भिराचार्यैः—
अनादि मायाया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते
अजमनिद्र यमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा। ब्र० सू० शा० भा० २-१-९७

२. मृदादि दृष्टान्तैश्च कार्यस्य कारणेनाभेदं वदितुं सृष्टयादि प्रपंच श्राव्यत इति गम्येत।
ब्र० सू० शा० भा० १-४-१४

३. मा० का० ४-५९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकराचार्य ने 'तदधीनत्वादर्थवत्' (ब्र० सू० १-४-३) का भाष्य करते हुए कहा है कि परमेश्वर की अविद्यात्मिका मायाशक्ति ही संसार की बीजशक्ति है।[1] इस प्रकार दोनों ही आचार्यों के मत में संसार का बीज माया ही है।

शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य (२-२२-८) में मायिक जगत् के सम्बन्ध में स्वप्न, माया, मरीचिजल एवं गन्धर्वनगर के दृष्टान्त दिये हैं।[2] इन दृष्टान्तों की चर्चा गौड़पादाचार्य ने माण्डूक्यकारिका (२-३१) में पूर्व से ही कर दी थी।[3] अतः शंकराचार्य पर गौड़पादाचार्य के उक्त वर्णन का प्रभाव निःसन्देह स्वीकार्य है।

गौड़पादाचार्य ने माया की असद् हेतुक असत्, असद्हेतुक सत्, सत् हेतुक सत् एवं सत् हेतुक असत् से विलक्षण कहा है।[4] मायावादी शंकराचार्य ने भी माया की विलक्षणता से प्रभावित होकर उसे अनिर्वचनीय सिद्ध किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गौड़पादाचार्य के मायावाद की—शक्तिरूपता, अनादिता, भावरूपता और अनिर्वचनीयता आदि विशेषताओं का प्रभाव शंकराचार्य के मायावाद पर भी पड़ा है। परन्तु गौड़पादाचार्य और शंकराचार्य के मायावाद में पर्याप्त साम्य होने पर भी इन दोनों दार्शनिकों के सिद्धान्तों में अत्यन्त वैषम्य है। इस वैषम्य का उल्लेख सप्तम अध्याय में तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा किया जायगा।

———

१. अविद्यात्मिका हि सा वीजशक्तिः, ब्र० सू० शा० भा० १-४-३

२. यथा हि स्वप्नमाया मरीच्युदक गन्धर्वनगरादि प्रत्यया विनैव वाह्येनार्थेन ग्राह्य ग्राहका कारा भवन्ति। एवं जागरितगोचरा अपि स्तम्भादि प्रत्ययाभवितुमर्हन्ति प्रत्ययत्वाविशेषात्।
ब्र० सू० शा० भा० २-२-२८।

३. स्वप्नमाये यथादृष्टे गन्धर्वनगरं यथा। तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः ॥
मा० का० २-३१।

४. मा० का० ४-४०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शङ्कराचार्य

[उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन]

तृतीय-अध्याय

शंकराचार्य के मायावाद का स्वरूप, पूर्वार्द्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकराचार्य के माया शब्द का इतिहास

सत्य सदा उन पदों का पूर्वगामी होता है जो आगे चलकर किसी सिद्धान्त विशेष का रूप ग्रहण कर लेते हैं। दीर्घकाल के उपरान्त जिस माया शब्द के आधार पर मायावाद के सिद्धान्त का उदय एवं विकास हुआ उसका प्रयोग वैदिक काल से ही चला आ रहा था। यहां शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित मायावाद की क्रमिक-विचारधारा के विकास की दिशा में "माया" के इतिहास का अन्वेषण किया जायगा।

संहिताओं में माया शब्द का प्रयोग

संहिताओं में माया शब्द के प्रयोग की भिन्न-भिन्न दिशायें मिलती हैं। वैसे तो संहिताओं में प्रयुक्त माया शब्द के सम्बन्ध में द्वितीय अध्याय में संक्षिप्त रूप-रेखा दी जा चुकी है परन्तु इस स्थल पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से संहिताओं के समस्त माया सम्बन्धी प्रयोगों पर विचार किया जायगा। ऋग्वेद संहिता ही प्राचीनतम एवं प्रामाणिक संहिता है। इसमें माया शब्द का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। अतः ऋग्वेद संहिता से ही माया शब्द का इतिहास आरम्भ करना उचित होगा।

ऋग्वेद संहिता में 'माया' शब्द का प्रयोग

ऋग्वेद संहिता में 'माया' शब्द का प्रयोग लगभग ७५ मन्त्रों में हुआ है। इन मन्त्रों में प्राप्त माया के रूप—मायाः, मायया, मायाभिः, माया और मायाम् है। 'मायाः' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद संहिता में २४ बार हुआ है।[1] तृतीयान्त मायया' का प्रयोग ऋग्वेद में २० बार पाया जाता है।[2] डा० प्रभुदत्त शास्त्री ने

---

१. ऋग्वेद संहिता, १ मण्डल ३२ सूक्त। ४ मन्त्र।, १-११७-३, २-११-१०, २-२७-१६, ३-२०-३, ३-५३-८, ५-२-९, ५-३१-७, ५-४०-६, ५-४०-८, ६-१८-९, ६-२०-४, ६-२२-९, ६-४४-२२, ६-४५-९, ६-५८-१, ७-१-१०, ७-९८-५, ७-९९-४, ८-४१-८, १०-५३-९, १०-७३-५, १०-९९-२, १०-१११-६।

२. ऋग्वेद संहिता, १-८०-७, १-४४-१, १-१६०-३, २-१७-५, ३-२७-७, ४-३०-१२, ४-३०-२१, ५-६३-३, ५-६३-६, ५-६३-७, ६-२२-६, ७-१०४-२४, ८-२३-१५, ८-४१-३, ९-७३-५, ९-७३-९, ९-८३-३, १०-७१-५, १०-८५-१८, १०-१७७-१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'मायया' का प्रयोग १९ बार ही खोज पाया है।[1] माया के तृतीयान्त बहुवचन रूप 'मायाभिः का प्रयोग ऋग्वेद में लगभग १३ बार हुआ है।[2] प्रथमान्त 'माया' का प्रयोग इस संहिता में केवल ३ बार ही हुआ है।[3] 'मायाम्' का प्रयोग भी ऋग्वेद में ३ बार ही हुआ है।[4]

माया शब्द के इन विभिन्न उक्त रूपों के अतिरिक्त मायी और मायावी शब्दों के विभिन्न रूप भी ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। 'मायी' का प्रयोग ऋग्वेद में ३ बार हुआ है।[5] 'मायिनः' का प्रयोग ऋग्वेद में १५ बार आया है।[6] 'मायिनम्' का प्रयोग इस संहिता में १० बार हुआ है।[7] मायिनाम्' ३ बार और 'मायिनी' २ बार प्रयुक्त हुआ है।[8] 'मायिनि'[9] और 'मायिना'[10] शब्द केवल एक-एक बार ही प्रयुक्त हुए हैं। 'मायाविना', 'मायाविनम्' और 'मायाविनः' शब्दों का प्रयोग भी ऋग्वेद संहिता में केवल एक एक बार ही हुआ है।[11] 'मायावान्' शब्द का प्रयोग केवल एक बार ही हुआ है।[12]

---

१. P. D Shastri, The Doctrine of Maya, P. 7
—Luzac & Co., London, 1911.

२. ऋग्वेद संहिता, १–११–७, १–३३–१०, १–५१–५, १–१५१–९, ३–३४–६, ३–६०–१, ५–३०–६, ५–४४–२, ५–७८–६, ६–४७–१८, ६–६३–५, ८–१४–१४, १०–१४८–२।

३. ऋग्वेद संहिता, ३–६१–७, ५–६३–४, १०–५४–२।

४. वही ५ ८५–५, ५–८५–६, १०–८८–६।

५. वही ७–२८–४, १०–९९–१०, १०–१४८–५।

६. वही १–३९–२, १–५१–५, १–५४–४, १–६४–६०, १–१५९–४, २–११–१०, ३–३८–७, ३–३८–९, ३–५६–१, ५–४४–११, ६–६१–३, ७–८२–३, ८–३–१९, ८–२३–१४, १०–१३८–३।

७. वही १–११–७, १–५३–७, १–५६–३, १–८०–७, २–११–५, ५–३०–६, ५–२८–२ ६–४८–१४, ८–७६–१, १०–१४८–२।

८. वही, मायिनाम् — १–३२–४, ३–२०–३, ३–३४–३।
मायिनी — ५–४८–१, १०–५–३।

९. वही मायिनि — ५–४८–३।

१०. वही मायिना — ६–६३–५।

११. ऋग्वेद संहिता—मायाविना १०–२४–४, मायाविनम् २–११–९, मायाविनः ९–८३–३।

१२. वही ४–१६–९।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विभिन्न स्थलों में प्रयुक्त 'माया' शब्द के अर्थों के सम्बन्ध में भी विचार कर लेना चाहिये। वैदिक साहित्य के प्राचीन कोष निघण्टु में माया को प्रज्ञा' के ११ पर्यायों में स्वीकार किया गया है। निघण्टु के अन्तर्गत 'प्रज्ञा' के ये ११ पर्याय—(१) कतः, (२) केतुः, (३) चेतः, (४) चित्रम्, (५) क्रतुः, (६) असुः, (७) धीः, (८) शचीः, (९) माया, (१०) वयनम् और (११) अभिख्या हैं।[1] निरुक्तकार यास्क ने भी माया का अर्थ प्रज्ञा ही किया है। ऋग्वेद के मन्त्र—६–५८–१ में प्रयुक्त 'विश्वा हि माया अवसि' पर टिप्पणी लिखते हुए यास्क ने पूषा को प्रज्ञारक्षक कहा है।[2] ऋग्वेद के मन्त्र – १०–८८–६ में प्रयुक्त मायाम् का अर्थ भी निरुक्तकार ने 'प्रज्ञाम्' ही किया है।[3] इसके अतिरिक्त निरुक्तकार ने अन्यत्र भी माया का अर्थ प्रज्ञा ही किया है।[4] भाष्यकार सायण ने अपनी 'यद्वा', 'अथवा' की उक्तियों के द्वारा माया के अनेक अर्थ किये हैं। माया के, सायण द्वारा किये गये प्रमुख अर्थ कपट विशेष[5], प्रज्ञा[6], ज्ञान[7], कर्मविषयाविज्ञान[8], कर्म,[9] शक्ति[10] और प्रभा[11] हैं। माया के इन अर्थों में भी कपट, प्रज्ञा और शक्ति अर्थ ही प्रमुख हैं। सायण द्वारा दी गई माया शब्द की व्युत्पत्ति भी प्रज्ञा अर्थ की ही पोषक है। सायण ने माया शब्द को मानार्थक एवं शब्दार्थक याङ् धातु से कर्ता अथवा कर्म में य प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न किया है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर सायण ने माया की परिभाषा 'मिमीते जानीते कर्म, मीयते अनयेति वा माया' दी है। इस प्रकार माया का अर्थ कर्म-विषय-ज्ञान है।[12] माया के शक्ति अर्थ से सायण का तात्पर्य भौतिक अथवा शारीरिक शक्ति से न होकर मानसिक शक्ति ही प्रतीत होता है। ऋग्वेद के मन्त्र—३–५३–८ के भाष्य में सायण द्वारा दिया गया 'मायाः' का

---

१. निघण्टु ३–९, सीताराम शास्त्री संपादित, दिल्ली।

२. सर्वाणि प्रज्ञानान्यवस्यन्नवन् भाजनवती ते पूषन्निक्षदतिरस्तु, निरुक्त १२–१७।

३. प्रज्ञां त्वेतां मन्यन्ते यज्ञियानां देवानाम् यज्ञसम्पादिनाम्, निरुक्त ७–२७।

४. निरुक्त ६–१३।

५. मायाभिः तत्प्रतिकूलैः कपटविशेषैः' सायणभाष्य ऋग्वेद १–११–७।
वैदिक संशोधन मण्डल, पूना संस्करण।

६. यद्वा तद्वधोपाय गोचर प्रज्ञाभिः अवातिरः हिंसितवानसि। वही १–११–७।

७. वही ६–४७–१८। ८. वही ३–२७–७। ९. वही ३–६०–१।

१०. 'इन्द्रो मायया स्वीकीयया शक्त्या'''वही ४–३०–२१, ५–३०–६।

११. वही ३–६१–७। १२. ३–२७–७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'अनेक रूप ग्रहण सामर्थ्योपेता:' पर्याय सूक्ष्म शक्ति की ओर ही संकेत करता है।[१]

यजुर्वेद संहिता में माया शब्द का प्रयोग

यजुर्वेद संहिता में भी माया शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया गया है। यजुर्वेद संहिता के इन प्रयोगों में भी माया के प्रज्ञा अर्थ का ही प्राधान्य लक्षित होता है। यजुर्वेद के ११वें अध्याय के ६९वें मन्त्र में आसुरी माया का वर्णन मिलता है।[२] उव्वट ने उक्त मन्त्र के भाष्य में आसुरी माया को प्राण सम्बन्धिनी प्रज्ञा कहा है।[३] महीधर ने उपर्युक्त मन्त्र (११-६९) की टिप्पणी करते हुए माया के दो अर्थ स्वीकार किये हैं - एक प्राण सम्बन्धिनी प्रज्ञा और दूसरा अचिन्त्य रचना रूप विचित्र वस्तु है।[४] महीधर द्वारा किये गये दूसरे अर्थ की अचिन्त्य रूपता एवं विचित्रता में उत्तरकालिक माया के अनिर्वचनीय रूप की किंचित् पृष्ठभूमि मिलती है। यजुर्वेद में ही एक अन्य प्रसंग (१३–४४) में अग्निदेव से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि आप इस मही और साहस्री रूपा आसुरी माया का नाश न करें। उव्वट ने यहां भी इस मंत्र में प्रयुक्त माया के 'महीम्' और 'साहस्रीम्' शब्दों के पर्याय क्रमश: 'महतीम्' और 'सहस्रोपकाररक्षमाम्' दिये हैं।[५] महीधर ने असुर शब्द का अर्थ प्राणी और आसुरी माया का अर्थ प्राणियों की प्रज्ञा किया है।[६] इसके अतिरिक्त भी यजुर्वेद में अन्य स्थलों पर प्रयुक्त माया शब्द का अर्थ भाष्यकारों ने प्रज्ञा एवं बुद्धि ही किया है।[७]

अथर्ववेद संहिता में माया शब्द का प्रयोग

अथर्ववेद संहिता में भी माया शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। माया शब्द के विभिन्न रूपों में से अथर्ववेद में प्रयुक्त माया शब्द के रूप माया'

१. वही ३–५३–८। २ यजुर्वेद ११–६९।

३. यत आसुरी माया, असुः प्राण:, रेफ उपजन:, प्राण सम्बन्धिनी माया प्रज्ञा। उव्वट भाष्य यजुर्वेद ११–६९।

४ कस्मात् त्वमिदमुच्यसे स्वाध्यायान्नेननिमित्तेन त्वमासुरी माया प्राणसम्बन्धिनी प्रज्ञा कृतासि।'' यद्वा असुरसम्बन्धिनी माया अचिन्त्य रचनारूपं चित्रं वस्तु भूत्वा यद्वत् प्रतिभाति तद्वत् त्वमपि स्तनरचनायुक्ता निष्पन्नासीत्यर्थः। महीधर भाष्य यजुर्वेद ११–६९।

५. महीं महतीं साहस्रीं सहस्रोपकारक्षमाम्। उव्वट भाष्य यजुर्वेद १३–४४।

६. महीधर भाष्य य० वे० सं० १३–४४। ७. वही २३–५२।

८. अथर्वेद संहिता—८ काण्ड, ९ सूक्त, ५ मन्त्र।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(१ बार), मायया[1] (१० बार), मायिनः[2] (३ बार), मायाम्[3] (३ बार) मायाः[4] (४ बार), माये[5] (१ बार), मायायाः[6] (२ बार), मायाभिः[7] (३ बार), मायी[8] (१ बार), मायिनाम्[9] (१ बार) और मायिनम्[10] (१ बार) हैं।

अथर्ववेद में प्रयुक्त माया शब्द के अर्थों के सम्बन्ध में भी विचार करना उपयुक्त होगा। अथर्ववेद के एक मन्त्र (२।२९।६) में हृदय को कल्याणप्रद वस्तुओं से तृप्त करने का वर्णन है। इसी मन्त्र में रोगी और नीरोगी स्त्री-पुरुषों को माया को धारण करके रस पीने का उपदेश भी दिया गया है।[11] इसलिये यहां भी माया का अर्थ प्रज्ञा अथवा बुद्धि ही प्रतीत होता है। अथर्ववेद में आसुरी माया का वर्णन भी मिलता है। अथर्ववेद के मन्त्र—४।२३।५ में कहा गया है कि जिस सहायक की सहायता से ऋषियों ने बल को प्रकाशित किया और आसुरी माया को प्राप्त किया और जिस पूजनीय की सहायता से राजा ने व्यापार करने वालों पर आधिपत्य प्राप्त किया, वह ईश्वर हमको भी पाप से मुक्त करे। इस मन्त्रार्थ में प्रयुक्त ईश्वर से प्राप्त की जाने वाली आसुरी माया को अज्ञान, अविद्या अथवा कपट अर्थ का सूचक नहीं कहा जा सकता। इस स्थल पर भी माया का प्रयोग प्रज्ञा अर्थ का ही वाची है। उक्त उद्धरणों के अतिरिक्त अन्यत्र भी प्रायः माया का प्रज्ञा एवं बुद्धि अर्थ ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। कहीं-कहीं माया शब्द का प्रयोग अथर्ववेद में प्रवंचना के अर्थ में भी किया गया है।[12]

ब्राह्मण ग्रन्थ और 'माया'

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी माया का उल्लेख अनेक स्थलों पर पाया जाता है।

---

१. वही ४–३८–३, ६–७२–१, ७–८६–१, ८–४–२४, १०–८–३४, १३–२–३ १३–२–११, १४–१–२३, १९–६८–१, २०–३६–६।
२. वही १९–२७–५, १९–२७–६, १९–६६–१।
३. वही २–२९–६, ८–१३–३, ८–१३–४।
४. वही ४–२३–५, ८–३–२४, २०–२६–९, २०–८७–५।
५. वही ८–१०–१। ६. वही ८–९–५।
७. वही २–१–८, २०–११–६, २०–२९–४। ८. वही ५–११–४।
९. वही २०–११–३। १०. वही २०–२१–४।
(यह संहिताओं की सारणी गंगाप्रसाद उपाध्याय के अद्वैतवाद पर आधारित है)।
११. अ० वे० सं० २–२९–६। १२. वही २०–२९–४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रयुक्त माया शब्द के रूप — माया[1], मायाम्[2], मायया[3], मायाया[4] आदि हैं। माया के इन रूपों के अतिरिक्त मायावन्तः, मायावतारः, माये आदि शब्दों का प्रयोग भी ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है।[5]

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रयुक्त माया शब्द के अर्थ की कई दिशायें देखी जा सकती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में माया शब्द का प्रयोग अद्भुत एवं ऐन्द्रजालिक चातुर्य के अर्थ में किया गया है।[6] तैत्तिरीय ब्राह्मण में माया से दैविक शक्ति का तात्पर्य है।[7] शतपथ ब्राह्मण में भी माया से अद्भुत शक्ति का ही अभिप्राय है[8] वाजसनेयि संहिता में माया का प्रयोग प्रज्ञा एवं बुद्धि के अर्थ में किया गया है[9]—(वा० सं० ११-६० २३-५२)।

उपनिषद् ग्रन्थ और माया

उपनिषद् दर्शन भारतीय दर्शन की आधारशिला है। वेदान्त उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य ही है। वैसे तो लगभग १२० उपनिषदें प्राप्त हैं, परन्तु उनमें प्राचीन और प्रामाणिक—ईशोपनिषद्, केनोपनिषत्, कठोपनिषत्, प्रश्नोपनिषत्, मुण्डकोपनिषत्, माण्डूक्योपनिषत् तैत्तिरीयोपनिषत् ऐतरेयोपनिषत्, छान्दोग्योपनिषत् और वृहदारण्यकोपनिषत्, ये दश ही हैं। इन प्रामाणिक उपनिषदों पर शंकराचार्य ने भाष्य रचना की है। उपनिषदों में केवल दो बार ही माया शब्द का प्रयोग हुआ है। वृहदारण्यकोपनिषद्[10] और एक बार प्रश्नोपनिषद् में माया शब्द का प्रयोग हुआ है। वृहदारण्यकोपनिषद् के जिस मन्त्र (२-५-१९) में माया शब्द का प्रयोग हुआ है उसका मायावाला अंश ऋग्वेद के मन्त्र—६-४७-१८, की ही ठीक अनुकृति है। वृहदारण्यकोपनिषद् में प्रयुक्त माया शब्द का अर्थ रहस्यमयी शक्ति है और प्रश्नोपनिषद्वर्ती माया का अर्थ आचार की कुटिलता।

---

१. वाजसनेय संहिता ११-६३, २. वाजसनेय संहिता १३-४४, ऐतरेय ब्रा० ८-२
३. वाजसनय संहिता २३-५२, ऐतरेय ब्रा० ६-३६. तैत्तिरीय ब्राह्मण ३-१०-८-२, पंचविंश ब्राह्मण १३-६-६, ४. वा० सं० ३०-७,
५. मायावन्तः — ऐ० ब्रा० ८-२३, मायावतारः ऐ० ब्रा० ८-२३, माये श० ब्रा० ३-२ (The Doctrine of Maya, P. 15-16 से उद्धृत),
६. ऐ० ब्रा० ८-२३, ७. तै० ब्रा० ३-१०-८-२,
८ श० ब्रा० शु० य० ३-२-४-१, १३-५-४-१२,
९ देखिये—The Doctrine of Maya P. 15, 16-
१०. वृ० उ० २-१९, ११. प्र० उ० १-१६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्तरकालिक उपनिषदों में भी माया का प्रयोग अनेक स्थलों पर आया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में माया, मायाम्, मायिनम् मायी और मायया शब्दों का प्रयोग मिलता है।[1] श्वेताश्वतरोपनिषद् में माया को प्रकृति एवं परमेश्वर को मायी कहा गया है।[2] इस उपनिषद् में विश्व माया की निवृत्ति का भी उल्लेख है।[3] विश्व के मायात्व का यह संकेत निश्चय ही शंकराचार्य के 'मायामात्रमिदं द्वैतम्' के अधिक निकट प्रतीत होता है। नृसिंह-पूर्वतापनीयोपनिषत् में माया शब्द का शक्ति अर्थ में प्रयोग किया गया है।[4] इसी उपनिषत् में एक स्थान पर माया का अर्थ अविद्या भी है।[5] इस उपनिषद् में भी जगत् की मायिकता का ही संदेश है[6] कैवल्योपनिषद् में माया शब्द का प्रयोग अविद्या के अर्थ में किया गया है।[7] सर्वसारोपनिषद् में अप्रत्यक्ष रूप से माया की अनिर्वचनीयता का स्पष्ट संकेत है।[8] रामपूर्वतापिन्युपनिषद् में श्रीराम जी की स्तुति करते हुए माया शब्द का प्रयोग कई बार किया गया है। राम की माया का वर्णन करते हुये यहां माया के द्वारा अविद्यात्मिका शक्ति का संकेत किया गया है।[9] गोपीचन्दनोपनिषद् में भी 'माया' का प्रयोग कई बार आया है। इस उपनिषद् में कृष्ण और गोपियों के द्वारा ब्रह्म और महामाया की कल्पना की गई है।[10] एक अन्य स्थल पर माया से शवलित ब्रह्म की भी चर्चा की गई है।[11] कठरूद्रोपनिषद् में संसार की माया आदि संज्ञायें दी गई हैं[12] इसी उपनिषद् में माया का जीव और ईश्वर के साथ सम्बन्ध भी दिखाया गया है। गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद् में माया का चिन्तन ब्रह्म की शक्ति के रूप में मिलता है।[13] इस उपनिषद् में माया को अज एवं आद्या कहा गया है। कृष्णोपनिषद् में माया के त्रिगुणात्मक रूप की वर्णना की गई है।[14] इस उपनिषद् में कृष्ण को गोप रूप में मायाविग्रह धारण करने वाला भी कहा है।[15]

इस प्रकार प्राचीन दश उपनिषदों के अतिरिक्त अन्य उपनिषदों में भी माया का संकेत किया गया है। इन उपनिषदों में माया के अविद्यात्मक एवं अनिर्वचनीय रूप का भी ध्वनन होता है। परमेश्वर की शक्ति के रूप में माया का चित्रण इन

---

१. माया—श्वे० उ० १–१०, मायाम्, मायिनम्—वही ४–१०, मायी, मायया—वही ४–९
२. श्वे० उ० ४–१०
३. वही १–१०
४. नृसिंहपूर्वतापनियोपनिषत् ३–१
५. वही ५–१
६. वही १–१, ५ खण्ड,
७. कैवल्योपनिषद् १–१२, १–१३
८. सर्वसारोपनिषत् ४,
९. रामपूर्वतापिन्युपनिषद् २–४
१०. गोपीचन्दनोपनिषद् २
११. वही ४
१२. कठरूद्रोपनिषद् १०
१३. गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत् १७
१४. कृष्णोपनिषद् ४
१५. वही १०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपनिषदों में प्रधान रूप से मिलता है परन्तु इन उपनिषदों की प्रामाणिकता में … होने के कारण इन्हें उपनिषद् दर्शन के क्रमिक विकास के अन्तर्गत नहीं लिया … सकता।

उपनिषद् ग्रन्थों के अतिरिक्त आरण्यक ग्रन्थों में भी माया शब्द का … मिलता है। तैत्तिरीयारण्यक में 'माया' के द्वारा शक्ति अर्थ को प्रकट … गया है।[1]

श्रीमद्भगवद्गीता में 'माया'

श्रीमद्भगवद्गीता में माया शब्द का प्रयोग अयेक स्थलों पर हुआ है। … में माया शब्द कहीं ईश्वर की माया शक्ति[2] और कहीं त्रिगुणात्मिका प्रकृति[3] … लिये व्यवहृत हुआ है।

ब्रह्मसूत्र और 'माया'

दार्शनिक विवेचन की दृष्टि से बादरायण का ब्रह्मसूत्र ही प्रमुख है। शंक… चार्य प्रवृत्ति विभिन्न भाष्यकारों के भाष्यों का आधार भी यही है। ब्रह्मसू… माया शब्द का प्रयोग केवल एक बार हुआ है। यह प्रयोग 'मायामात्रं तु कार्त्स्… नानभिव्यक्त स्वरूपत्वात्'[4] सूत्र के अन्तर्गत हुआ है। इस सूत्र में माया शब्द … प्रयोग स्वाप्निक प्रपंच के मिथ्यात्व के लिये किया गया है। स्पष्ट ही है … स्वाप्निक प्रपंच के मिथ्यात्व की सूचक इस माया से शंकराचार्य के दर्शन की व्य… हारयोग्या माया की पृथक दिशा है।[5] इसलिये सूत्रगत माया शब्द के प्रयोग … शांकर मायावाद से सम्बन्धित नहीं कहा जा सकता।

पुराण और माया

पुराण साहित्य, दर्शन, धर्म एवं सामाजिक परम्पराओं का संग्रह है। … साहित्य में माया के सम्बन्ध में भी विभिन्न अभिव्यक्तियां मिलती हैं। यहां … में पौराणिक माया सम्बन्धी अभिव्यक्तियों की गवेषणा की जायेगी।

विष्णु पुराण में माया शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है।[6] विष्णु …

---

१. कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक, तृतीय प्रपाठक, एकादश अनुवाद, आनन्दाश्रम … ग्रन्थावली ३६।

२. गीता १८–६१ ३. वही ७–१४ ४. ब्र० सू० ३–२–३

5- Dr- Thibout, Introduction, S. B. E. Vol. XXXIV-I… XC Vii.

६. विष्णु पुराण–१–९–१०९, ५–३३–९, ५–३०–१४, ५–२७–१४, ३–१८–८, १–७–३३, ३–१७–४२, ३–१८–३१, ५–२०–१०४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के माया सम्बन्धी वर्णनों में माया शब्द का प्रयोग विष्णु की माया के लिये प्रमुख रूप से पाया जाता है। मोहनी रूपधारी भगवान् विष्णु अपनी माया से दानवों को मोहित करके उनसे कमण्डलु लेकर देवताओं को दे देते हैं।[१] इसके अतिरिक्त इस पुराण में एक स्थल पर विष्णु के माया मोह उत्पन्न करने का भी वर्णन है।[२] "श्रीमद्भागवत पुराण" में माया की परिभाषा देते हुए कहा है कि जिस वस्तु के न होने पर भी अस्तित्व की प्रतीति होती है और जो आत्मा में प्रतीत नहीं होती उसे आत्मा की माया समझना चाहिये।[३] यह माया, आभास एवं तम के सदृश है। दशम स्कन्ध में भगवान् की माया से मोहित होकर मनुष्यों के स्त्री-पुत्रादि में आसक्त होने और दुःख के अपार सागर में डूबने उतरने का वर्णन है।[४] "ब्रह्मपुराण" में भी माया का प्रयोग भगवान् की माया के लिये किया गया है। मुनि कण्डु भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवान् आपकी माया से मोहित हुआ मैं चिरकाल से भ्रम में पड़ा हुआ हूँ। मैं विषयासक्त मनवाला होने के कारण आप की माया का पार नहीं पाता।[५] "वाराहपुराण" में कपिल और जैगीषव्य मुनि के, माया के द्वारा अनेक रूपधारण करने का वर्णन है। यहां माया शब्द का प्रयोग आश्चर्यात्मिका शक्ति के लिये किया गया है।[६] "अग्निपुराण" में माया का वर्णन भगवती दुर्गा के नामों के लिये किया गया है।[७] इसके अतिरिक्त इसी पुराण के २४१ वें अध्याय में अमानुषी माया का भी वर्णन मिलता है।[८] शिवपुराण की वायवीय संहिता के अन्तर्गत शक्तिमान् शिव से 'माया' की उत्पत्ति दिखाई गई है।[९] इस स्थल पर माया शब्द का प्रयोग शिव की शक्ति के लिये किया गया है। बृहत्काय ग्रन्थ "स्कन्दपुराण" के काशी खण्ड में कपट से ब्राह्मण का रूप धारण करने वाले गणेश जी की माया के लिये माया शब्द का प्रयोग हुआ है। गणेश जी अपनी माया के द्वारा

---

१. मायाया मोहयित्वा तान् विष्णुः स्त्रीरूपसंस्थितः।
दानवेभ्यस्तदादाय देवेभ्यः प्रददौ प्रभुः॥ विष्णु पुराण ९-१०९, गी० प्रे०, गोरखपुर

२. विष्णु पुराण ३-१७-४१

३. ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथातमः॥
श्रीमद्भागवत पुराण २-९-३३, गीता प्रेस, गोरखपुर।

४. वही १०-६३-४०, ५. ब्रह्मपुराण १७८-१८१, क्लाइव रो, कलकत्ता, १९५४

६. वाराह पुराण ४-२६, ७. अग्नि पुराण १३७-१८, ८. वही २४१-६५

९. ततो माया ततोव्यक्तं शिवाच्छक्तिमतः प्रभो। शिवपुराण वायवीय संहिता, पूर्व भाग ९-२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्त्रियों के अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं। यहां माया का प्रयोग रहस्यात्मिका के लिए किया जान पड़ता है।[1] "ब्रह्मवैवर्तपुराण" में भगवती दुर्गा को जगत् संमोहक माया का नाम दिया गया है।[2] "भविष्यपुराण" में महादेव द्वारा निर्मित शांवरी माया की चर्चा आई है।[3] "महानारदीय पुराण" के बीच दैतेयों के लिये 'मायिनः' विशेषण दिया गया है।[4] यह भी आसुरी माया का ही एक रूप है। इस स्थल पर दैत्यों के देवता रूप ग्रहण करने की कथा भी आती है। "मार्कण्डेय पुराण" के अन्तर्गत विष्णु की माया शक्ति के लिये माया शब्द का प्रयोग हुआ है।[5] इस पुराण के अन्य स्थलों पर शक्ति के लिये माया शब्द का प्रयोग मिलता है। "वामनपुराण" में वामन भगवान् की स्तुति करते समय उनके मायिक रूप की चर्चा की गई है।[6] यहाँ भी माया शब्द का प्रयोग भगवान् की योगमाया के लिए किया गया है। "गरुड़ पुराण" के अन्तर्गत माया शब्द का प्रयोग देवमाया के सम्बन्ध में प्राप्त होता है।[7] यहां देव का तात्पर्य ब्रह्म से जान पड़ता है।[8] 'ब्रह्माण्डपुराण" में माया शब्द अनाचार सूचक अर्थ में प्रयुक्त किया है।[9] "पद्मपुराण" के अन्तर्गत माया शब्द का प्रयोग संसार की मोहिका शक्ति के लिए किया गया है।[10] साथ ही भगवान् के मायामानुष रूप धारण करने का भी वर्णन मिलता है।[11]

यह असंदिग्ध है कि पुराणों के अन्तर्गत माया के, आसुरी माया, विष्णु की जगन्मोहिका माया, अनैतिक माया और शक्तिरूपिणी माया आदि रूप मिलते हैं। इस प्रकार साक्षात् रूप से दर्शन ग्रन्थ न होने पर भी पुराणों और शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित माया के अर्थ में पर्याप्त साम्य प्रतीत होता है। परन्तु पुराणों की प्रामाणिकता में संदेह है।

---

१. अथमध्ये वरोधंस प्रविश्य निजमायया। स्कन्द पुराण, काशीखण्ड ५६–३१
२. दुरत्यया में माया त्वं यया संमोह्यते जगत्। ब्रह्मवैवर्त पुराण, प्रकृति खण्ड ६६–२५
३. सध्यात्त्वाशांवरीं मायां महादेवेन निर्मिताम्। भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व २३–१०१, ११२, ११३
४. दुरन्तं वत्तपः श्रुत्वा दैतेया मायिनोदितिम्। महानारदीय पुराण, पूर्वखण्ड १०–३८
५. 'विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः', मार्कण्डेय पुराण ८२–६
६. वामनपुराण ३०–२४, २५, २६, २९। ७. 'देवमाया विमोहितः', गरुड़ पुराण ४९–
८. अस्ति देवः परब्रह्मस्वरूपौ निष्कलः शिवः। वही ४९–६
९. ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वभाग, अनुषंगपाद, १९–१०५ १०. पद्मपुराण उ० ख० २४३–
११. मायामानुषतां प्राप्य स देवानब्रवीत् पुनः। वही २४३–४४.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'तन्त्र' और 'माया'

तन्त्र के विशाल साहित्य में माया शब्द का व्यवहार सैकड़ों स्थलों पर हुआ है। तान्त्रिक दर्शन का सर्वस्व महामाया होने के कारण तन्त्रसाहित्य में माया का विशद वर्णन मिलना स्वाभाविक ही है। "शिवसूत्र" में माया का अविद्या के रूप में चित्रण किया गया है।[१] "तन्त्रालोक" तन्त्र साहित्य का विशालकाय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में माया शब्द का प्रयोग अनेक बार अनेक अर्थों में किया गया है। तन्त्रालोक में एक स्थल पर संसार को सविकल्प होने के कारण मायामय कहा है।[२] इसी ग्रन्थ में 'मायापाश' की भी चर्चा आई है।[3] तन्त्रालोककार ने चतुर्थ आह्निक में एक स्थल पर जीवों को भ्रम में डालने वाली माया का वर्णन किया है।[४] चतुर्थ आह्निक में ही मायाण्ड संज्ञित ब्रह्म का भी वर्णन किया गया है।[५] इस प्रकार इस स्थल पर मायाण्ड के द्वारा ही मायीय विश्व की उत्पत्ति सिद्ध की गई है। इस आह्निक में माया का वर्णन स्वरूप गोपनात्मिका पारमेश्वरी इच्छा शक्ति के रूप में भी मिलता है।[६] तन्त्रालोककार अभिनवगुप्त ने अष्टम आह्निक में माया को 'ग्रन्थि' एवं समस्त विलय का स्थान कहा है।[७] अष्टम आह्निक में ही माया के विचित्र एवं अभिन्न विशेषणों का भी संकेत है।[८] "लक्ष्मीतन्त्र" में भी अनेक स्थलों पर माया का प्रयोग मिलता है।[९] इस ग्रन्थ में यों तो माया के अनेक रूप मिलते हैं परन्तु इनमें माया के लक्ष्मी[१०], शक्ति[११], और त्रिगुणात्मक[१२] रूप की प्रधानता है। 'शारदातिलक-तन्त्र" में लक्ष्मण देशिकेन्द्र ने माया शब्द का प्रयोग लक्ष्मी की माया[१३] और मायाबीज के[१४] लिये किया है। "महानिर्वाणतन्त्र" में माया शब्द के प्रयोग के कई रूप हैं। इम

---

१. शिवसूत्र ३-३.
२. सविकल्पतया मायामयमिच्छादि वस्तुतः।
तन्त्रालोक १-२१४, काश्मीर सीरिज़ प्रथम भाग १९१८।
३. वही ४-३३, ४. वही ४-३८, ५. वही ४-१८
६. वही ४-२५४ तथा देखिये—जयरथ की टीका।
७. वही ८-३२१, ३२२, ८. वही ८-३२४
९. लक्ष्मीतन्त्र— ६-३, ७-१६, ७-२६, ८-३२, ८-२७, ९-६, १५-२७, १५-२८, १५-३०, १९-१४, २०-२६, २०-३४, २०-३५, ३४-११ ३५-१०, ३५-२९, ३५-५१, ३८-३८, ५२-१२, ४५-७६, ४५-८०, ४५-८३, ४५-८४
१०. 'मायानाम महालक्ष्मीः, लक्ष्मीतन्त्र २०-२६, अड्यार १९५९
११. लक्ष्मीतन्त्र ६-३, १२. लक्ष्मीतन्त्र ३५-१०
१३. शारदातिलकतन्त्र २-४३, १४. वही २-७३ और २-७७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्रन्थ में आद्या शक्ति काली के (इन्द्रो मायाभि: पुरूरूप ईयते) की तरह ही माया द्वारा अनेक रूप धारण करने का वर्णन है।[१] इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर को आधारशक्ति भी कहा है।[२] परन्तु महानिर्वाणतन्त्र में माया शब्द का बीजमन्त्र के लिये ही प्रचुरता से पाया जाता है।[३] "प्रत्यभिज्ञाहृदय" में राज क्षेम राजाचार्य ने अनेक स्थानों पर माया शब्द का प्रयोग किया है।[४] इस ग्रन्थ माया शब्द का प्रयोग प्रकृति[५], आवरणशक्ति[६] और शक्ति[७] के अर्थ में ही प्रमुख देखा जाता है। "मालिनीविजयवार्तिक" के अन्तर्गत अभिनवगुप्त ने माया शब्द अविद्या के अर्थ में प्रयुक्त किया है।[८] "तन्त्रसार" एवं "विश्वसार" में माया का बीजमन्त्र के लिये मिलता है।[९] बीजमन्त्र के लिये प्रयुक्त माया शब्द का दार्श अर्थ में प्रयुक्त माया शब्द से कुछ भी साम्य नहीं कहा जा सकता। "ललितासहस्रनाम" में माया शब्द का प्रयोग जगन्माता त्रिपुरा के सहस्र नामों में किया गया है। "कूलचूडामणितन्त्र" में माया के वर्णन की कई विधायें मिलती हैं। इस तन्त्र पुस्तक कहीं संसार की मोहकशक्ति[११] और कहीं भगवती के आत्मरूप की आच्छादिका के लिये माया शब्द का व्यवहार मिलता है। "शिवसंहिता" में माया शब्द का प्रपंच अर्थ में किया गया है।[१२] संस्कृत साहित्य के मार्तण्ड महाकवि कालिदास अपने तन्त्र ग्रन्थ "चिद्गगनचन्द्रिका" में 'माया' को 'वेद्यवेदकविभेददक्षा' कहा है। माया का यह विशेषण वेदान्तार्थ सम्मत प्रपंच का ही द्योतक है। अपभ्रंश

---

१. साकारापि निराकारा माययावहुरूपिणी, महानिर्वाणतन्त्र ४--३४,
गणेश एण्ड कं०, मद्रास
२. वही ५-१८७, ३. वही ५-८३, ५-११६, ६-३५, ६-१०३
४. प्रत्यभिज्ञाहृदय १, ३, ५, ७, १७।
५. प्रत्यभिज्ञाहृदय १, ६. वही १७, ७. वही ५
८. तदेव खलु संसारो माया विद्यादिभि: पदेः।
मालिनीविजयवार्तिकम् १७६, काश्मीर सिरीज ३१।
९. देखिये—तन्त्रसार पृ० ६० तथा तन्त्रसार पृ० ४४ पर उद्धृत विश्वसार का अंश।
(चौखम्बा, वनारस)
१०. माया मधुमति मही, ललितासहस्रनाम १६०
११. कुलचूडामणितन्त्र ७-७०, गणेश एण्ड कं०, मद्रास १६५६ ।
१२. वही १-१८
१३. शिवसंहिता १-६६, १-७२, (खेमराज श्रीकृष्णदास, सं० २००८)
१४. चिद्गगनचन्द्रिका २-२५, आगमानुसन्धान समिति, कलकत्ता, १६३७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के ग्रन्थ 'डाकार्णव" में जिसका लेखक अज्ञात है, माया की वर्णना कई बार आई है। इस ग्रन्थ में माया शब्द का प्रयोग प्रज्ञा[१] और बीजमन्त्र[२] के लिये विशेष रूप से किया गया है।

माया सम्बन्धी उपर्युक्त दिग्दर्शन के आधार पर तन्त्र साहित्य के अन्तर्गत माया के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियां मिलती हैं। तन्त्रगत दर्शन में माया का वर्णन भगवती महामाया, शक्तिरूपिणीमाया, अविद्यात्मिका माया और प्रज्ञात्मिका माया के रूप में ही बहुलतया मिलता है। इन वर्णनों में भी माया के शक्ति रूप की ही प्रधानता है। परन्तु यह विचारणीय है कि तन्त्रगत शक्तिरूपिणी माया और शंकराचार्य सम्मत माया शक्ति में भेद है जो माया शक्ति शांकरदर्शन में जड़ एवं मिथ्याभूता सनातनी है वही तन्त्र-दर्शन में चिद्रूपिणी महामाया है। शांकरदर्शन की माया का अनिर्वचनीय रूप भी तन्त्रदर्शन के विपरीत है।[3] इस प्रकार शांकरदर्शन की मायाशक्ति और तन्त्रगत मायाशक्ति के सिद्धान्त में भेद स्पष्ट ही है। इस विषय का तुलनात्मक विवेचन सप्तम अध्याय के अन्तर्गत किया जायगा।

बौद्ध-दर्शन और 'माया'

बौद्ध-दर्शन के अन्तर्गत माया के विभिन्न रूप मिलते हैं। प्राचीन पाली बौद्ध-लेखों में माया शब्द का प्रयोग प्रवंचना के अर्थ में मिलता है।[४] अश्वघोष ने माया का प्रयोग 'इन्द्रजाल' के अर्थ में किया है। महायान-दर्शन की प्रमुख रचना—"लंकावतार सूत्र" में माया शब्द का प्रयोग अनेक बार किया गया है। इस ग्रन्थ के दशम प्रकरण में माया शब्द का प्रयोग 'असत्' अर्थ में किया गया है।[५]

---

१. मायिसहावइ अच्छसि तुम्म, तिहुअण सल्ल उतारअ जिम्म।
संस्कृत रूपान्तर—माया स्वभावेऽसित्वं,
त्रिभुवनस्य सकलस्य उत्तारकोयथा, डाकार्णव १, ६,
Matropolitan, Calcutta, 1935.
शोधग्रन्थ के रूप में इसका सम्पादन डॉ० नगेन्द्रनारायण चौधरी ने किया है।

२. अपउ कहनतु गहइओ माइरूअ, सवरो एआर जुतओ हेतउ तिहुयणभनति॥
संस्कृत रूपांतर—अप्पं (बीज्म) कयें गृहीतं मायारूपम्।
स-परम्-ए-कार-युक्तकं हेतुस्त्रिभुवन भ्रान्तें। वही ५।

3. Mahamaya, Page 24 (Ganesh) & Co., Madras).

4. Dasgupta, Indian Philosophy, Vol. I, P. 470.

५. लंकावतारसूत्र १०—८८ (Arthur Probsthain, London 1923).

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसी प्रकरण में संसार को 'माया स्वप्नोपम' भी कहा है।[१] लंकावतार में माया की स्वप्नोपमता का वर्णन ही प्रमुख रूप से पाया जाता है।[२] लंकावतार के अन्तर्गत माया, गन्धर्व नगर, केशोण्डुक और मृगतृष्णा आदि को एक ही कोटि में रक्खा गया है।[3] उक्त ग्रन्थ में इन्द्रजालरूपिणी माया का स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है। इस इन्द्रजालरूपिणी माया में भ्रमादि के उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। मिथ्या जगत् के सम्बन्ध में होने वाले समस्त भ्रमों का कारण अज्ञानी मनुष्य का चित्तगत भ्रम ही है। इसी लिये ज्ञानी के लिये भ्रम नहीं होता।[४] "अष्टसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता" के अन्तर्गत भी पुनः पुनः मायोपम वस्तुओं को स्वप्नोपम कहा गया है। 'अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता' के निम्नोद्धृत अंश में यह स्वप्नवाद द्रष्टव्य है—

"मायोपमास्ते देवपुत्राः सत्त्वाः स्वप्नोपमाः······देवपुत्रा मायोपमाः स्वप्नोपमाः······स्रोत आपन्नोऽपि मायोपमः स्वप्नोपमः। ······प्रत्येक बुद्धत्वमपि मायोपमं स्वप्नोपमम्। सम्यक् सम्बुद्धोऽपि मायोपमः स्वप्नोपमः। सम्यक् सम्बुद्धत्वमपि मायोपमं स्वप्नोपमम्।"[५]

इस प्रकार बौद्ध-दर्शन की माया और शांकर-दर्शन की मायाशक्ति में पर्याप्त भेद है।

योगवासिष्ठ और 'माया'

योगवासिष्ठ के माया सम्बन्धी वर्णनों का उल्लेख द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत किया जा चुका है। इस स्थल पर क्रमिक दृष्टि से केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि योगवासिष्ठ में माया शब्द का प्रयोग तमोमयी माया[६], आश्चर्यात्मिका-माया[७] और संसारमाया[८] आदि विभिन्न अर्थों में किया गया है।

माण्डूक्यकारिका और 'माया'

शंकराचार्य पूर्ववर्ती साहित्य में गौड़पादाचार्य की कृति "माण्डूक्यकारिका" ही अद्वैत वेदान्त का एकमात्र प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत माया शब्द का

१. वही १०-५६१, २. वही १०-४४३, ४६८, ५८:, २-४, १८०
३. वही १०-६५, १०-४४३
4. Studies in the Lankavatara Sutra, (D. T. Suzuki) P. 121.
५. अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, द्वितीय परिवर्त, पृष्ठ ३६।
(Asiatic Society Bangal 1888).
६. योगवासिष्ठ ५-४८-४४, ७. वही ६-१०८-१, ८. वही ५-४६-२२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रयोग २२ बार हुआ है।[1] कारिकाओं में माया शब्द का प्रयोग आत्मा की माया[2] स्वप्नोपमता[3] के अर्थों में किया गया है। गौड़पादाचार्य के मायावाद का उल्लेख द्वितीय अध्याय के अंतर्गत किया जा चुका है।

शंकराचार्य और 'माया'

मायावाद के सिद्धान्त के प्रतिपादक शंकराचार्य को कृतियों में माया-शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। वैसे तो शंकराचार्य की सभी कृतियों में प्रायः माया का यथाकथंचित् संकेत मिलता है परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से विचार करने के लिये भाष्य ग्रन्थों में प्रयुक्त माया शब्द की ही अधिक उपादेयता है। शंकराचार्य के भाष्य ग्रन्थों में प्रस्थानत्रयी (ब्रह्मसूत्र, दशोपनिषद्, गीता) और माण्डूक्यकारिका पर रचे गये भाष्य ग्रन्थ प्रमुख हैं। यहां इन्हीं के सम्बन्ध में विचार किया जायगा। ईशोपनिषद् भाष्य में माया पद एक बार भी प्रयुक्त नहीं हुआ है। केनोपनिषद् भाष्य में ३ बार, कठोपनिषद् भाष्य में ४ बार, मुण्डकोपनिषद् भाष्य में ४ बार, प्रश्नोपनिषद् भाष्य में ४ बार, ऐतरेयोपनिषद् भाष्य में ३ बार, तैत्तिरीयोपनिषद् भाष्य में २ बार, छांदोग्योपनिषद् भाष्य में दो बार तथा बृहदारण्यकोपनिषत् भाष्य में ३ बार माया शब्द का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार उपनिषद् भाष्य में लगभग २५ (पच्चीस) बार माया शब्द प्रयुक्त हुआ है। माण्डूक्यकारिका के भाष्य में लगभग ६० बार माया शब्द का व्यवहार किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य में लगभग ४० बार माया शब्द का प्रयोग मिलता है। ब्रह्मसूत्र भाष्य में लगभग ३० बार माया शब्द का प्रयोग किया गया है।[4] यहां शंकराचार्य के ग्रन्थों में प्रयुक्त माया शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में विचार करना उपयुक्त होगा।

शंकराचार्य के ग्रन्थों में माया शब्द का प्रयोग परमेश्वर की शक्ति[5], अविद्या[6], इन्द्रजाल[7] और मिथ्यात्व के अर्थ में ही बहुलता से पाया जाता है।

---

१. माण्डूक्यकारिका—१-७, १६, १७, २-१२, १६, ३१, ३-१०, १६, २४, २७, २८, २६, ४-४४, ५८, ५६, ६१, ६६।

(इन कारिकाओं में बीस बार माया शब्द प्रयुक्त हुआ है)। वाणी विलास ग्रन्थ माला।

२. मा० का २-१२, २-१६, ३. वही ३-१०।

४. शंकराचार्य के भाष्य ग्रन्थों का माया सम्बन्धी यह परिगणन डा० रामानन्द तिवारी के 'श्री शंकराचार्य का आचार दर्शन' के आधार पर दिया गया है।

५. ब्र० सू० शां० भा० २-१-१४ ६. कठ० उ० भा० ३-१-२२

७. ब्र० सू० शा० भा० १-१-१७, १-३-१६, २-१-६, २-१-२१, २-१-२८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुल मिलाकर माया की ये विधायें अविद्या के ही अन्तर्गत आ जाती हैं। अविद्यात्मिका माया ही परमात्मा की बीजशक्ति है।[1] अविद्या ही जगत् के सत्य-मान का मूल एवं ब्रह्म के तिरोधान का बीज कारण है। मायावाद के सिद्धान्त का मूल दृष्टिकोण यही विचार सूत्र है।

शंकराचार्य के माया सम्बन्धी उपर्युक्त दृष्टिकोण से यह ज्ञात होता है कि आचार्य को अपने पूर्ववर्ती वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक और दार्शनिक साहित्य से मायावाद की स्थापना के लिए एक सबल पृष्ठभूमि मिली थी। शंकराचार्य के काल तक दिया गया 'माया' का सूक्ष्म इतिहास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस पृष्ठभूमि में भी वैदिक साहित्य की पृष्ठभूमि प्रमुख है। परन्तु इस स्थल पर यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद संहिता एवं उपनिषदों में शांकर-मायावाद के सिद्धान्त का रूप देखना युक्तियुक्त नहीं होगा। निश्चय ही ऋग्वेद संहिता में माया शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। परन्तु ऋग्वैदिक माया और शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित माया में अत्यन्त भेद है। ऋग्वैदिक माया का विवेचन करते समय यह देखा जा चुका है कि वहां माया शब्द का प्रयोग अविद्या अथवा मिथ्यात्व का सूचक न होकर अधिकतर प्रज्ञा अर्थ का ही बोधक है। उपनिषदों में, प्राचीन उपनिषदों में एक बार वृहदारण्यक और एक बार प्रश्नोपनिषद् में माया शब्द प्रयुक्त हुआ है। वृहदारण्यकोपनिषद् में माया शब्द का प्रयोग रहस्यमयी शक्ति और प्रश्नोपनिषद् में आचार्य की कुटिलता के लिए किया गया है।[2] इस प्रकार उपनिषद्वर्ती माया और शंकराचार्य प्रतिपादित माया में भी पर्याप्त भेद है। अतः यह विचारक डा० प्रभुदत्त शास्त्री के इस कथन से असहमत है कि शांकर-मायावाद का विचार ऋग्वेद संहिता और उपनिषदों में प्राप्त है।[3] इसी प्रकार उपनिषदों को मायावाद का आधार मानकर मायावाद को उपनिषद-दर्शन का विकासमात्र सिद्ध करने वाले गफ् एवं डा० थीबो प्रभृति विद्वानों के मत भी तर्क प्रतिष्ठित नहीं प्रतीत होते।[4] इस सम्बन्ध में यह लेखक वेदान्त के मूल साहित्य में मायावाद का उदय न मानकर

१. प्र० उ० भा० १–१६; विवेक चूडामणि ४०५
२. वृ० उ० २-५–१९, प्र० उ० १–१६
3—The Doctrine of Maya, Page 36, Luzac & Co., London, 191[illegible]
४. थीबो और गफ के मतों के लिये देखिए—
S.B E. Vol. XXXIV, Introduction, Page 25.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मायावाद को उत्तरकाल की देन मानने वाले मैक्समूलर[1] और कोलबुक[2] के मत से पूर्णतया सहमत है। कोलबुक के मत का समर्थन करते हुए मैक्समूलर का कथन है कि कोलबुक का उपनिषदों एवं मूल वेदान्त साहित्य में मायावाद के अभाव से यही आशय था कि उपनिषदों और वेदान्त के मूल साहित्य में माया सम्बन्धी विचारधारा जगन्मिथ्यात्व एवं कल्पना के अर्थ में नहीं मिलती।[3]

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि शंकराचार्य ने जगन्मिथ्यात्व एवं अविद्या के प्रतिपादन के रूप में जिस माया सम्बन्धी विचारधारा का विकास किया है उसका संहिताओं और प्राचीन उपनिषदों में सैद्धान्तिक रूप से अभाव ही कहा जायगा।

शंकर परवर्ती रामानुज, निम्बार्क, माध्व और बल्लभ प्रभृति आचार्यों ने भी अपने अपने भाष्यों में माया शब्द का प्रयोग किया है परन्तु इन आचार्यों द्वारा प्रयुक्त माया शब्द के अर्थों और शंकराचार्य के द्वारा प्रयुक्त माया शब्द की अभिव्यक्ति में नितान्त भेद है। इन आचार्यों की माया सम्बन्धी विचारधारा का उल्लेख षष्ठ अध्याय में करेंगे।

माया के पर्यावाची शब्द

कोष ग्रन्थों में माया के भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द मिलते हैं। मेदिनी-कोष में माया के शाम्बरी और बुद्धि पर्याय दिये गये हैं।[4] अमरकोषकार ने भी

1. Maya soon assumed the meaning of illusion, Deception, Fraud, nay it assumed a king of mythological personality. The whole of this development of Vedantic thoughts, however is certainly late.
—Three Lectures on the Vedanta Philosophy, Page 128.,
2. ...... that the notion that the versatile world is an entire illusion (Maya) and that all that passes to the apprehension of the waking individual is but phantasy, presented to his imagination, say that every seeming thing is unreal and all is illusionary, does not appear to be the doctrine of the text of the Vedanta
—Three Lectures on the Vedanta Philosphy, Page 128, London, Longmans Green 1894.
3. Three Lectures on the Vedanta Philosophy, Page 130.
४. मायास्यात् शाम्बरीबुद्धयोर्मायः पीताम्बरे सुरे। मेदिनीकोषः, यान्तवर्ग ४६ श्लोक।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'स्यान्माया शाम्बरी' कहकर माया का शाम्बरी पर्याय ही उचित समझा है। St. Petersburg Dictionary के अन्तर्गत माया के निम्नलिखित पर्याय दिये हैं:—

Aunst;, Ausserordentliches Vermogen, Wunderkraft, Kunstgriff, List, Anschlag, Trug Gaukelei, Kunstliches Gebilde, Trughild, Blendwerk, Tauschung.

मेरी सम्मति से कोषकारों द्वारा दिये गये इन शब्दों के द्वारा शंकराचार्य प्रयुक्त माया शब्द के यथार्थ अर्थ का बोध नहीं होता। वैदिक कोष-ग्रन्थों—निघण्टु और निरुक्त में भी माया का अर्थ प्रायः प्रज्ञा ही मिलता है। यह अर्थ भी शंकराचार्य प्रतिपादित माया से भिन्न है। अतः यहां माया के उपयुक्त पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया जायगा। माया के समुचित अर्थ के बोधक निम्नलिखित प्रमुख शब्द हैं:—

(१) अविद्या, (२) अज्ञान, (३) प्रकृति, (४) अव्यक्त, (५) आकाश, (६) अक्षर, (७) अव्याकृत, (८) प्रधान, (९) अध्यास, (१०) शक्ति, (११) उपाधि।

(१) अविद्या – उपनिषदों में अज्ञान के अर्थ में अविद्या शब्द का प्रयोग मिलता है।[1] शंकराचार्य ने अविद्या स्वरूप बीज शक्ति को परमेश्वराधीना एवं मायामयी महासुषुप्ति का रूप दिया है।

(२) अज्ञान - श्रीमद्भगवद्गीता की 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः' उक्ति में अज्ञान शब्द का प्रयोग अविद्या अथवा माया के ही लिये किया गया है। वेदान्तसार के प्रणेता सदानन्द से माया की ही तरह अज्ञान को सदसद् विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय कहा है।[2]

(३) प्रकृति – दर्शन के क्षेत्र में प्रकृति के दो रूप मिलते हैं। एक सांख्य दर्शन की स्वतन्त्र प्रकृति और दूसरी अद्वैत वेदान्त सम्मत परमेश्वराधीना प्रकृति। श्वेताश्वतरोपनिषद् में 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' कहकर प्रकृति को माया का पर्याय-वाची स्वीकार किया गया है। शंकराचार्य ने भी 'ईश्वरस्य मायाशक्तिः प्रकृतिः' कहकर प्रकृति को माया का पर्यायवाची ही माना है।

(४) अव्यक्त शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में अविद्यात्मि

१. कठ० उ० १–१–५, छा० उ० २–१–१०, मु० उ० २–१–१०।
२. वेदान्तसार ६। ३. ब्र० सू० शा० भा० २– १–१४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बीजशक्ति को अव्यक्त शब्द के द्वारा निर्देश्य कहा है।[१] इस प्रकार अव्यक्त शब्द बीजशक्ति अविद्या का ही पर्याय है।

(५) आकाश—अविद्या के पर्याय अव्यक्त शब्द का निर्देश कहीं-कहीं आकाश शब्द के द्वारा भी किया है।[२] आकाश, प्रपंच का हेतु होने के कारण ही अविद्या का पर्यायवाची है।

(६) अक्षर—शंकराचार्य ने 'क्वचिदक्षरशब्दोदितम्'[३] कहकर अक्षर को भी अव्यक्त का पर्यायवाची स्वीकार किया है। ज्ञान के बिना अन्त न होने के कारण ही अविद्या को अक्षर कहा है।[४]

(७) अव्याकृत—अक्षर, अव्याकृत नाम रूप के बीज ईश्वर की शक्ति का रूप है। ईश्वराधीन यह अव्याकृत नाम रूप का उपादान कारण है।[५] शंकराचार्य ने इसे भी माया एवं अविद्या का पर्यायवाची माना है।

(८) प्रधान—शंकराचार्य ने प्रधान को माया के अन्य पर्यायवाची अव्याकृतादि शब्दों द्वारा वाच्य कहा है।[६] इस प्रकार प्रधान भी माया का पर्यायवाची शब्द है।

(९) अध्यास—अध्यास की परिभाषा 'अतस्मिंस्तद्बुद्धिः' है। आचार्य शंकर ने 'अध्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते'[७] कहकर अध्यास को अविद्या का ही पर्यायवाची स्वीकार किया है।

(१०) शक्ति—अद्वैत वेदान्त में माया का शक्ति रूप में विवेचन प्रायः पाया जाता है। शाक्त-दर्शन का मूल भी शक्ति ही है। परन्तु शाक्त शक्ति महामाया चित्स्वरूपा है। इसके विपरीत वेदान्त की माया जड़रूपा है। शंकराचार्य ने माया का परमेश्वर की शक्ति के रूप में उल्लेख किया है।[८]

(११) उपाधि—वेदान्त के ग्रन्थों में माया और अविद्या के लिये उपाधि शब्द का प्रयोग भी मिलता है। माया ब्रह्म की उपाधि है।[९] इसीलिये माया और उपाधि दोनों पर्यायवाची शब्द हैं।

---

१. अविद्यात्मिकाहि बीजशक्तिरव्यक्तनिर्देश्या। ब्र० सू० शा० भा० १–४–३
२. तदेतदव्यक्तं क्वचिदाकाश शब्दनिर्दिष्टम्। वही १–४–३
३. ब्र० सू० शा० भा० १–४–३, ४. रत्नप्रभा १–४–३
५. ब्र० सू० शा० भा० १–२–२२।
६. ब्र० सू० शा० भा० १–२–२२ ७. ब्र० सू० शा० भा० १–१–१
८. विवेक चूड़ामणि १०८, ब्र० सू० शा० भा० १–४–३, २–१–१४
९. पंचदशी तृप्तिदीप प्रकरण ७२ श्लोक।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'स्यान्माया शाम्बरी' कहकर माया का शाम्बरी पर्याय ही उचित समझा है। St. Petersburg Dictionary के अन्तर्गत माया के निम्नलिखित पर्याय दिये हैं:—

Aunst;, Ausserordentliches Vermogen, Wunderkraft, Kunstgriff, List, Anschlag, Trug Gaukelei, Kunstliches Gebilde, Trughild, Blendwerk, Tauschung.

मेरी सम्मति से कोषकारों द्वारा दिये गये इन शब्दों के द्वारा शंकराचार्य प्रयुक्त माया शब्द के यथार्थ अर्थ का बोध नहीं होता। वैदिक कोष-ग्रन्थों—निघण्टु और निरुक्त में भी माया का अर्थ प्रायः प्रज्ञा ही मिलता है। यह अर्थ भी शंकराचार्य प्रतिपादित माया से भिन्न है। अतः यहां माया के उपयुक्त पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया जायगा। माया के समुचित अर्थ के बोधक निम्नलिखित प्रमुख शब्द हैं:—

(१) अविद्या, (२) अज्ञान, (३) प्रकृति, (४) अव्यक्त, (५) आकाश, (६) अक्षर, (७) अव्याकृत, (८) प्रधान, (९) अध्यास, (१०) शक्ति, (११) उपाधि।

(१) अविद्या—उपनिषदों में अज्ञान के अर्थ में अविद्या शब्द का प्रयोग मिलता है।[1] शंकराचार्य ने अविद्या स्वरूप बीज शक्ति को परमेश्वराधीना एवं मायामयी महासुषुप्ति का रूप दिया है।

(२) अज्ञान—श्रीमद्भगवद्गीता की 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः' उक्ति में अज्ञान शब्द का प्रयोग अविद्या अथवा माया के ही लिये किया गया है। वेदान्तसार के प्रणेता सदानन्द से माया की ही तरह अज्ञान को सदसद् से विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय कहा है।[2]

(३) प्रकृति—दर्शन के क्षेत्र में प्रकृति के दो रूप मिलते हैं। एक सांख्य दर्शन की स्वतन्त्र प्रकृति और दूसरी अद्वैत वेदान्त सम्मत परमेश्वराधीना प्रकृति। श्वेताश्वतरोपनिषद् में 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' कहकर प्रकृति को माया का पर्यायवाची स्वीकार किया गया है। शंकराचार्य ने भी 'ईश्वरस्य मायाशक्तिः प्रकृतिः'[3] कहकर प्रकृति को माया का पर्यायवाची ही माना है।

(४) अव्यक्त शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में अविद्यात्मिका

---

१. कठ० उ० १–१–५, छा० उ० २–१–१०, मु० उ० २–१–१०।
२. वेदान्तसार ६।
३. ब्र० सू० शा० भा० २– १–१४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बीजशक्ति को अव्यक्त शब्द के द्वारा निर्देश्य कहा है।[१] इस प्रकार अव्यक्त शब्द बीजशक्ति अविद्या का ही पर्याय है।

(५) आकाश--अविद्या के पर्याय अव्यक्त शब्द का निर्देश कहीं-कहीं आकाश शब्द के द्वारा भी किया है।[२] आकाश, प्रपंच का हेतु होने के कारण ही अविद्या का पर्यायवाची है।

(६) अक्षर--शंकराचार्य ने 'क्वचिदक्षरशब्दोदितम्'[३] कहकर अक्षर को भी अव्यक्त का पर्यायवाची स्वीकार किया है। ज्ञान के बिना अन्त न होने के कारण ही अविद्या को अक्षर कहा है।[४]

(७) अव्याकृत—अक्षर, अव्याकृत नाम रूप के बीज ईश्वर की शक्ति का रूप है। ईश्वराधीन यह अव्याकृत नाम रूप का उपादान कारण है।[५] शंकराचार्य ने इसे भी माया एवं अविद्या का पर्यायवाची माना है।

(८) प्रधान--शंकराचार्य ने प्रधान को माया के अन्य पर्यायवाची अव्याकृतादि शब्दों द्वारा वाच्य कहा है।[६] इस प्रकार प्रधान भी माया का पर्यायवाची शब्द है।

(९) अध्यास--अध्यास की परिभाषा 'अतस्मिंस्तद्बुद्धिः' है। आचार्य शंकर ने 'अध्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते'[७] कहकर अध्यास को अविद्या का ही पर्यायवाची स्वीकार किया है।

(१०) शक्ति--अद्वैत वेदान्त में माया का शक्ति रूप में विवेचन प्रायः पाया जाता है। शाक्त-दर्शन का मूल भी शक्ति ही है। परन्तु शाक्त शक्ति महामाया चित्स्वरूपा है। इसके विपरीत वेदान्त की माया जड़रूपा है। शंकराचार्य ने माया का परमेश्वर की शक्ति के रूप में उल्लेख किया है।[८]

(११) उपाधि—वेदान्त के ग्रन्थों में माया और अविद्या के लिये उपाधि शब्द का प्रयोग भी मिलता है। माया ब्रह्म की उपाधि है।[९] इसीलिये माया और उपाधि दोनों पर्यायवाची शब्द हैं।

---

१. अविद्यात्मिकाहि बीजशक्तिरव्यक्तनिर्देश्या। ब्र० सू० शा० भा० १-४-३

२. तदेतदव्यक्तं क्वचिदाकाश शब्दनिर्दिष्टम्। वही १-४-३

३. ब्र० सू० शा० भा० १-४-३, ४. रत्नप्रभा १-४-३

५. ब्र० सू० शा० भा० १-२-२२।

६. ब्र० सू० शा० भा० १-२-२२ ७. ब्र० सू० शा० भा० १-१- १

८. विवेक चूड़ामणि १०८, ब्र० सू० शा० भा० १-४-३, २-१-१४

९. पंचदशी तृप्तिदीप प्रकरण ७२ श्लोक।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त किसी-किसी ने नाम रूप और प्रपंच शब्दों को भी माया का पर्यायवाची माना है परन्तु ये शब्द माया के पर्याय रूप में उपयुक्त नहीं प्रतीत होते।

मायावाद के प्रतिपादन की रीतियां

शंकराचार्य का मायावाद अद्वैत का प्राणभूत सिद्धान्त है। शांकर-दर्शन के अनुसार एक ही सिद्धान्त—मायावाद का प्रतिपादन पृथक्-पृथक् रीतियों के द्वारा किया गया है। यहां मायावाद के प्रतिपादन की प्रमुख रीतियों का उल्लेख करना, इस सिद्धान्त के बहुमुखी अध्ययन के दृष्टिकोण से अपेक्षित होगा। मायावाद के प्रतिपादन की प्रमुख रीतियां निम्नलिखित हैं:—

१–परमेश्वर की शक्ति के आधार पर किया गया मायावाद का प्रतिपादन।

२–अविद्या के आधार पर किया गया मायावाद का प्रतिपादन।

३–मिथ्यात्व के आधार पर किया गया मायावाद का प्रतिपादन।

इस स्थल पर मायावाद के प्रतिपादन की उक्त तीनों रीतियों का विवेचन किया जायगा।

१–परमेश्वर की शक्ति के आधार पर किया गया मायावाद का प्रतिपादन

शांकर-दर्शन के अनुसार परमार्थ रूप से केवल ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्म अव्यवहार्य, समस्त प्रपंच से रहित, शिव-स्वरूप एवं अद्वैत सत्य है।[1] ब्रह्म जन्म-मरण के बन्धन से परे है। न वह उत्पन्न हुआ है और न उत्पादक है। अतएव अज, नित्य, शाश्वत एवं सनातन है।[2] शुद्ध निर्गुण ब्रह्म में न कर्तृत्व की शक्ति है न नियामकत्व की। अत: अद्वैत सिद्धि के मण्डन के लिये जगत् के मायिक स्वरूप के सिद्ध करने के अर्थ अद्वैती दार्शनिकों ने माया का आश्रय लिया है। शंकराचार्य प्रभृति इन दार्शनिकों ने माया का प्रतिपादन परमेश्वर की शक्ति के रूप में किया है। परमेश्वर की शक्ति रूप माया अव्यक्ता, अनादि, त्रिगुणात्मिका एवं पराशक्ति है। समस्त प्रपंच रूप जगत् की उत्पत्ति की कारणभूत यही ब्रह्म की शक्ति है।[3] आचार्य शंकर ने इसी अव्यक्त शक्ति को संसार का बीज स्वीकार किया है।[4]

---

१. माण्डूक्योपनिषद् १२

२. नजायते म्रियते वाविपश्चिचन्नायं कुतश्चिन्न वभूवकश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणां न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ कठ० उ० २–१८

३. विवेक चूड़ामणि, ४. ब्र० स० शा० भा० १–४–३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माया शक्ति के द्वारा ही ब्रह्म में कर्तृत्व शक्ति का समावेश होता है। माया से युक्त ब्रह्म की ईश्वरीय संज्ञा है। यही ईश्वर 'एकोहं बहुस्याम्' के अनुरूप जगत् के नाना रूपों में वर्तमान रहता है। ब्रह्म की माया शक्ति आवरण के रूप में सत्य पर अवगुण्ठन डाल देती है। डा० हडसन ने भी यही कहा है कि प्रकृति ईश्वर पर आवरण डालने वाली है[1]। ज्यों-ज्यों हम भौतिक प्रकृति का अध्ययन करते हैं त्यों-त्यों ईश्वर हमसे दूर भागता है। विक्षेपशक्ति सृष्टि का निर्माण करती है। इस प्रकार समस्त जगत् परमेश्वर की मायाशक्ति का ही परिणाम है यह शक्ति सदसत् से विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय है। मायावाद के शक्ति पर आधारित इस प्रतिपादन का यही दृष्टिकोण है।

२—अविद्या के आधार पर किया गया मायावाद का प्रतिपादन

'अविद्या' की विचारधारा शंकराचार्य के मायावाद का प्रमुख विचारधारा है। उपनिषद्-साहित्य में अनेक स्थानों पर अविद्या की चर्चा की गई है। उपनिषद्वर्ती अविद्या का स्वरूप अज्ञान का स्वरूप है।[2] अविद्या के कारण जीव अपने आप को देवता, राजा एवं सर्वज्ञ समझने लगता है।[3] विद्या एवं अविद्या दोनों में अविद्या ही बलवती है। विद्या ज्ञान का स्वरूप है और अविद्या अज्ञान का।[4] परब्रह्म परमात्मा के साक्षात्कार में अविद्या ग्रन्थि ही बाधक है। अविद्या ग्रन्थि के खुल जाने पर स्वतः परब्रह्म का बोध हो जाता है।[5] इस स्थिति में माया का मिथ्यात्व सिद्ध हो जाता है। अविद्या में फंसे हुए जीव अपने आपको उसी प्रकार धीर एवं पंडित मानते हैं जिस प्रकार अंधे के द्वारा निर्दिष्ट अन्ध पुरुष अपने आप को धीर मानता है। शंकराचार्य ने अविद्या का अनिर्वचनीया बीजशक्ति के रूप में विकास किया है। शंकराचार्य के कथनानुसार अविद्या न सत् है न असत् है और न सत् असत् दोनों ही है वह न भावरूप है, न अभावरूप है और न भावाभावरूप है। अतएव सत् एवं असत् से विलक्षण होने के कारण माया को एवं अविद्या को अनिर्वचनीय कहा है। मुण्डकोपनिषत् में विद्या के परा एवं अपरा दो भेद किये गये हैं। ब्रह्मवेत्ता परा एवं अपरा दोनों का ही व्याख्यान करते हैं।[6] अपरा विद्या ही

1. Hudson, Future Life, PP- 66, 67.
२. राधाकृष्णन्, इण्डियन फिलासफी, द्वितीय भाग, पृ० ५७५।
३. बृ० उ० ४-३-२०,
४ छा० उ० १-१-१०
५. मु० उ० २-१-१०,
६. मु० उ० १-१-४, १-१-५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अविद्या है।[१] शंकराचार्य ज्ञान के भेद करने के पक्ष में नहीं हैं। उनके मत में ज्ञान एक ही है। वह अद्वैत सत्य है। इस सम्बन्ध में डा० थीबो का कथन है कि यद्यपि ब्रह्म का सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों में वर्णन किया गया है परन्तु उसका तात्पर्य ज्ञान के द्विविध स्वरूप से कदापि नहीं है। अनेक रूपों में साक्षात्कृत होने पर भी ब्रह्मज्ञान एक ही है।[२]

ब्रह्मविषयिणी अविद्या जीवाश्रया है। माया का सम्बन्ध समष्टि से है परन्तु इसके विपरीत अविद्या व्यष्टि से सम्बन्धित है। आरम्भ में अविद्या का स्वरूप भावात्मक मात्र था। कालान्तर में इसमें विषयता का आरोप कर दिया गया। व्यावहारिक जगत् की सत्ता के सिद्ध करने के लिये ही वेदान्तियों ने इसे भावरूप माना है।[3] अविद्या की विषयता के कारण ही उसकी शक्ति के आवरण और विक्षेप दो रूप पाये जाते हैं। अविद्या आत्मा की वह शक्ति है जिस पर समस्त प्रपंच रूप जगत् आधारित है। समस्त देहादि संघात अविद्या के द्वारा ही प्रस्थापित है।[४] शंकराचार्य का कथन है कि जिस प्रकार नट रंगमंच पर अनेक रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार अविद्या के द्वारा उत्पत्ति, विनाश आदि धर्मों के द्वारा एक ही ब्रह्म के अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं।[५] शंकराचार्य अविद्या की स्थिति नैसर्गिकी मानते हैं। नैसर्गिकी अविद्या में ही समस्त लौकिक एवं वैदिक व्यवहार उत्पन्न होते हैं[६] क्रिया, कारक एवं फल की भेद बुद्धि का कारण भी अविद्या ही है। 'मैं (कर्ता) अमुक फल के लिये अमुक कर्म करूंगा' इस प्रकार की अविद्या अनादि काल से चली आ रही है।[७] अविद्या अनादि है। इसका अधिष्ठान आत्मा है। यही अविद्या आत्मा को अपने अज्ञानमय पर्दे से आवृत कर लेती है। अविद्या को अस्वीकार करना अद्वैत ज्ञान में बाधा उत्पन्न करना है। बिना अविद्या के अद्वैत ब्रह्म की सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिये अविद्या को न मानना एक प्रकार से

1. All Apara Vidya is Avidya.
—Studies in Vedanta, Page 174.
(Taraporewala, Bombay, 1924).
2. Dr, Thibout, S.B.E., Introduction, Vol. XXXIV P. CXVI.
3. 'Studies in Vedanta' Page 176.
४. संघाता स्वप्नवत् सर्वे आत्ममाया विसर्जिताः। मा० का० ३-१०.
५. शा० भा० गीता १८-४८, ६. ब्र० सू० शा० भा० ३-२-१५,
७, शा० भा० गीता १८-६६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मा की सत्ता को ही अस्वीकार करना है।[1] जगत के नाम रूपात्मक भेद का कारण अविद्या ही है। शंकराचार्य ने नाम रूपात्मक जगत् को अविद्या के द्वारा ही उपस्थापित सिद्ध किया है।[2]

इस प्रकार मायावाद के प्रतिपादन की दृष्टि से अविद्या का प्रमुख महत्त्व है। अविद्या के द्वारा ही विद्या के महत्त्व को समझा जा सकता है। अविद्या के महत्त्वज्ञान के लिये बीजगणित का निम्नलिखित सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा :—

$$x^2 + २x = २४$$

यहां '१' को यदि दोनों ओर से मिला दिया जाय तो परिणाम होगा—

$$\therefore \quad x^2 + २x + १ = २४ + १ = २५$$
$$\therefore \quad (x+१)^2 = ५^2$$
$$\therefore \quad x + १ = ५$$
$$\therefore \quad x = ५ - १ = ४$$

बीजगणित का यह प्रयास X (एक्स) के अज्ञात महत्त्व के अन्वेषण का प्रयास है। X (एक्स) के अज्ञात महत्त्व के ज्ञान के लिये ही '१' अंक को दोनों ओर जोड़ा गया था। इसी प्रकार वेदान्त में भी अज्ञात आत्मा के ज्ञान के लिये अविद्या के द्वारा अनेक मिथ्या एवं अनात्म विषयों का अध्यारोप किया जाता है[3] सन्त रामदास ने अध्यारोपवाद के इस सिद्धान्त का उल्लेख अपने दासबोध में किया

---

1. "We cannot deny the anadi (immemorial) avidya which ou immediate conciousness vouches for as something, which, while depending on the existence of the inward self, hides and obscures the intelligence and bliss of the self. Were we to deny this, we should have to deny the inward self as well", (Indian Thought, 1907 edited by Dr. Thibout and Ganganath Jha. Allahabad).

२. शा० भा० मा० का० ३–१०

३. के० कीर्तिकर, 'स्टडीज इन वेदान्त'
(ग्रीक दर्शन में यह सिद्धान्त 'Dialectics' के रूप में प्रसिद्ध है, दार्शनिक समस्या के लिये समीकरण के इस सिद्धान्त का प्रयोग सर्वप्रथम Zeno ने किया था। Socrates और Plato ने इसका विशेष विकास किया था)
विशेष दिखये—H. G. Lewis Biographical History of Philosophy, Page 73 (Routledge, 1897).

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। उन्होंने कहा है कि पहले मिथ्या को लो फिर ज्ञान को इसे भी छोड़ दो, फिर इसके फल में ही तुम्हें सत्य की प्राप्ति होगी।[1]

अविद्या के उक्त विवेचन से यह सिद्ध है कि मायावाद के प्रतिपादन में अविद्या के सिद्धान्त का सर्वाधिक योग है।

(३) मिथ्यात्त्व के आधार पर किया गया मायावाद का प्रतिपादन

विषय (जड़ जगत्) एवं विषयी (आत्मा) के स्वभाव एवं धर्मों में पूर्णतया वैषम्य है। एक प्रकाश स्वरूप है तो दूसरा अन्धकार स्वरूप है। परन्तु इतरेतराध्यास के कारण उत्पन्न मिथ्या ज्ञान ही समस्त नैसर्गिक लोकव्यवहार का निमित्त है।[2] माया और मायिक जगत के मिथ्यात्त्व का प्रतिपादन शांकर-मायावाद का प्रमुख विषय है। मिथ्या का शंकराचार्याभिमत तात्पर्य अलीक अथवा शशशृङ्ग से न होकर अनिर्वचनीयत्त्व से है। अनिर्वचनीय पदार्थ न परमार्थ दृष्टि से सत् है और न अलीक दृष्टि से असत्। इस प्रकार सद् एवं असद् से विलक्षण होने के कारण ही मिथ्या को अनिर्वचनीय कहा गया है। शुक्ति और रजत के दृष्टान्त से यह विषय और भी स्पष्ट हो जायेगा। जिस काल में शुक्ति में रजत का भान होता है उस काल में रजत की प्रातिभासिक सत्ता होती है परन्तु शुक्ति ज्ञान रूप सत्य ज्ञान होने रजत की स्वतः मिथ्या सिद्धि हो जाती है। प्रातिभासिक सत्ता में जो रजत ज्ञान सत् था वही शुक्ति ज्ञान रूप सत्य ज्ञान हो जाने पर असत् सिद्ध हो जाता है। प्रातिभासिक सत्ता में जो रजत सत् है पारमार्थिक सत्ता में वही असत् है। सत् एवं असत् दोनों ही विरोधी लक्षणों के चरितार्थ होने के कारण रजत रूप मिथ्या ज्ञान को अनिर्वचनीय कहा गया है। व्यावहारिक सत्ता के अनुसार दृश्य जगत के सम्बन्ध में भी यही बात है। व्यवहार रूप से दृश्यमान जगत को पूर्णतया असत् नहीं कहा जा सकता क्योंकि जगत् की व्यावहारिक सत्ता प्रत्यक्ष रूप से अनुभूत होने के कारण स्वीकार ही है। इस स्थिति में जगत् सत् है परन्तु जगत् को पूर्णतया सत् नहीं कहा जा सकता। परमार्थ दशा में ब्रह्मज्ञान रूप सत्य ज्ञान होने पर जगत् असत् सिद्ध हो जाता है। परन्तु व्यावहारिक जगत् शशशृङ्ग अथवा आकाश सेतु के सदृश मिथ्या नहीं है।[3] अतः मायावाद के अनुसार उक्त दृष्टि से मिथ्या एवं मायिक जगत् का स्वरूप अनिर्वचनीय है।

---

१. आधीं मिथ्या उभारावें, मग तें ओलखोन सांडावें। पुढे सत्यतें स्वभावें। अन्तरी वाणों।
दासबोध—७-३, (मराठी टैक्स्ट्स)

२. ब्र० सू० शा० भा० १-१-१

३. दासगुप्ता, इण्डियन फिलासफी, भाग, १, पृष्ठ ४४३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अद्वैत सिद्धिकार मधुसूदन सरस्वती ने मिथ्यात्व का प्रतिपादन पांच प्रकार से किया है।[1] मधुसूदन सरस्वती ने भी मिथ्यात्व से अनिर्वचनीयत्व का ही भाव लिया है।[2]

अद्वैत सिद्धि के लिये जगन्मिथ्यात्व के प्रतिपादन के साथ-साथ प्रतिपादित मिथ्यात्व का मिथ्यात्व प्रतिपादन भी अनिवार्य रूप से अपेक्षित है। यदि मिथ्यात्व का मिथ्यात्व प्रतिपादन नहीं किया जायगा तो दो सत्तायें स्वीकार करनी पड़ेंगी। एक ब्रह्म और दूसरी मिथ्या जगत्। इस प्रकार दो सत्ताओं के सिद्ध करने से अद्वैत साधना मे बाधा उत्पन्न हो जायेगी।[3] इसलिये मिथ्या जगत् के मिथ्यात्व का मिथ्यात्व प्रतिपादन अद्वैत सिद्धि के लिए परम अपेक्षित है। जब जगत् मिथ्या है तो उसका मिथ्या प्रतिपादन भी मिथ्या ही है। ब्रह्मज्ञानावस्था में जगत् की मिथ्यात्व सिद्धि के साथ-साथ उस मिथ्यात्व की मिथ्यात्व सिद्धि भी स्वभावतः ही प्रतिपादित हो जाती है। किसी वस्तु की सत्ता होने पर ही उस वस्तु का निषेध प्रतिषेध संभव होता है। परन्तु जब कोई वस्तु मिथ्या है तो उसका मिथ्यात्व प्रतिपादन भी मिथ्या ही सिद्ध होगा। प्रपंच रूप जगत् की मिथ्या सिद्धि भी जगत् का ही एक अंश है। अतः जगत् के मिथ्या होने पर इससे सम्बन्धित मिथ्या प्रतिपादन भी मिथ्या ही जानना चाहिये।[4]

मिथ्यात्व के उपर्युक्त प्रतिपादन में विपक्षी को एक आपत्ति है कि मिथ्यात्व उक्त मिथ्यात्व प्रतिपादन से प्रपंच की सत्य सिद्धि होती है, अतः मिथ्यात्व का पुनः

---

१. (क) अतएव असत्वात्यन्ताभाववत्वे सत्यसत्वात्यन्ताभाव रूपं विशिष्टं साध्यम् अद्वैत सिद्धि पृष्ठ ७९ (निर्णय सागर)

(ख) प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिका निषेध प्रतियोगित्वं वा मिथ्यात्वम्, वही पृ० ९४

(ग) ज्ञान निवर्त्यत्वं वा मिथ्यात्वम्। वही पृ० १६०

(घ) स्वाश्रय निष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगित्वं वा मिथ्यात्वम्। वही पृ० १८२

(ङ) सदविविक्तत्वं वा मिथ्यात्वम्। वही पृ० १९५

२. अद्वैत सिद्धि पृ० ७९।

३ For if the negation is not false then it remains as an entity diffierence from Brahman and hence the unqualified monism fails. Dasgupta, Indian Philosophy, Vol. I, P.444.

४. इण्डियन फिलासफी (दासगुप्ता पृ० ४४४ (प्रथम भाग)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिथ्यात्त्व प्रतिपादन अद्वैत सिद्धि में साधक न होकर बाधक ही है।[1] विपक्षी का अपने मत की पुष्टि में कथन है कि एक धर्मी में प्रसक्त दो विरोधी धर्मों में से एक की मिथ्यात्त्व सिद्धि दूसरे की सत्य सिद्धि को सिद्ध करेगी। इसलिये प्रपंच रूप धर्मों में मिथ्यात्त्व प्रतिपादन से प्रपंच की सत्यता ही सिद्ध होती है।[2] क्योंकि प्रपंच में सत्य भी प्रसक्त है। इस प्रकार विपक्षी का तर्क है कि जिस प्रकार जगत् को केवल मिथ्या सिद्धि अद्वैत सिद्धि में मिथ्यात्त्व के मिथ्या प्रतिपादन के बिना बाधक है उसी प्रकार मिथ्यात्त्व का मिथ्या प्रतिपादन प्रपंच की सत्य सिद्धि का कारण होने से अद्वैत सिद्धि में बाधक ही है। इस प्रकार दोनों प्रकार से ही अद्वैत सिद्धि में बाधा आती है। विपक्षी का उक्त मत निराधार एवं सारहीन है। यह तर्क कि एक धर्मी में प्रसक्त दो धर्मों में से एक के मिथ्या सिद्ध होने पर दूसरे की सत्यता सिद्ध होती है, निराधार है। एक गजरूप धर्मी में अश्वत्त्व एवं गोत्त्व रूप दो विरोधी धर्मों में से एक धर्म अर्थात् अश्वत्त्व का अत्यन्ताभाव होने पर भी अपर अर्थात् गोत्त्व रूप धर्म की सत्यता सिद्ध नहीं होती। गज धर्मी में गोत्त्व एवं आश्वत्त्व दोनों का ही अत्यन्ताभाव है। अतः दो विरोधी धर्मों में से एक का मिथ्या सिद्ध होना दूसरे की सत्यता सिद्ध नहीं करता। इस सम्बन्ध में एक विचारणीय बात यह है कि मिथ्या एवं सत्य दो विरोधी सिद्धान्त न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। जगत् का मिथ्या सिद्ध होना ब्रह्म की सत्य सिद्धि का पूरक है एवं ब्रह्म की सत्यत्त्व सिद्धि जगन्मिथ्यात्त्व के सिद्धान्त की पूरक है। सत्यत्त्व एवं मिथ्यात्त्व की अद्वैत साधना में स्वीकार्य है।[3] इस प्रकार प्रपंच और मिथ्यात्त्व दोनों का ही मिथ्यात्त्व प्रतिपादन अद्वैत सिद्धि का मूल है।

शंकराचार्य के मायावाद का संक्षिप्त रूप और उसके विविध पक्ष

शंकराचार्य के पूर्ववर्ती दार्शनिक साहित्य में वर्तमान माया सम्बन्धी संकेतों को शांकर-मायावाद की विचारधारा के सूत्रों का ही रूप दिया जा सकता है। इस

१. ननुउक्त मिथ्यात्त्वस्य मिथ्यात्त्वे प्रपंच सत्यत्त्वापातः, एकस्मिन् धर्मिणि प्रसक्तयोर्विरुद्धधर्मयो एक मिथ्यात्त्वे अपरसत्यत्त्व नियमात् मिथ्यात्त्व सत्यत्त्वे च तद्वदेव प्रपंच सत्यत्त्वापतेः। अद्वैत सिद्धि पृ० २०७।

२. ननुप्रपंच मिथ्यात्त्वं यदि मिथ्यास्यात्तर्हि प्रपंचः सत्यः स्यात्। विट्ठलेशोपाध्यायी पृ० २०७ (निर्णय सागर)

३. अद्वैत सिद्धि पृ० २२०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय पर विवेचन किया जा चुका है। शंकराचार्य के मायावाद के अध्ययन की दिशा स्वतन्त्र एवं मौलिक है। शंकराचार्य ने माया के लिये अविद्या शब्द का प्रयोग भी किया है। आचार्य ने अविद्या के अर्थ में ही मायावाद का प्रतिपादन किया है। शंकराचार्य की रचनाओं में माया एवं अविद्या का भेद स्पष्ट नहीं है। शंकराचार्य ने अपने शांकरभाष्य में अनेक स्थलों पर माया के अर्थ में ही अविद्या का प्रयोग किया है।[१] शंकर परवर्ती वेदान्त में अविद्या एवं माया के भेद का स्पष्टीकरण दृष्टव्य है। शंकर परवर्ती वेदान्त में अविद्या का 'जीवाश्रया' कहकर संकेत किया गया है।[२] जो भी हो दोनों ही दिशाओं में शांकर-मायावाद की पुष्टि सम्भव है। शंकराचार्य की माया परमात्मा की शक्ति है। यह अनिर्वचनीय है। महादेवशास्त्री का कथन है कि माया व्यावहारिक सत्ता का एक ऐसा नाम धेय है जो वर्ण्य विषय के बाहर है।[3] सुरेश्वराचार्य ने भी माया को युक्ति के द्वारा असिद्ध ही बतलाया है।[४] शिष्य, गुरु, पिता, पुत्रादिगत समस्त भेद पुरुष को माया के ही कारण दिखाई पड़ते हैं। जड़ होने के कारण माया जड़ जगत् की उत्पत्ति करती है। माया परमात्मा से न भिन्न है और न अभिन्न। विरोध होने के कारण उसे भिन्नाभिन्न उभय रूप भी नहीं कहा जा सकता। माया की तुलना उस छाया से की जा सकती है जिसके कारण दिवान्ध पुरुष सूर्य के प्रकाश दर्शन में असमर्थ रहते हैं। यहां यह विचारणीय है कि दिवान्ध पुरुष को सूर्य का प्रकाश प्रकाश न दीखकर छाया मात्र ही दिखाई पड़ता है।[५] इस प्रकार माया की सत्ता परमेश्वर से पृथक नहीं है। शंकराचार्य ने कहा है कि परमेश्वर की मायाशक्ति अव्यक्त, अनादि एवं त्रिगुणात्मिका है। समस्त प्रपंच रूप जगत् का कारण भी यही माया है।[६] जब तक शुद्ध ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता तब तक अज्ञानवश मनुष्य विलासिनी वैश्या के चरितों के समान माया से आकृष्ट होकर वंचित होता है। वैश्या रूपा माया अपने मिथ्या विलासों से अज्ञानी पुरुष को ठगती रहती है। 'याचित मण्डन न्याय' से माया का स्वरूप और भी स्पष्ट हो जाता है। इस न्याय के अनुसार जिस प्रकार कि कोई दरिद्र स्त्री किसी धनिक के द्वारा आमंत्रित होने पर याचित वस्त्राभूषणों को धारण करके

---

१. ब्र० सू० शा० भा० २–१–१४, २–१–१८।

२. वेदांत सिद्धान्त मुक्तावली—३, कलकत्ता १९३५।

3. A. Mahadeva Shastri, Vedanta Doctrine of Shai Shankaracharya, Page IXVII, IInd Edition (Esplanade, Madras 1920).

४. मानसोल्लास १३। ५. मानसोल्लास १४।

६. यह विवेक चूड़ामणि १०८, अद्वैताश्रम, अल्मोड़ा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस धनिक के घर जाती है और लोग उस दरिद्र स्त्री को भी सम्पन्न समझते हैं। उसी प्रकार सत्य ब्रह्म के सम्पर्क के कारण माया में भी सत्यता का आरोप हो जाता है। बन्धन एवं मोक्ष की कारणभूता माया अज्ञान की जननी है। अज्ञानी पुरुष माया के बन्धन में फंसे रहने के कारण मुक्त नहीं हो पाते। वास्तव में माया का मिथ्यात्व ज्ञान होने के उपरान्त बन्धन और मोक्ष का प्रश्न उपस्थित नहीं होता। शंकराचार्य का कथन है कि मिथ्या अभिमान के कारण ही बन्धनजन्य दुःखों की सत्ता है।[1] जिस प्रकार धूम्र, घन, धूलि एवं नीहारादि से अस्पृष्ट सूर्य आवृत सा प्रतीत होता है उसी प्रकार माया भी आत्मा को आवृत किये रहती है। मायापाश से मुक्ति होने पर ही शुद्धाद्वैत ब्रह्म का बोध होता है।

मायावाद सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म के दो भेद हैं। एक सगुण ब्रह्म और दूसरा निर्गुण ब्रह्म। माया विशिष्ट ब्रह्म सगुण ब्रह्म है और मायोपाधि से रहित ब्रह्म निर्गुण ब्रह्म है। सगुण ब्रह्म की ही ईश्वर संज्ञा है। अविद्या रूप उपाधि के परिच्छेद से ही ईश्वर की ईश्वरता, सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तिमत्ता सिद्ध होती है। परमार्थ रूप से तो विद्या द्वारा सर्व उपाधियों से रहित आत्मा में ईशितृ, ईशितव्य एवं सर्वज्ञत्वादि व्यवहार उत्पन्न नहीं होते।[2] एक ही कूटस्थ एवं नित्य परमेश्वर माया के द्वारा मायावी होने के कारण अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होता है।[3] श्वेताश्वतरोपनिषद् (४–१०) में भी परमेश्वर को मायी कहा गया है। परमेश्वर की माया ही जगत् के नाना रूपों का कारण है, जिस प्रकार कोई बालक क्रीड़ा करते समय चक्कर लगाते हुए संसार को चक्कर खाते हुए एवं नभस्थल को शतों चन्द्रमाओं से युक्त देखता है उसी प्रकार माया के कारण वासनावशात् भ्रान्त जीव जगत् के नाना रूपों को देखता है। परन्तु मायी ईश्वर माया के बन्धन से मुक्त है। मायावी परमेश्वर स्वयं प्रसारित माया का अनायास ही उपसंहार करता है। परमार्थ रूप में ईश्वर न कर्ता है न लोक कर्मों का स्रष्टा है और न कर्म फल का संयोक्ता। परमेश्वर किसी के पाप-पुण्य को भी ग्रहण नहीं करता।[4]

मायावाद के अध्ययन के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि मायावाद के अनुसार जगत् विज्ञानवादी के दृष्टिकोण के अनुरूप विज्ञान अथवा स्वप्न नहीं है। इसीलिये

---

१. मिथ्याभिमान भ्रमनिमित्त एव दुःखानुभवः, ब्र० सू० शा० भा० २–३–३६।

२. ब्र० सू० शा० भा० २–१–१४।

३ एकस्त्वपरमेश्वरः कूटस्थ नित्यो विज्ञान धातुरविद्यया मायया मायाविवदनेकधा विभाव्यते, नान्यो विज्ञानधातुरस्ति। ब्र० सू० शा० भा० १–३–१९।

४. गीता ५–१४, १५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मायावादी शंकराचार्य ने जगत् को स्वप्न सिद्ध करने वाले विज्ञानवादी[1] के मत का अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में खण्डन किया है।[2] अतः इस प्रकार शांकर-मायावाद के अनुसार जगत् की व्यावहारिक सत्ता स्थापित की गई है।

शांकर-मायावाद का विवेचन करते समय माया के विविध पक्ष दृष्टि-पथ में आते हैं। माया का एक पक्ष शक्ति है तो दूसरा विषयत्व। माया की आवरण और विक्षेप शक्तियां इन पक्षों की प्रत्यक्ष समर्थक हैं। मायावाद के अनुसार पारमार्थिक दृष्टि से यदि यह माया असत् है तो व्यावहारिक दृष्टि से सत् है। माया का यह व्यावहारिक पक्ष अत्यन्त बलवान् है। माया का भावरूप होना भी मायावाद की प्रमुख विशेषता है। शांकर-मायावाद की विचारधारा के अनुरूप ब्रह्म अधिष्ठान एवं अविद्या रूप जगत् अध्यस्त है। मायावाद के सर्वांगीण अध्ययन के दृष्टिकोण से अधिष्ठान और अध्यस्त पक्षों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहां इन दोनों का पृथक् रूप से विवेचन किया जायगा।

अधिष्ठान की दृष्टि से मायावाद का अध्ययन

समस्त मायिक प्रपंच की सत्ता बिना आधार के असम्भव है। इसीलिये शांकर-मायावाद के अनुसार ब्रह्म प्रपंच रूप जगत् का अधिष्ठान है। शंकराचार्य ने अधिष्ठानवाद एवं अध्यासवाद के आधार पर ही मायावाद का प्रतिपादन किया है।[3] अनादि सनातनी एवं यत्किंचित् रूपा माया वन्ध्यापुत्र के समान मिथ्या नहीं है। वन्ध्यापुत्र निराधार है परन्तु इसके विपरीत माया साधार है। माया के आश्रयहीन अथवा अपदाश्रित मान लेने पर ब्रह्म की सत्यता सिद्ध नहीं हो सकती।[4] व्यावहारिक दृष्टि से सत् माया के साधिष्ठाना होने की बात ही क्या! प्रातिभासिक रूप से सत् मृगतृष्णिका आदि मिथ्या पदार्थ भी बिना आश्रय के नहीं रह सकते।[5] इसलिए समस्त मायिक जगत्का अधिष्ठान सद्ब्रह्म है। चेतनाधिष्ठित अचेतन भी समस्त प्रपंच की उत्पत्ति का कारण है।[6] शंकराचार्य का

---

१. ब्र० सू० शा० भा० २-२-२४। २. ब्र० सू० शा० भा० २-२-३०।

३. ब्र० सू० शा० भा० १-१-१।

4. If the world be regarded as baseless, as not rooted in any reality, as having it's origin in nonbeing, then we shall have to repudiate all reality, even that of Brahman.

Radhakrishnan, Indian, Philosophy, Vol. II, P. 583.

५. न हि मृगतृष्णिकादयोपि निरास्पदा भवन्ति। शा० भा० गीता १३-१४

६. ब्र० सू० शा० भा० १-२-२१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कथन है कि सत्य एवं अनृत दोनों के ही द्वारा समस्त लौकिक व्यवहार चलते हैं।[१] सत् ब्रह्म में ही असत् एवं अनात्म प्रपंच अध्यस्त होता है। सत् ब्रह्म पर आधारित माया उसी प्रकार अध्यस्त है जिस प्रकार अविवेकी जन अप्रत्यक्ष आकाश में भी श्यामत्त्व, शुक्लत्त्व एवं नीलत्त्व का आरोप कर लेते हैं।[२] इस प्रकार प्रत्येकात्मा में अनात्म प्रपंच का अध्यस्त होना स्वाभाविक ही है।[३] इस अध्यास को ही शंकराचार्य ने अविद्या कहा है।[४] अविद्या ही समस्त द्वैत प्रपंच का मूल है। एक ब्रह्म में ही अविद्या के द्वारा अनेक प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है। ब्रह्म ही समस्त मायिक सृष्टि का अधिष्ठान है। जिस प्रकार स्वप्न में एक आत्मा में रथ, अश्व एवं मार्ग आदि का अध्यारोप होता है परन्तु उनकी वास्तविक सत्ता नहीं होती उसी प्रकार एक ब्रह्म में विवर्त के द्वारा अनेकाकारा सृष्टि उत्पन्न होती है।[५] वाचस्पति मिश्र ने इस सिद्धान्त को मायावाद के सृष्टिकरण में विशेष रूप से सहायक माना है।[६] अधिष्ठान के बिना स्वीकार किये इन्द्रियों के व्यवहार भी सिद्ध नहीं हो सकते।[७] इस सम्बन्ध में वेदान्त परिभाषाकार का कथन सत्य ही है कि अधिष्ठान सत्ता के अतिरिक्त आरोपित सत्ता को स्वीकार नहीं किया जा सकता।[८]

अद्वैत की प्रतिपादक—'आत्मैवेद सर्वम्' 'अपूर्वो न परो नन्तरो वाह्यः, 'सवाह्याभ्यन्तरो ह्यजः' 'अजरो मरो मृतो भय एक एवाद्वयः,' 'प्रभृति श्रुतियां आत्मा के एकत्व को ही सिद्ध करती हैं। परन्तु माया आत्मा में भी विकल्प की जननी है। इस माया के द्वारा स्वयं आत्मा भी मोहित हो जाता है।[९] श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण ने भी अपनी माया को 'दुरत्यया' कहा है।[१०] इस माया से वे ही तरते हैं

---

१. सत्यानृते मिथुनीकृत्याहमिदं ममेदमिति नैसर्गिकोम् लोकव्यवहार, ब्र० सू० शा० भा० १-१-१

२. अप्रत्यक्षेपिह्याकाशे वालास्तलमलिनताद्यध्यस्यन्ति। ब्र० सू० शा० भा० १-१-१।

३. एवमविरुद्धः प्रत्यगात्मन्यप्यनात्माध्यासः। ब्र० सू० शा० भा० १-१-१

४. ब्र० सू० शा० भा० १-१-१

५. तथैकस्मिन्नपिब्रह्मणि स्वरूपानुपमर्देनैवानेकाकारा सृष्टिर्भविष्यतीति।

ब्र० सू० शा० भा० २-१-२८

६. अनेनस्फुटितो मायावादः स्वप्नदृगात्माहि मनसैवस्वरूपानुपमर्देन रथादीन् सृजति।

भामती २-१-२८।

७. नचाधिष्ठानमन्तरेणेन्द्रियाणां व्यवहारः सम्भवति। ब्र० सू० शा० भा० १-१-१

८. अधिष्ठान सत्तातिरिक्तायाः आरोपित सत्ताया अनंगीकारात्। वेदान्त परिभाषा प्रथम परिच्छेद।

९. शा० भा० मा० का० २-१९

१०. गीता ७-१४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो माया के अधिष्ठान मायावी परमेश्वर को जान लेते हैं। परमार्थरूप से ईश्वर अजन्मा एवं अव्यय आत्मा है परन्तु त्रिगुणात्मिका माया को वश में करके अपनी माया के द्वारा ही जन्म ग्रहण करता सा प्रतीत होता है।[१] जिस प्रकार भ्रान्ति के कारण रज्जु रूप अधिष्ठान में सर्प का दर्शन होता है उसी प्रकार अविद्या के द्वारा आत्मा का जगत् रूप में दर्शन होता है। शंकराचार्य ने कहा है कि मूढ़जन आत्मा में, रज्जु में सर्पादि की विकल्पना के समान ही जगत् की कल्पना करते हैं। विवेकी पुरुष के लिए जगत् की कल्पना आत्मा से उसी प्रकार पृथक नहीं है जिस प्रकार भ्रान्तिरहित पुरुष के लिये सर्प की पृथक् सत्ता नहीं होती।[2] जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब रहता है उसी प्रकार पापादि एवं दोषों से वर्जित पूर्णानन्द स्वरूप शुद्ध ब्रह्म में समस्त प्रपंच अध्यस्त है।[3] जिस प्रकार प्रतिबिम्ब रूप से भासमान दर्पण प्रतिबिम्ब के मिथ्या होने के कारण अपने स्वरूप को नहीं त्यागता उसी प्रकार जगदाकार रूप में दृश्यमान जगत् के मिथ्या होने के कारण ब्रह्म भी अपने स्वरूप का त्याग नहीं करता। अधिष्ठान रूप से वर्तमान ब्रह्म में विश्वात्मकत्व होने पर ब्रह्म की अखण्डता में बाधा नहीं पड़ती। समस्त जगत् प्रतिबिम्ब के सदृश ही मायामात्र है। जड जगत् के उपादान कारणत्व का ब्रह्म में अभाव होने के कारण माया ही जगत् का उपादान कारण है। अधिष्ठान मात्र होने के कारण ही ब्रह्म जगत् का कारण है।[४] समस्त जगत् के अध्यास मात्र होने के कारण अद्वैत सत्य की स्थापना में भी बाधा नहीं पड़ती। अधिष्ठान का साक्षात्कार होने पर अध्यस्यमान जगत् का तुरन्त बाध हो जाता है।

माया ब्रह्म की शक्ति है। द्वैत जगत् की समस्त सत्ता माया की सत्ता है। जगत् की सत्ता ब्रह्म से पृथक मानना ही भ्रान्ति है। समस्त दृश्यमाण एवं श्रूयमाण जगत् ब्रह्म में ही अधिष्ठित है। इसलिये अधिष्ठान एवं अध्यस्त की पृथक चर्चा भी कल्पनामात्र ही है। अधिष्ठान स्वरूप ही अध्यस्त स्वरूप है। शंकराचार्य ने लिखा है कि ब्रह्म ही विश्व है—इस अथर्ववेद निष्ठ श्रोती वाणी के अनुसार यह समस्त विश्व ब्रह्म ही है। इसलिये अधिष्ठान रूप ब्रह्म में आरोपित विश्व की सत्ता ब्रह्म से भिन्न नहीं है।[५] परमार्थ रूप में न विश्व परमात्मा में अध्यस्त है और

---

१. शा० भा० गीता ४–६ २. शा० भा० मा० का० २–३०
३. वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली २४।
४. अधिष्ठानत्व मात्रेण ब्रह्मकारणं गीयते। वे० सि० मु० ४६
५. विवेक चूड़ामणि २३१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न परमात्मा ही समस्त भूतों में अवस्थित है। संसर्ग रहित परमात्मा का विश्व में आधेय भाव से स्थित होना उचित नहीं है।[१] परमात्मा से पृथक् जगत् की सत्ता आकाश के नीलिमा आदि गुणों के समान मृषा कल्पना है। आरोपित जगत् की सत्ता अधिष्ठान ब्रह्म से अतिरिक्त नहीं है। अधिष्ठान ब्रह्म ही भ्रम के कारण जगत् रूप में पृथक भासित होता है। जिस प्रकार भ्रान्ति के कारण शुक्ति की सत्य प्रतीति न होकर रजत की प्रतीति होती है उसी प्रकार ब्रह्म की ही जगत् रूप में पृथक प्रतीति होती है। शंकराचार्य का कथन है कि पण्डितजन आरोप्यमान जगत् को अधिष्ठानरूप ब्रह्म से भिन्न नहीं मानते। रज्जु में सर्प आदि की कल्पना की तरह अधिष्ठान से पृथक जगत् की कल्पना भ्रान्ति मात्र है।[२] इस प्रकार अधिष्ठान-वाद के अनुसार मायिक प्रपंच अध्यस्त एवं ब्रह्म अधिष्ठान है।

अध्यस्त तत्त्व

अविद्या का ही दूसरा नाम अध्यास है।[3] किसी वस्तु में अवर्तमान वस्तु के आरोप को अध्यास कहते हैं। अध्यास के ही द्वारा समस्त लौकिक व्यवहार उत्पन्न होता है। सत्यासत्य उभयरूप पदार्थ की सृष्टि का कारण अध्यास ही है। डा० एम० के० दास का कथन है कि अध्यासवाद के सिद्धान्त के आधार पर शंकराचार्य के अनुसार हर पदार्थ ज्ञान, सत्य एवं असत्य दोनों प्रकार का होता है।[४] परन्तु अध्यास की कल्पना विना किसी अधिष्ठान के कथमपि नहीं की जा सकती। यह कहा जा चुका है कि अध्यास रूप अविद्या के ही द्वारा अधिष्ठान ब्रह्म में समस्त नामरूपात्मक प्रपंच अध्यस्त है। प्रपंच ब्रह्म स्वभाव वाला है। परन्तु ब्रह्म प्रपंच स्वभाव वाला नहीं है।[५]

प्रपंच ब्रह्म स्वभाव वाला इसलिये है कि अविद्या के द्वारा ब्रह्म में प्रपंच के दर्शन होते हैं। ब्रह्म के प्रपंच स्वभाव वाले न होने में यह कारण है कि समस्त

---

१. न हि असंसर्गि वस्तु क्वचिद् आधेयभावेन अवस्थितं भवति।

शा० भा० गीता ९–४

२. अनन्यत्वमधिष्ठानादारोप्यस्य निरीक्षितम्।
पण्डितैः रज्जुसर्पादौ विकल्पो भ्रान्ति जीवनः॥ विवेक चूडामणि ४०६

३. तमेतमेवं लक्षणमध्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते। ब्र० सू० शा० भा० उपो०

4 Sri Gopal Basu Malik, Fellowship Lectures, Page 153.
(University of Calcutta)

५. ब्र० सू० शा० भा० ३–२–२१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रपंच के लय हो जाने पर अद्वैत ब्रह्म ही अवशिष्ट रह जाता है। ब्रह्म नामरूपात्मक प्रपंच से परे है। ब्रह्म में न उत्पत्ति होती है और न प्रलय होता है। ब्रह्म स्वयं भी इन दोनों का विषय नहीं है।[1] मानसिक कल्पना मात्र रज्जु–सर्पादि की कल्पना का रज्जु में न प्रलय होता है और न उत्पत्ति। उसी प्रकार ब्रह्म में इस समस्त प्रपंच की न उत्पत्ति होती है और न प्रलय। इसलिए समस्त अध्यस्त द्वैत प्रपंच मायामात्र है।[2]

जब तक अधिष्ठान का ज्ञान नहीं होता तब तक अविद्या के द्वारा रज्जु में सर्पादि के समान आत्मा में द्वैत प्रपंच अध्यस्त रहता है।[3] अध्यस्त प्रपंच के कारण ही शुद्ध निर्गुण ब्रह्म में अनेक कल्पनायें होती हैं। डा० थीबो का कथन है कि इस अनादि एवं अनन्त अध्यास के कारण ही भ्रमित ज्ञान के अनुरूप जीव कर्मों के अनुसार कर्मफल का भोक्ता होता है।[4] अविद्या के द्वारा ब्रह्म में अध्यस्त प्रपंच का निराकरण विद्या के द्वारा ही सम्भव है। उस ब्रह्म के ज्ञात होने पर विद्या स्वयं उत्पन्न हो जाती है।[5] विद्या के द्वारा अविद्या का बाध होने पर परिणाम यह होता कि अविद्या के द्वारा अध्यस्त नामरूपात्मक प्रपंच स्वाप्निक प्रपंच के समान ही नष्ट हो जाता है। यहां यह दृष्टव्य है कि विद्या की उत्पत्ति और अविद्या के विनाश में पूर्वापर सम्बन्ध नहीं है। जैसे कि रज्जु का बोध होने से ही सर्प का भ्रान्तिजनक विलय हो जाता है उसी प्रकार स्वयं प्रकाश आत्मा के बोध होने पर समस्त द्वैत प्रपंच का विलय हो जाता है। शंकराचार्य का कथन है कि रज्जु एवं शुक्ति को स्वरूपबोध न होने के कारण ही अध्यारोपित सर्पादि एवं रजत का मिथ्या ज्ञान होता है।[6]

शुक्ति एवं रजत के उदाहरण में अध्यस्त रजत का अधिष्ठान यदि चैतन्य आत्मा है तो चेतननिष्ठ रजत का 'इदं रजतम्' इत्याकारक पुरोवर्ति तादात्म्य अध्यास किस प्रकार होता हैं, यह शंका का विषय है। समाधानार्थ निवेदन है कि जिस प्रकार आत्मनिष्ठ सुखादिकों का, शरीर के सुखादिकों की अधिकरणता का अवच्छेदक

१. नाप्यद्वैत मुत्पद्यते लीयतेवा। शा० भा० मा० का०, २–३२
२. मायामात्र मिदं द्वैतम्। विवेक चूड़ामणि ४०५
३. रज्ज्वां सर्पादिवदात्मनि द्वैतस्याविद्याध्यस्तत्त्वात्।
मा० का० शा० भा० २–३२
4. S. B. E. Vol. XXXIV; Page 9.
५. तस्मिन्नावेदिते विद्या स्वयमेवोत्पद्यते। ब्र० सू० शा० भा० ३–२–२१
६. शा० भा० गीता, १३–२६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होने के कारण शरीरनिष्ठ रूप से उपालम्भ होता है। उसी प्रकार चैतन्य मात्र को उक्त रजत का अधिष्ठान न होने से भी (इदम्) अवच्छिन्न चैतन्य को उसका अधिष्ठान होने के कारण और इदं को उस अवच्छिन्न चैतन्य का अवच्छेदक होने के कारण अध्यस्त रजत का पुरोदेशवर्ती संसर्ग बनता है। अवच्छिन्न रूप (इदम्) विषय चैतन्य को अन्तःकरण उपहित साक्षि चैतन्य के साथ अभिन्नता होने से पुरोवर्ती विषय चैतन्य में अध्यस्त भी रजतादि वास्तव में साक्षी में ही अध्यस्त हैं। इस प्रकार रजतादि के साक्षी में अध्यस्त होने के के कारण उन्हें केवल साक्षीवेद्य भी कहा जा सकता है।[1] मधुसूदन सरस्वती भी कर्तृवादि का अध्यास आत्मा में ही मानते हैं।[2]

साक्षी में अध्यस्त सुखादिकों की 'अहं सुखी' आदि प्रतीति के अनुसार 'अहं रजतम्' आदि प्रतीति की शंका भी स्वाभाविक है। परन्तु यह अनुचित है। क्योंकि प्रातिभासिक रजत के प्रमातृ चैतन्य से अभिन्न जो 'इदम्' अंशावच्छिन्न चैतन्य तादृश चैतन्यनिष्ठ अविद्या का कार्य होने से भी 'इदम् रजतम्' इत्यादि सत्य स्थल में होने वाला जो रजताकार अनुभव, तादृश अनुभव से जनित संस्कारों की सहकारता से उत्पन्न होने के कारण सदा 'इदम्' इत्यादि प्रत्यय विषयता ही रहती है किन्तु 'अहं रजतम्' इत्यादि 'अहम्' इत्याकारक प्रत्यय विषयता कदापि नहीं होती।[3] इसलिये 'अहम् रजतम्' इत्यादि शकायें असंगत हैं।

इस प्रकार शांकर-मायावाद के अनुसार जगत् अध्यस्त तत्त्व है। अध्यास और अधिष्ठान का भेद तभी तक वर्तमान रहता है जब तक कि आत्मसाक्षात्कार नहीं होता।

कार्य-कारण सम्बन्ध पर विचार

सृष्टि समस्या का सूक्ष्म चिन्तन ही रीत्यन्तर से कार्य-कारण सम्बन्ध का विचार है। इस समस्या का समाधान दुर्बोध्य बतलाया गया है। डा० राधाकृष्णन् ने भी इस सिद्धान्त की दुरूहता की ओर संकेत किया है[4] इस समस्या के स्पष्टीकरण का प्रयास ही इसकी जटिलता का मूल है। इसीलिए स्वयं शंकराचार्य ने ब्रह्म की शक्ति को विचित्र कहकर इस समस्या का समाधान किया है।[5] श्रुति ने

१. वेदान्त परिभाषा, पृ० २८ (कल्याण बम्बई)।
२. आत्मनि कर्तृत्वान्तरस्यैवाध्यासात्। अद्वैत सिद्धि, पृ० ६०८।
३. वेदान्त परिभाषा, प्र० परिच्छेद।
४. राधाकृष्णन्, इण्डियन फिलासफी, द्वितीय भाग, पृ० ५६८।
५. ब्र० सू० शा० भा० २-१-२५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो कार्य-कारण सम्बन्ध की समस्या को ही समाप्त सा कर दिया है।[1] यहां कार्य-कारण भाव के सम्बन्ध में वैदिक, सांख्य, वैशेषिक एवं शांकरदर्शन की विचारधारा के अनुरूप विचार किया जायगा।

वैदिक साहित्य और कार्य-कारण सम्बन्ध

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत कार्य-कारण सम्बन्ध के विषय में कई विचार-ग्रन्थियां मिलती हैं। ऋग्वेद में विशेष रूप से कार्य-कारणवाद के सम्बन्ध में विचार किया गया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में अनन्त शिर, नेत्र एवं चरण धारण करने वाले पुरुष के चतुर्थांश के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि के निर्माण का वर्णन किया गया है।[2] इस आदि पुरुष से विराट् (ब्रह्माण्ड-देह) उत्पन्न होता है और ब्रह्माण्ड देह का आश्रय करके जीवरूप से पुरुष उत्पन्न होते हैं। फिर देव मनुष्यादि रूप उत्पन्न हुए और उन्होंने भूमि एवं जीवों के शरीर बनाये।[3] नासदीय सूक्त के अनुसार आरम्भ में न असत् था और न सत्।[4] सृष्टि के प्रथम अन्धकार से अन्धकार आच्छन्न था। सभी कुछ अज्ञात एवं जलमय था। असत् के द्वारा वह सर्वव्यापी आच्छन्न था। तपस्या के प्रभाव से एक तत्त्व की उत्पत्ति हुई। उसमें सर्वप्रथम सृष्टि की इच्छा उत्पन्न हुई। इसके फलस्वरूप उससे बीजोत्पत्ति हुई। बुद्धिमानों ने बुद्धि के द्वारा अपने अन्तःकरण में विचार करके अविद्यमान वस्तु से विद्यमान वस्तु का निर्माण निश्चित किया।[5] वैदिक साहित्य के अन्तर्गत सृष्टि के मूल तत्त्व को कहीं सत् कहीं असत् और कहीं सदसत् कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद् में जहां यह कहा गया है कि आरम्भ में केवल एक सत् ही था वहां इसके विपरीत यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि आरम्भ में केवल असत् ही था। इसी असत् से सत् की उत्पत्ति हुई।[6] शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि आरम्भ में न असत् था न सत्। यह था भी और नहीं भी था। इसलिये केवल मन ही था। मन भी न सत् था और न असत्। मन को ही सृष्टि की इच्छा हुई और उसने तप किया। मन में ही समस्त सृष्टि का विस्तार हुआ।[7] Dr. Mair ने भी शतपथ के इस उद्धरण के आधार पर समस्त सृष्टि को मन की ही उत्पत्ति माना है।[8] ऋग्वेद संहिता में भी

१. श्वे० उ० ६–८ २. ऋग्वेद संहिता १०–९०–३
३ वही १०–९०–५ ४. १०–१२९–१
५ वही १०–१२९–४ ६. छा० उ० ६–२–१, ७. शतपथ ब्राह्मण १०–५–३–१
8. In the beginning, this universe was not either, as it were, non-existent, nor as it were existent. ....and the universe was apparently the product of this mind.
Dr. Mair, Five Sanskrit Texts, Page 358.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असत् से ही सत् की सृष्टि का वर्णन है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि आरम्भ में कुछ भी वर्तमान नहीं था। न आकाश था, न पृथिवी थी और न वायु-मण्डल ही था।[१] इसी प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद् में भी यही कहा गया है कि आरम्भ में असत् ही था। इस असत् से ही सत्य की उत्पत्ति हुई।[२] वृहदारण्यक उपनिषद् में व्यावहारिक जगत् को सत्य एवं परम सत्य (ब्रह्म) को 'सत्य का सत्य' का सत्य कहा गया है।[3] कतिपय ऋचाओं एवं उपनिषदों और ब्राह्मणों में प्रयुक्त असत् एवं सत् शब्दों का दार्शनिक अर्थ परक विवेचन अपेक्षित होगा।

मेरा विचार है कि सांस्कृतिक विकास के आरम्भ काल में इन्द्रिय प्रत्यक्ष के आधार पर ही सृष्टि समस्या का चिन्तन किया गया होगा। इस चिन्तन के आधार पर जिन वस्तुओं का इन्द्रिय सन्निकर्ष हुआ होगा उन्हीं को 'सत्' रूप में स्वीकार किया होगा। इसके विपरीत 'यो बुद्धे परतस्तुसः' के अनुसार जो सूक्ष्म परमात्म तत्त्व इन्द्रिय गोचर नहीं था उसे असत् कह दिया होगा। समस्त सृष्टि के अदृश्य कारण का अनुभव अवश्यम्भावी होने के कारण उसके प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव में उसे 'असत्' कहना स्वाभाविक ही था। इन्द्रिय अगोचर 'असत्' सूक्ष्मतत्त्व से इन्द्रिय गोचर सत् (वर्तमान जगत्) की सृष्टि से यही अभिप्राय प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त उपरि निर्दिष्ट उद्धरणों में 'असत्' शब्द का प्रयोग पूर्णतया 'असत्' अथवा पूर्णसत् के अर्थ में न होकर 'असदिव' (असत् के समान) के अर्थ में हुआ है। अदृश्य होने के कारण असत् ब्रह्म जब नामरूप में व्यक्त हो जाता है तो 'सत्' कहलाता है। 'असत्' से तो सत् की उत्पत्ति असम्भव ही है। सत होने पर भी इन्द्रियगोचर न होने के कारण उसे 'असदिव' कहा गया है। इसलिये ब्रह्मरूप तत्त्व का असत् होना गौण ही है।[४] प्रधान रूप से सत् ब्रह्म ही जगत् का कारण है। यदि विचार कर देखा जाय तो नामरूप मात्र से भिन्न जगत् भी सत् ही है।[५] इसीलिये शंकराचार्य ने समस्त सृष्टि को ब्रह्म ही कहा है।[६]

---

१. इदं वै अग्रेनैवकिंचन आसीत् नद्यु; आसीत् न पृथिवी न अन्तरिक्षं तत्असत् एव मनो कुरुत स्यामिति। तै० ब्रा० २-२-९

२. तै० उ० २-७-१

३. सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेषसत्यम्। वृ० उ० २-१-२०

4, Dr. Thibout, S. B. E., Vol. XXXIV, Page 267.

५. शा० भा० छा० उ० ६-२-२ ६. वही ३-१४-१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथार्थ की आदर्शोन्मुखी प्रवृत्ति के समान ही 'पूर्वयुग' में जहां असत् से सत् की सृष्टि का वर्णन था, उत्तर काल में आकर उसी असत् ने सत् का रूप धारण कर लिया। इसके परिणामस्वरूप 'सत्' सृष्टि वर्णन का सिद्धान्त प्रादुर्भूत हुआ। 'सत्' से सृष्टि की चर्चा छान्दोग्योपनिषद् में मिलती हैं।[1] Dr. Mair ने भी सर्वप्रथम छान्दोग्योपनिषद् में ही सत् से सृष्टि रचना स्वीकार की हैं।[2] इन उक्त उद्धरणों के आधार पर यह निश्चित है कि ब्रह्म के लिये सत् एवं जगत् के लिये असत् शब्द का प्रयोग होना आरम्भ हो गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि आरम्भ में कारण ब्रह्म के लिये 'असत्' का प्रयोग होता था। इसके उपरान्त ब्रह्म के लिये सत् का प्रयोग होने लगा। सत् का तात्पर्य दृश्यमाण एवं असत् का अर्थ अदृश्य था। ब्रह्म के असत् कहने का तात्पर्य यह नहीं था कि वह पूर्णतया 'असत्' है। वरन् इसका तात्पर्य यह था कि ब्रह्म असत् के समान (असदिव) है। साथ ही दृश्य-जगत् को 'सत्' एवं उसके कारण को 'सत्यस्यसत्यम्' भी कहा जाता था। इसके उत्तरकाल में सत् का प्रयोग पूर्ण सत् ब्रह्म के लिये होने लगा एवं असत् का प्रयोग मिथ्या जगत् के लिये होना आरम्भ हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक साहित्य के अन्तर्गत जगत् रूप कार्य का कारण सत्, असत् एवं सदसत् बतलाया गया है। मेरा विचार है कि वैदिक साहित्य की इस सदसत् परम्परा के आधार पर ही सांख्य एवं न्याय वैशेषिक के अनुयायियों ने सत् कार्यवाद और असत् कार्यवाद सिद्धान्त का विकास किया होगा। यहां इन दोनों सिद्धान्तों का उल्लेख भी इसी प्रसंग के अन्तर्गत किया जायेगा।

सृष्टि समस्या के अन्तर्गत कार्य-कारण सम्बन्ध के विषय में सांख्यवादियों एवं न्यायवैशेषिकवादियों ने विस्तार से विचार किया है। सांख्यवादियों का सिद्धान्त सत्कार्यवाद है और वैशेषिकों का सिद्धान्त असत्कार्यवाद है। इस स्थल पर दोनों का विवेचन इष्ट है।

सत्कार्यवाद का सिद्धान्त

सत्कार्यवाद के सिद्धान्त के अनुसार कारण में कार्य की सत्ता वर्तमान रहती है। यदि कार्य-कारण में वर्तमान न हुआ होता तो जगत् रूप तात्त्विक कार्य की

1. कुतस्तु खलुसौम्य एवं स्यात् इति स उवाच कथं असतः सत् जायते इति।
सत तु एव सौम्य इदं अग्र आसीत् एकं एव अद्वितीयम्। —छा० उ० ६-२
2. 'Studies in Vedanta', Page 190.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती थी। सांख्यदर्शन के अनुसार अचेतन स्वतन्त्र प्रधान ही जगत् का कारण है[१] इस मत में घट एवं पट का उपादान कारण मृत्तिका और तन्तु हैं। मृत्तिका एवं तन्तु रूप कारणों के आधार पर ही घट एवं पटरूप परिणाम सिद्ध होता है। इसीलिये सत्कार्यवाद के इस सिद्धान्त को परिणामवाद का नाम भी दिया गया है। आचार्य कपिल द्वारा प्रचलित सांख्य दर्शन का यह सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है। इस सिद्धान्त की निम्नलिखित न्यूनतायें हैं :—

(१) समस्त श्रुतियां ईश्वरकारणवाद की समर्थक हैं।[२] सांख्यमत स्वतन्त्र रूप से प्रधान कारणवादी होने से श्रुति मत का विरोधी है।[३]

(२) प्रधान के अतिरिक्त महत् आदि तत्त्व जिनकी स्मृति में कल्पना की गई है वे लोक एवं वेद में उपलब्ध नहीं होते। लोक एवं वेद में अनुपलब्ध होने के कारण उन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

(३) सांख्य सम्मत स्वतन्त्र प्रधान भेद के साथ-साथ आत्मबहुत्व की कल्पना भी असंगत है।

(४) परिणामवाद के सिद्धान्त के अनुसार कार्य-कारण से भिन्न भी सिद्ध होता है और अभिन्न भी। यह भिन्नाभिन्नत्व अनुचित है।

घट एवं शराव दोनों मृत्तिका के कार्य हैं अतः उनका मृत्तिका से अभिन्न सम्बन्ध है। परन्तु घट एवं शराव दोनों में आपस में भेद है। क्योंकि जो घट है वह शराव ही है और जो शराव है उसे घट कदापि नहीं स्वीकार किया जा सकता। अतः घट एवं शराव के आधार पर मृत्तिका में भी भेद स्वीकार करना पड़ेगा। इस प्रकार एक ही साथ दो वस्तुओं को भिन्न एवं अभिन्न सिद्ध करना कार्य-कारण के निश्चित सम्बन्ध की स्थापना नहीं करता।

असत्कार्यवाद का सिद्धान्त

वैशेषिक दार्शनिकों का असत्कार्यवाद का सिद्धान्त सांख्य के सत्कार्यवाद के ठीक विपरीत है। जहां सत्कार्यवादी कार्य को कारण में सत् स्वीकार करते हैं वहां असत्कार्यवादी कार्य को कारण में असत् मानते हैं। कारण में कार्य की सत्ता न मानने के कारण ही इस सिद्धान्त का प्रचलन असत् कार्यवाद के नाम से हुआ है।[४]

---

१. तासुह्यचेतनं प्रधानं स्वतन्त्रं जगतः कारणमुपनिबध्यते। ब्र० सू० शा० भा० २-१-१
२. ब्र० सू० शा० भा० २-१-१
३. महदादीनि न तानि वेदेलोकेवोपलभ्यन्ते। ब्र० सू० शा० भा २-१-२
४ डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, भारतीय दर्शनशास्त्र (न्याय वैशेषिक) पृ० १५६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असत्कार्यवादी के मत में कार्य की सत्ता कारण से पृथक है। इस सिद्धान्त के अनुसार परमाणुओं के द्वारा जगत् की सृष्टि होती है।[1] वैशेषिक मत के अनुसार परमाणुओं का कर्म से संयोग होने पर सृष्टि होती है। दो परमाणुओं से एक द्वयणुक और तीन द्वयणुकों से मिलकर एक त्रयणुक उत्पन्न होता है। वैशेषिक दर्शन में कार्य का कारण के साथ समवाय सम्बन्ध स्वीकार किया गया है।[2] न्याय-वैशेषिकों का यह सिद्धान्त तर्क प्रतिष्ठित न होने के कारण अमान्य है। कारण एवं कार्य में भेद होने के कारण किसी भी कार्य का कोई निश्चित कारण नहीं सिद्ध किया जा सकता। इसका परिणाम यह होगा कि किसी भी कारण से किसी भी कार्य की उत्पत्ति होने की सम्भावना के कारण कार्य-कारण की अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी। सांख्य की समवाय कल्पना भी असंगत है। समवाय की कल्पना करने पर समवाय का समवायियों के साथ सम्बन्ध स्वीकार करने पर भिन्न २ सम्बन्धों की कल्पना करनी पड़ेगी। ऐसा करने से अनवस्था दोष आ जायेगा। इस सिद्धान्त का एक दोष यह है कि कारण में कार्य के असत् होने के कारण और कार्य का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। सम्बन्ध दो सत् पदार्थों का ही सम्भव है। इसके विपरीत सत् एवं असत् पदार्थों का सम्बन्ध कदापि स्थापित नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त दो असत् पदार्थों का सम्बन्ध भी निश्चित होना असम्भव है।[3] इस प्रकार उक्त युक्तियों से प्रतीत होता है कि असत् कार्यवाद का सिद्धान्त तर्क प्रतिष्ठित नहीं है।

शंकराचार्य और कार्य-कारण सम्बन्ध

शंकराचार्य ने कार्य-कारण सम्बन्ध की दुरूह समस्या पर सूक्ष्म विचार किया है। आचार्य ने आकाशादि बहुप्रपंच जगत् को कार्य और ब्रह्म को उस जगत् का कारण कहा है।[4] परमार्थ रूप से कारण और कार्य में अनन्यत्व है। मृत्तिका रूप से ज्ञात एक मृत्तिका पिण्ड से, मृत्तिका निर्मित समस्त घट शराब आदि का ज्ञान हो जाता है। घट और शराब आदि का समस्त भेद नामरूपात्मक है। इसलिये श्रुति सम्मत शांकर-वेदान्त के अनुसार मृत्तिका जात समस्त घटादिक नामरूपात्मक

---

१. परमाणवो जगत्कारणमिति कणभुगभि प्रायः। ब्र० सू० शा० भा० २-२-१२

२. Dr. T. M. P. Mahadevan, Gaudpada, Page 134.

३. सतोर्हि सम्बन्धः सम्भवति न सदसतोः असतोर्वा। ब्र० सू० शा० भा० २-१-१८

४. कार्यमांकाशादिकं बहुप्रपंच जगत्, कारणं परं ब्रह्म। ब्र० सू० शा० भा० २-१-१४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भेद विकारमात्र होने के कारण असत्य हैं। केवल मृत्तिका ही सत्य है।[1] शंकराचार्य का कथन है कि जिस प्रकार क्षीरादि से दध्यादि परिणामों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार एक चेतन ब्रह्म से विचित्र शक्ति के योग से विचित्र परिणामों की सृष्टि होती है।[2] ब्रह्म की यह विचित्र शक्ति माया है।[3] इस प्रकार माया के द्वारा शंकराचार्य ने कार्य और कारण के सम्बन्ध को स्थापित किया है। ब्रह्म इस विचित्र शक्ति के योग से ही ईश्वर नाम से व्यवहृत होता है। आत्मैकत्त्व की प्रतिपादक 'अपागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारोनामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येवसत्यम्' 'एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि' 'इदं सर्वं यदयमात्मा' 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' आत्मैवेदं सर्वम्' 'नेहनानास्ति किंचन' आदि श्रुतियां भी जिस अद्वैत तत्त्व की स्थापना करती है उससे अद्वैत भिन्न जड़ जगत् की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, यह विवेचन का विषय है। अनेक दृष्टान्तों के द्वारा इस विषय का स्पष्टीकरण किया जा सकता है। एक ही पृथिवीत्व जाति से युक्त होने पर भी पत्थरों के वज्र, वैदूर्य, सूर्यकान्त एवं अन्य भेद पाये जाते हैं। जिस प्रकार चन्दन आदि के एक ही बीज के पत्ते, फूल, फल, फलगन्ध, रस आदि में अनेक प्रकार का वैचित्र्य दिखाई पड़ता है, एक ही अन्न रस के रुधिर, केश, लोम आदि विचित्र भेद प्रतीत होते हैं उसी प्रकार एक ब्रह्म से ही जीव और प्राज्ञरूप से पृथक्त्व एवं कार्य-वैचित्र्य सिद्ध होता है।[4] सृष्टि ब्रह्म के स्वभाव का फल है। इसलिये यह कथन अनुपयुक्त है कि अद्वितीय ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति में असमर्थ है। जिस प्रकार क्षीरादि में स्वभावतः दधि आदि की उत्पत्ति हो जाती है उसी प्रकार सृष्टि भी ब्रह्म की स्वभावज शक्ति का परिणाम है। यह कथन कि ब्रह्म को नाना रूप जगत् की उत्पत्ति का कारण मानने पर यह भी स्वीकार करना होगा कि समस्त ब्रह्म कार्य रूप मे परिणत होता है, असंगत है। ब्रह्म श्रुति के अनुसार निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, निरवद्य (दोष-रहित) एवं निरंजन है।[5] इसलिये इसे कार्य का रूप नहीं दिया जा सकता। निरवयव एवं अविकृत ब्रह्म में जगत् रूप कार्य की प्रतीति किस प्रकार सिद्ध होती है इस शंका का समाधान करते हुए शंकराचार्य ने लिखा है कि तिमिर रोग के कारण नेत्र दीप्ति के नष्ट हो जाने पर जिस प्रकार द्रष्टा को एक चन्द्रमा के अनेक चन्द्रमा दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार अविद्या के द्वारा कल्पित नामरूप आदि के रूप में ब्रह्म के विभिन्न परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं।

---

१. छा० उ० ६-४
२. ब्र० सू० शा० भा० २-१-१४
३. विवेक चूडामणि १०९।
४. ब्र० सू० शा० भा० २-१-२३
५. श्वे० उ० ६-१९ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकराचार्य ने कार्य और कारण के अभेद को विवर्तवाद के आधार पर स्पष्ट किया है। विवर्तवाद का विवेचन प्रथम अध्याय के अन्तर्गत किया जा चुका है। इस सम्बन्ध में पी० एम० मोदी का कथन सत्य ही है कि ब्रह्म के जगत् का कारण होने का तात्पर्य यह कदापि नहीं समझना चाहिये कि ब्रह्म अथवा उसके धर्म अथवा धर्मों में किसी प्रकार का परिवर्तन होता है। मोदी साहब का कथन है कि उत्पत्ति, रक्षा तथा प्रलय काल में ब्रह्म अविकृत ही रहता है।[१]

शंकराचार्य के मतानुसार समस्त सृष्टि ईश्वर की लीलामात्र है। आप्तकाम ईश्वर की निष्प्रयोजन एवं स्वाभाविक लीला ही सृष्टि है। जिस प्रकार लोकवर्ती राजा एवं मन्त्री आदि की लीलायें एवं उच्छ्वास, प्रश्वास आदि किसी बाह्य प्रयोजन की अभिसन्धि के बिना ही स्वाभाविक रूप से चलते हैं उसी प्रकार किसी अन्य प्रयोजन की अपेक्षा के बिना स्वभाव से ही ईश्वर की भी केवल लीला रूप प्रवृत्ति होती है[२]। Bradley का कथन है कि समस्त लीला ईश्वर की क्रियात्मकता का ही फल है। परंतु परमेश्वर की यह क्रियाशीलता स्वभावज होने के कारण किसी प्रकार की कामना अथवा विवशता से वर्जित है।[3] यद्यपि संसार में सुख दुःखादि का सृष्टि-वैचित्र्य, स्रष्टा परमेश्वर की निष्कामता एवं परितृप्तता के सम्बन्ध में सन्देह का जनक है। परन्तु शंकराचार्य ने इस सन्देह के निवारणार्थ स्रष्टा परमेश्वर को धर्म एवं अधर्म का अपेक्षी माना है। आचार्य ने कहा है कि बिना धर्माधर्म की अपेक्षा के विचित्र सृष्टि रचना सम्भव नहीं हो सकती। इस प्रकार शांकर-दर्शन के अनुसार धर्माधर्म का सापेक्षी ईश्वर ही सुख दुःखमय विषम सृष्टि की रचना करता है। इसलिये प्राणि धर्म के अनुसार रचित सृष्टि की विषमता स्वाभाविक ही है[४]।

अद्वैत ब्रह्म जगत् का उपादान कारण भी है एवं निमित कारण भी। ब्रह्माद्वैत से परे होने के कारण असम्भाव्य है।[५] यह कथन अनुचित होगा कि सृष्टि लीला विधायी

1. P. M. Modi Relation of Brahman & Jagat. (Inldian Culture, Vol VIII, P. 149).

२ ब्र० सु० शा० भा० २-१-३३।

3 Essays on Truth & Reality, PP. 50—51.

४ ब्र० सु० शा० भा० २-१-३४

5 ...in Shankar's system, Brahman being the efficient (निमित्त कारणम्) as well as the material cause (उपादान कारणम्) of the world, and there being no manipulator of an extraneous material co-eternal with Him, S. B. Fellowship lectures for, 1929, Page 281.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परमेश्वर धर्माधर्म सापेक्षी होने के कारण द्वैत सहित है । धर्माधर्म आदि दार्शनिक भाषा में सृष्टि रचना के लिए उपादान रूप से अवश्य स्वीकार्य हैं । परन्तु उनकी सत्ता न निराकार है न आनुमानिक और न काल्पनिक ।[1] शंकराचार्य की धर्माधर्म की यह अपेक्षा ब्रह्म के लिये न होकर ईश्वर के लिये हैं जो मायी है । धर्माधर्म की कल्पना ही रूपान्तर से ईश्वरत्व की कल्पना है । जिस प्रकार घटादि विषय एवं नेत्रादि इन्द्रियों के परस्पर सम्बन्धादि रूप कारण के वश जीवोपाधिभूत अन्तःकरण के अनेक प्रकार के वृत्ति भेद लक्षित होते हैं उसी प्रकार परमेश्वर की उपाधिभूता माया के संसृज्यमान प्राणियों के अनेक प्रकार के कर्मों के वश से, 'इस काल में इस पदार्थ की सृष्टि करनी चाहिये' 'इन पदार्थों का पालन करना चाहिये' 'इस पदार्थ का इस काल में संहार करना चाहिये' इत्यादि अनेक वृत्ति भेद उत्पन्न होते हैं ।[2] इस प्रकार कर्म एवं धर्म की स्थापना करके शंकराचार्य ने अपने दर्शन में जो नैतिकता का समावेश किया है वह शांकर-दर्शन को ऐहिक एवं पारलौकिक दोनों ही दृष्टियों से उपयोगी बना देता है । इस विषय में डायसन का कथन सत्य ही है कि कर्म ही समस्त सृष्टि का आधार है । मनुष्य एक पौधे के समान है । पौधे के नष्ट हो जाने पर इसका बीज नष्ट नहीं होता । बीज से पुनः पौधे की सृष्टि होती है उसी प्रकार मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर भी मनुष्य के द्वारा किये गये कर्म नष्ट नहीं होते । अनादि कर्मों के आधार पर ही संसार की सृष्टि होती है । इस लिये अनादि एवं अनन्त जगत् के ब्रह्म में लीन होने के उपरान्त नवीन सृष्टि एक नैतिक आवश्यकता है ।[3]

यदि ईश्वर में वैषम्य सिद्ध करने के लिये कहा जाय कि ईश्वर जिसे ऊंची स्थिति में ले जाना चाहता है उससे साधु कर्म कराता है एवं जिसे नीची स्थिति में ले जाना चाहता है उससे असाधु कर्म कराता है तो यह अनुचित होगा। अनादिकाल से पूर्व संचित साधु या असाधु वासनाओं से पुरुष स्वभाव से ही तत् तत् कर्मों में प्रवृत्त होता है। अतः ईश्वर साधारण कारण होने के कारण दोष रहित है । शंकराचार्य का कथन है कि ईश्वर पर्जन्य के समान साधारण कारण है । यव आदि धान्य की उत्पत्ति में पर्जन्य साधारण कारण है । यव एव व्रीहि की भिन्नता के कारण उनके पृथक पृथक बीज हैं ।इस प्रकार यवादि के बीज यवादि की उत्पत्ति में असाधारण कारण हैं । इसलिये यवादि की विषमता के कारण बीजों में भिन्नता

1. S B. Fellowoship lectures for 1929, Page 281
२. वेदान्त परिभाषा प्र० परि० ।
3. Deussen, Philosophy of the Vedanta, Page 25.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है न कि पर्जन्य में। इसी प्रकार देव मनुष्य आदि की सृष्टि का ईश्वर साधारण कारण है एवं तत् तत् जीवों में रहने वाले कर्म असाधारण कारण हैं। इस प्रकार समस्त सृष्टि यद्यपि परमेश्वर की ही लीला है परन्तु ईश्वर सृष्टि का साधारण कारण होने के कारण सृष्टि वैषम्य का हेतु कदापि नहीं है।[1]

वास्तव में कारण और कार्य के सम्बन्ध का प्रश्न अत्यन्त जटिल है। Prof. Pringle-Pattison का तो यहां तक कथन है कि मूल-तत्त्व कारण एवं कार्य जगत् का सम्बन्ध ज्ञान असम्भव ही है।[2] शंकराचार्य ने इस समस्या का हल प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ब्रह्म और जगत् में अनन्यत्व है।[3] ब्रह्म अधिष्ठान है एवं जगत् उस अधिष्ठान का अध्यस्त तत्त्व है। सत् ब्रह्म एवं परमार्थ रूप से असत् जगत् का सम्बन्ध अनिर्वचनीय है।

———

१. ब्र० सू० शा० भा० २–१–३४

2. Idea of God, P. 293.

३. ब्र० सू० शा० भा० २–१–२०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शङ्कराचार्य

[उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन]

चतुर्थ-अध्याय

शंकराचार्य के मायावाद का स्वरूप, उत्तरार्द्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४

भारतीय दर्शन की विविध ख्यातियां और उनका निराकरण

भारतीय दर्शन के सम्राट् दार्शनिकों ने बाह्य जगत् की अनुभूति के सम्बन्ध में विभिन्न विचार सामग्री प्रस्तुत की है। जगत् की बाह्यानुभूति की सत्यता का निदान अज्ञान है। अज्ञान के ही कारण जगत् की पृथक् रूप से अनुभूति भ्रान्ति मात्र है। भ्रान्ति के सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने सूक्ष्म रूप से विचार किया है। भारतीय दर्शन के क्षेत्र में भ्रान्ति विषयक सिद्धान्त ख्यातिवाद के नाम से प्रचलित है। यहां भारतीय दर्शन की विविध ख्यातियों के निरूपण एवं आलोचन का प्रयास है। भारतीय दर्शन की निम्नलिखित प्रमुख ६ ख्यातियां हैं :—

१. सत्ख्याति। २. अख्याति। ३. अन्यथाख्याति। ४. आत्मख्याति। ५. असत्ख्याति। ६. अनिर्वचनीयख्याति।

अनिर्वचनीय ख्यातिवादी शंकराचार्य ने परवर्ती रामानुज की सत् ख्याति को छोड़कर आत्मख्याति, असत्ख्याति, अख्याति और अन्यथाख्याति का उल्लेख अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य के अन्तर्गत किया है।[1] ख्यातियों के सम्बन्ध में एक श्लोक भी प्राप्त है जिसमें पाँच ख्यातियों का ही उल्लेख किया गया है। यह श्लोक निम्न है: —

> आत्मख्यातिरसत्ख्याति रख्याति ख्यातिरन्यथा।
> तथा निर्वचनीयख्याति रित्येतत्ख्याति पंचकम् ॥

उक्त श्लोक के अन्तर्गत सत्ख्याति का उल्लेख नहीं है। इस स्थल पर उक्त छहों ख्यातियों का विवेचन किया जायगा। इन छहों ख्यातियों में अनिर्वचनीय ख्याति के अतिरिक्त अन्य पांचों ख्यातियां दोषपूर्ण हैं। अतः पहले इन पंच ख्यातियों का निरूपण और निराकरण किया जायगा। इसके उपरान्त शंकराचार्य के अनिर्वचनीय ख्यातिवाद के स्वरूप की प्रतिष्ठा की जायगी।

---

1. ब्र० सू० शा० भा० उपोद्घात।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१—सत्ख्यातिवाद का सिद्धान्त

सत्ख्यातिवाद के प्रवर्तक आचार्य रामानुज आदि विद्वान हैं सत्ख्यातिवादी ये विद्वान् भ्रम को मिथ्या न मानकर सत् ही मानते हैं। इसीलिये इस सिद्धान्त का नाम सत्ख्यातिवाद पड़ा है। इसी सिद्धान्त पर आधारित आचार्य रामानुज का जगत् सम्बन्धी सिद्धान्त भी है। आचार्य रामानुज के मतानुसार जगत् मिथ्या न होकर ब्रह्म का ही अंश है। सत्ख्यातिवादी रज्जु में सर्परूप भान को असत् न मानकर सत् स्वीकार करता है। रज्जु में सर्प के अतिरिक्त अन्य विषयों के ज्ञान भी सत् ही हैं। सत्ख्यातिवादियों का सिद्धान्त है कि जिस वस्तु का किसी स्थल पर ज्ञान होता है वही अन्यत्र भ्रम के द्वारा भासती है।[1] इसलिए भ्रम द्वारा भासमान रज्जु में सर्प, शुक्ति में रजत एवं मरीचिका आदि के ज्ञान सत् ही हैं। सत्ख्यातिवादि का सिद्धान्त पंचीकरण के सिद्धान्त पर है। रज्जु, शुक्ति एवं मरीचिका में सर्प, रजत एवं जल अंशत: विद्यमान भी है। मरीचिका में केवल पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व की ही योजना न होकर जल का संयोग भी है। यह बात दूसरी है कि जल की मात्रा न्यूनतम है।[2] इस प्रकार इस सिद्धात का मूल आधार 'सर्वम् सर्वात्मकम्' का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक का तात्त्विक अंश वर्तमान रहता है। तात्त्विक अंश के वर्तमान होने के कारण ही सर्प, रजत एवं मरीचिका का ज्ञान सत् है। परन्तु शुक्ति आदि में पूर्णरूप से रजतादि न होने पर भी तिमिरादि दोष के कारण रजतादि की मिथ्या प्रतीति होती है।[3] इन रजतादि ज्ञेय पदार्थों को असत् नहीं कहा जा सकता। ज्ञान सत् पदार्थ का ही सम्भव है। असत् पदार्थ का नहीं। समानाधिकरण के द्वारा प्रतीयमान शुक्ति पर अधिष्ठित रजत के मिथ्या होने के कारण संसार के सारे रजत का मिथ्यात्व नहीं सिद्ध किया जा सकता। इसलिये केवल भ्रान्तिस्थल का रजत ही मिथ्या है। इसके अतिरिक्त रजत सत्य ही है।[4] पाण्डुरोग के रोगी के लिये श्वेत शंख भी पीत दिखाई पड़ता है। शंख में भासमान पीतिमा शंखगत न होकर नेत्रगत है। नेत्रगत पीतिमा ही शंख में आरोपित होती है। अतएव शंख की श्वेतिमा का बाध होकर पीतिमा का भास होता है। अत: पीतिमा भी सत् समझनी चाहिए। सत्ख्यातिवादी ज्ञान को केवल चैतन्य न मानकर उसकी प्रायोगिक सत्ता भी मानता है। ज्ञान के

१ शंकर चैतन्य भारती, ख्यातिवाद, पृ० ७ (सरस्वतीभवन टैक्स्टस)

2 The Doctrine of Maya

३ श्री भाष्य १—१—१। ४ श्रुत प्रकाशिका, श्रीभाष्य १—१—१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रायोगिक (व्यावहारिक) पक्ष के लिये विषयगत तत्त्वों की प्रबलता का ज्ञान होना आवश्यक है। शुक्ति में रजत की आंशिक सत्यता होते हुए भी शुक्ति का रजत रूप से व्यवहार नहीं होता।

सत्ख्यातिवाद का निराकरण

सत्ख्यातिवाद का सिद्धान्त पंचीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है। पूर्वपक्षी सत्ख्यातिवादी ने 'सर्वं सर्वात्मकम्' के द्वारा ख्याति को सत् सिद्ध किया है। परन्तु तर्क भूमि पर सद्ख्यातिवादी का उक्त सिद्धान्त खण्डित हो जाता है। नृसिंहाश्रम ने इस विषय की ओर संकेत करते हुए संक्षेप शारीरक की टीका में लिखा है कि पंचीकरण विभिन्न भूतों (क्षिति आदि) का ही होता है न कि उन भूतों से निर्मित विभिन्न भौतिक पदार्थों का। यदि ऐसा हुआ होता तो स्तम्भ आदि में भी रजतादि की प्रतीति होने लगती।[1] इसलिये यद्यपि मूलतत्त्व एक दूसरे पदार्थों में मिश्रित होते हैं परन्तु इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उन तत्वों से निर्मित पदार्थों में पार्थक्य न हो। क्रियात्मक दृष्टि से विचार करने पर भी पदार्थों का पार्थक्य सिद्ध होता है। ताप के द्वारा रजत में जो द्रवणशीलता देखी जाती है उसका शुक्ति में अभाव है। इसी प्रकार रज्जु में सत्य सर्प के तत्त्व वर्तमान रहने पर भी विष आदि का अभाव ही रहता है। सत्ख्यातिवादी का यह कथन भी असंगत है कि पाण्डुरोगी की नेत्रगत पीतिमा के श्वेत शंख में आरोपित होने के कारण श्वेत शंख की श्वेतिमा पीतिमा में परिवर्तित हो जाती है यदि ऐसा हुआ होता तो प्रत्येक व्यक्ति को आरोपित पीतिमा के ही दर्शन हुए होते। परन्तु ऐसा नहीं होता, इसलिए शंखगत पीतिमा को सत् न कहकर असत् ही कहा जायगा। इन तर्कों के आधार पर सत्ख्यातिवादी का सिद्धान्त अनुचित प्रतीत होता है।

अख्यातिवाद का सिद्धान्त

अख्यातिवाद के सिद्धान्त के समर्थक प्रभाकर मीमांसक हैं। अख्यातिवादी के कथनानुसार ज्ञान कदापि मिथ्या नहीं होता। उसमें आंशिक सत्यता अवश्य रहती है। इसके परिणामस्वरूप अख्यातिवादी के मत में भ्रान्ति को नहीं स्वीकार किया गया है। इसीलिये इस सिद्धान्त का प्रचलन अख्यातिवाद के नाम से हुआ है। भ्रम को न स्वीकार करके अख्यातिवाद ने ज्ञान के दो पक्ष माने हैं—एक यथार्थ और दूसरा स्मृति। यहां यह शंका स्वाभाविक है कि यदि अख्यातिवादी मीमांसक भ्रमात्मक ज्ञान को स्वीकार नहीं करता तो शुक्ति में रजतरूप भ्रान्तिमूलक ज्ञान

१. देखिए—नृसिंहाश्रम की टीका 'संक्षेप शारीरक' १—२० पर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का कारण क्या है ? इसके उत्तर में अख्यातिवादी का कथन है कि 'इदम् रजतम्' (यह रजत है) इस ज्ञानद्वय में 'इदम्' (यह) का यथार्थ ज्ञान होता है, और रजत की स्मृति। इन्द्रिय संयोगजन्य होने के कारण इदम् इस पुरोवर्ती पदार्थ का ज्ञान 'प्रत्यक्ष ज्ञान' है। संस्कारजन्य सादृश के आधार पर ज्ञात 'रजतम्' स्मृतिमात्र है। पुरोवर्ती इदम् रूप यथार्थ ज्ञान और रजतरूप स्मृति इन दोनों भिन्न-भिन्न ज्ञानों के भिन्न रूप से न ग्रहण होने के कारण ही शुक्ति का रजत रूप में ज्ञान होता है। इसी को 'भेदाग्रह' कहते हैं। यह भेदाग्रह ही शुक्ति में रजत ज्ञान का कारण है। प्रभाकर प्रभृति दार्शनिकों का कथन है कि न पुरोवर्ती प्रत्यक्ष विषय रजत है और न रजत शुक्ति। प्रभाकर के मत में पुरोवर्ती विषयक ज्ञान और रजत ज्ञान दोनों पृथक्–पृथक् हैं। इस ज्ञानद्वय का 'भेदाग्रह' ही भ्रान्ति का मूल है।

'भेदाग्रह' का ही अपर रूप 'असंसर्गाग्रह' है। 'असंसर्गाग्रह' की कल्पना करते हुए अख्यातिवादी का कहना है कि शुक्ति और रजत के दृष्टान्त में पुरोवर्ती 'इदम्' और 'रजतम्' के असंसर्गाग्रह' रूप अविवेक के कारण ही इदम्' —पुरोवर्ती विषय (शुक्ति) का रजत रूप से ज्ञान होता है।[1]

अख्यातिवादी का कथन है कि शुक्ति, और रजत के दृष्टान्त में 'इदम् रजतम्' (यह रजत है) इस ज्ञान में स्मरणाभिमान प्रमुषित हो जाता है स्मरणाभिमान के प्रमुषित होने के कारण ही शुक्ति का रजत रूप में ज्ञान होता है।

अख्यातिवाद का निराकरण

अख्यातिवादी दार्शनिक ने अपने सिद्धान्त के समर्थन में कहा है कि प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय–'इदम्' एवं स्मरणज्ञान के विषय–'रजतम्' के भेदाग्रह के कारण ही शुक्ति का रजत रूप में ज्ञान होता है। अख्यातिवादी का यह तर्क युक्ति प्रतिपादित नहीं प्रतीत होता। अख्यातिवादी ने जिस 'भेदाग्रह' का प्रतिपादन किया है वह असंगत है। किसी वस्तु का स्वरूप ज्ञान ही उस वस्तु का भेदक ज्ञान है। यह असंगत है कि दो भिन्न वस्तुओं का ज्ञान होने पर भी 'भेदाग्रह' बना रहे। अख्यातिवादी मीमांसक के मत में पुरोवर्ती—'इदम्' और स्मृति पर आधारित रजत दोनों हीं भिन्न ज्ञान हैं। दोनों ज्ञानों के भिन्न स्वीकार करने पर तो भेदाग्रह स्पष्ट ही है इसके अतिरिक्त अख्यातिवादी के मत में ज्ञान के स्वतः सिद्ध होने के कारण उसका अन्य विषयों के ज्ञान से भेद भी स्वाभाविक ही है। इस प्रकार विषय

१. डा० हरदत्त शर्मा, ब्रह्मसूत्र चतुःसूत्री पृ० १३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवं ज्ञान के स्वभाव के अनुरूप इन दोनों का अन्य विषयों एवं ज्ञान से भिन्नत्व प्राकृत ही है।

अख्यातिवादी का 'असंसर्गाग्रह' का तर्क भी उचित नहीं है। 'असंसर्गाग्रह' रूप अविवेक 'ग्रहण' एवं 'स्मृति' के मध्य नहीं स्थापित किया जा सकता। 'अहंमनुष्योऽस्मि' (मैं मनुष्य हूँ) इस वाक्य में, जो कि भ्रमस्थल का उदाहरण है, (क्योंकि 'अहम्' आत्मा का द्योतक है और मनुष्य देहादि का) 'असंसर्गाग्रह' दो ज्ञानों के मध्य है न कि ग्रहण' और 'स्मृति' के मध्य है। अख्यातिवादी ने असंसर्गाग्रह रूप अविवेक के द्वारा जिस रजत ज्ञान की बात कही है वह भी अनुचित है। क्योंकि अविवेक भ्रम का कारण नहीं माना जा सकता। अविवेक, दो ज्ञात वस्तुओं के सम्बन्ध में कदापि नहीं हो सकता क्योंकि स्वप्नावस्था, जो भ्रमस्थल है, में आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञात वस्तु नहीं होती। इसके अतिरिक्त ज्ञात एवं स्मृत पदार्थों के सम्बन्ध में भी 'असंसर्गाग्रह' अनुचित ही होगा। क्योंकि स्वप्नावस्था में जब कि आत्मा को 'स्मृत नील' का अविवेक रहता है तभी 'अहं नीला' (मैं नीला हूँ) इस भ्रम की अनुभूति होती है। 'असंसर्गाग्रह' दो स्मृत विषयों के सम्बन्ध में भी नहीं हो सकता। क्योंकि ऐसा होने पर तो भ्रमावस्था में प्रत्येक वस्तु परम्परा से ही उपस्थित होगी, साक्षात् नहीं।[1] इन तर्कों के आधार पर अख्यातिवादी का 'असंसर्गाग्रह' का तर्क भी उचित नहीं कहा जा सकता।

अख्यातिवादी ने स्मरणाभिमान के प्रमुषित होने का जो तर्क प्रस्तुत किया है वह भी समीचीन नहीं है। यदि स्मृति को ही प्रमुषित कहा जायगा तो यह अनुचित होगा, क्योंकि स्मृति का प्रमोष होने से तो स्मृति पर आधारित रजत ज्ञान का अभाव ही प्रसक्त होगा। इस प्रकार अख्यातिवादी के मत में स्मृति रजत भ्रम की जननी है उसी का प्रमोष होने पर वह कौन सा ज्ञान अवशिष्ट रह जायगा जिसको भ्रम कहा जायगा। अतः अख्यातिवादी का स्मृति को ही प्रमुषित कहना अयुक्त है। यदि अख्यातिवादी कहे कि स्मृति से भिन्न वस्तु का प्रमोष होता है तो उसका यह कथन भी असंगत ही है। क्योंकि स्मृति से अतिरिक्त वस्तु का प्रमोष मानने पर तो स्मृति पूर्णतया अवशिष्ट रह जायगी। स्मृति के अवशिष्ट रहने पर द्रष्टा स्मृति के विषय (रजत) का प्रत्यक्ष अनुभव के विषय 'इदम्' से भिन्न बोध भी कर सकेगा। ऐसी दशा में शुक्ति में, स्मृति पर आधारित रजत-ज्ञान का अवसर ही नहीं उपस्थित हो सकता। अतः स्मृति से

१ डा० हरदत्त शर्मा, ब्रह्मसूत्र चतुःसूत्री पृ० १३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भिन्न वस्तु का प्रमुषित होना भी नहीं स्वीकार किया जा सकता। अख्यातिवादी यदि कहे कि स्मृति के किसी धर्म का प्रमोष होता है तो यह भी अनुचित है, क्योंकि स्मृति का धर्म न प्रत्यक्ष के द्वारा सिद्ध होता है और न अनुमान के द्वारा। अख्यातिवादी का यह कथन भी संगत नहीं होगा कि 'मैं स्मरण करता हूं' इस ज्ञान का प्रकोप होता है, क्योंकि स्मृति में इस प्रकार की ज्ञानानुभूति नहीं पायी जाती। अतः अख्यातिवादी का स्मरणाभिमान को प्रमुषित सिद्ध करना तर्क प्रतिष्ठित नहीं है।

इस प्रकार उक्त तर्कों के आधार पर अख्यातिवादी के सिद्धान्त का पूर्णतया खण्डन हो जाता है।

३—अन्यथाख्यातिवाद का सिद्धान्त

अन्यथाख्यातिवाद—सिद्धान्त का प्रवर्तक नैयायिक है। अन्यथाख्यातिवादी का सिद्धान्त मीमांसक के अख्यातिवाद के निकट है। परन्तु अन्यथाख्यातिवादी अख्यातिवादी की तरह स्मृति को स्वीकार नहीं करता। किसी वस्तु के धर्मों का अन्य वस्तु में आरोप ही 'अन्यथाख्याति' है।[1] शुक्ति एवं रजत के उदाहरण में रजत के धर्मों का शुक्ति में आरोप हो जाता है। इस आरोप के ही कारण शुक्ति का रजत रूप से अन्यथा ज्ञान होता है। इसी लिये अन्यथाख्यातिवाद का प्रचलन हुआ है। अन्यथाख्यातिवादी के मत में मिथ्या सादृश्य के आधार पर ही शुक्ति का रजत रूप से ज्ञान होता है। अन्यथाख्यातिवादी के मतानुसार तत्त्व-ज्ञान के द्वारा मिथ्याज्ञान की ही निवृत्ति होती है, पदार्थ ज्यों का त्यों बना रहता है।[2] इस प्रकार अन्यथाख्यातिवादी 'इदम् रजतम्' इस भ्रमस्थलवर्ती 'इदम' और 'रजतम्' के मिथ्यासादृश्य सम्बन्ध का ही निषेध करता है। नैयायिक उद्योतकर का कथन है कि मृगमरीचिका आदि में अर्थ का व्यभिचार न होकर ज्ञान का ही व्यभिचार होता है।[3]

अन्यथाख्यातिवादी का तर्क है कि जिस काल में 'इदम्' (प्रत्यक्ष वस्तु) का रजत रूप से ज्ञान होता है उस समय सर्वप्रथम पुरोवर्ती विषय—'इदम्' का ज्ञान होता है। इसके उपरान्त रजत एवं शुक्ति के—'प्रकाश-मानता' आदि समान धर्मों के संस्कार जाग्रत् हो जाते हैं। इसका यह फल होता है कि शुक्ति में भी रजतत्व

१. ब्र० सू० शा० भा० उपोद्घात।
२. तत्त्वज्ञानेन मिथ्योपलब्धिर्निवर्त्यते नार्थः। न्या० भा० ४-२३-५
३. द्रष्टव्य न्यायसूत्र १-१-४ वार्तिक।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भ्रमं भासने लगता है। यह समस्त ज्ञान धारावाहिक ज्ञान होता है। इस स्थल पर यह विचारणीय है कि दर्शन के साधन नेत्रों का दृश्य वस्तु—शुक्ति के साथ साक्षात् सम्पर्क होता है। 'इदम् रजत' (यह रजत है) इस उदाहरण में दृष्टा की दर्शनेन्द्रिय नेत्र का, 'इदम्' रूप से वर्तमान पुरोवर्ती विषय के साथ लौकिक सम्बन्ध है। यह पुरोवर्ती वस्तु सत् ही है। परन्तु दर्शनेन्द्रिय का रजत के साथ अलौकिक सम्बन्ध है। क्योंकि द्रष्टा के समक्ष रजत की सत्ता नहीं होती। पूर्व काल में द्रष्टा रजत का स्मरण ही नेत्र एवं दूरवर्ती रजत में सम्बन्ध स्थापित कर देता है। इसी सम्बन्ध के द्वारा दूरवर्ती रजत की उपस्थिति भासने लगती है। इस प्रकार रजत की सत्ता लौकिक न होकर अलौकिक ही है। अलौकिक रजत का लौकिक भान किस प्रकार सम्भव होता है, इस शंका के समाधान के लिये अन्यथाख्यातिवादी का कथन है कि 'इयम् शुक्तिः' (यह शुक्ति है)—इस स्थान पर 'इयम्' का शुक्ति के साथ जो सम्बन्ध होता है वही सम्बन्ध अध्यारोप के द्वारा 'इदम्' और 'रजत्' में स्थापित हो जाता है। ऐसा होने के कारण अलौकिक रजत भी लौकिक प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार रजताकार ज्ञान शुक्ति का आलम्बन प्राप्त करके रजत रूपता को प्राप्त हो जाता है।[1]

अन्यथाख्यातिवाद का निराकरण

अन्यथाख्यातिवाद के अन्यथा पद से तीन प्रकार का अन्यथात्व लिया जा सकता है। प्रथम ज्ञान का अन्यथात्व, द्वितीय ज्ञान के फल प्रकटता अथवा अनुव्यवसाय में अन्यथात्व एवं तृतीय ज्ञान विषय का अन्यथात्व ग्रहण किया जा सकता है। प्रथम पक्ष (ज्ञान का अन्यथात्व) स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि अन्यथाख्यातिवादी नैयायिक के मत में अन्यथाज्ञान – रजताकार ज्ञान का आलम्बन शुक्ति को माना जाएगा। यदि नैयायिक के सामने शुक्ति के आलम्बन का प्रश्न किया जाय तो वह ज्ञान को अपना आकार समर्पण करने अथवा ज्ञानजनित व्यवहार विषयत्व को ही आलम्बनत्व कहेगा।[2] यह दोनों ही पक्ष दूषित हैं। जो रजताकार से घिरा हुआ है उसे शुक्ति का अपना आकार देना असम्भव है। दूसरा पक्ष इसलिये नहीं स्वीकार किया जा सकता कि व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु के दर्शन—(साक्षात्कारात्मज्ञान) होने से किए गए प्रहार आदि व्यवहार के विषय—खड्ग,

---

१. रजताकारज्ञानं शुक्तिमालम्बत इति हि ज्ञानेऽन्यथात्वंवाच्यम्। विवरण प्रमेय संग्रह १-१

२. तत्र शुक्तेरालम्बनत्वंनाम किं ज्ञानं प्रति स्वाकार समर्पकत्वं। उत ज्ञान प्रयुक्त व्यवहार-विषयत्वम्? वि० प्र० स० पृ० १२०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माला, धनुष आदि प्रहार-साधन, व्याघ्रादि के आलम्बन हो जाएंगे। दूसरा पक्ष (ज्ञान के फल प्रकटता अथवा अनुव्यवसाय में अन्यथात्व) भी असंगत है। स्फुरण रूप फल का भ्रान्ति ज्ञान में अथवा सम्यक् ज्ञान में स्वरूपतः कोई वैषम्य नहीं होता। अन्तिम पक्ष (ज्ञान विषय का अन्यथात्व) भी नहीं माना जा सकता। यदि प्रश्न किया जाय कि ज्ञान विषय—वस्तु में अन्यथात्व शुक्ति का रजत के साथ तादात्म्य है अथवा रजताकार शुक्ति का परिणाम है। प्रथम पक्ष (तादात्म्य) के अनुसार अत्यन्त भेद माना जायेगा या भेदाभेद। अत्यन्त भेद मानना तो पूर्णतया असंगत ही है क्योंकि अत्यन्त भेद मानने पर दो वस्तुओं का तादात्म्य असम्भव ही कहा जायगा। भेदाभेद भी नहीं स्वीकार किया जा सकता। भेदाभेद पक्ष में तो 'खण्डो गौः' आदि खण्डनात्मक गुणविशिष्ट सामान्य विशेषभाव स्थल की तरह 'इदम् रजतम्' यह प्रतीति भी भ्रम नहीं होगी। शुक्ति का रजताकार-परिणाम भी अन्यथात्व नहीं माना जा सकता। ऐसा मानने पर भ्रमात्मक रजताकार रूप परिणाम का बाध नहीं किया जा सकता। इस प्रकार दूध का दधि परिणाम होने पर दधि का बाध नहीं किया जा सकता एवं दूध का पुनः दर्शन नहीं किया जा सकता उसी प्रकार रजताकार रूप परिणाम के स्वीकार कर लेने पर शुक्ति का पुनः दर्शन नहीं होगा। यदि पूर्वपक्षी अपने मत की पुष्टि में कहे कि जिस प्रकार कमल के विकासरूप परिणाम के कारण सूर्य-प्रकाश के अस्त होने पर पुनः कमल का पूर्ववत् मुकुलीभाव देखा जा सकता है उसी प्रकार रजतरूप परिणाम के कारणभूत दोष के दूर हो जाने पर फिर शुक्ति का रूप देखा जा सकता है। पूर्वपक्षी का यह तर्क संगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि जिस प्रकार विकसित कमल ही सूर्य के प्रकाश के अभाव में मुकुलीभाव को प्राप्त हो जाता है उस प्रकार रजत ही शुक्ति के रूप में परिणत नहीं होता। यदि अन्यथाख्याति के अनुसार इस प्रकार की प्रतीति मान ही ली जाय तो भी परिणाम पक्ष असंगत ही रहेगा। क्योंकि जिस पुरुष के नेत्रों में काचादि दोष नहीं है उसको भी रजत भ्रम होना चाहिये। एक ही दूध एक पुरुष के लिये दधि रूप में परिणत हो जाय और दूसरे के प्रति न हो, ऐसा असम्भव है।[1]

उक्त तर्कों के आधार पर 'अन्यथाख्याति' की निष्पत्ति नहीं होती।

अन्यथाख्याति के समर्थन में नैयायिक का यह तर्क भी युक्त नहीं है कि तत्त्व ज्ञान के द्वारा 'इदम् रजतम्' (यह रजत है) इस भ्रमस्थलवर्ती 'इदम्' और 'रजतम्' के मिथ्या सादृश्य सम्बन्ध का ही निषेध होता है। क्योंकि 'शुक्तिरियं नेदं रजतम्' (यह

१. विवरण प्रमेय संग्रह पृ० १२२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुक्ति है रजत नहीं है) इस प्रकार का अनुभव स्पष्ट ही प्रत्यक्ष-अनुभूयमान भ्रमकालिक रजत का ही निषेध करता है। तत्त्व ज्ञानी, द्रष्टा यह न कहकर कि 'इदम्' और 'रजतम्' का सादृश्य सम्बन्ध नहीं है, यही कहता है कि यह रजत नहीं है वरन् शुक्ति है।[1] इसके अतिरिक्त अन्यथाख्यातिवादी द्वारा स्थापित पुरोवर्ती 'इदम्' और 'रजतम्' का सम्बन्ध असत् सम्बन्ध है। इसलिये 'इदम्' और 'रजतम्' के सम्बन्ध का निषेध असत् का ही निषेध होगा। इस प्रकार अन्यथाख्यातिवादी नैयायिक शून्यवादी बौद्ध के ही समीप आ जाता है। अन्यथाख्यातिवादी नैयायिक शून्यवादिता के उक्त आरोप से यह कहकर मुक्त नहीं हो सकता कि सत् के सम्पर्क के कारण असत् सम्बन्ध का भी ज्ञान हो जाता है। ऐसा स्वीकार करने पर तो शृंगधारिणी गौ के सम्पर्क से सर्वथा असत् मानव शृङ्गों का ज्ञान भी सम्भव होने लगेगा। इसके अतिरिक्त सत् के साथ असत् सम्बन्ध घट भी नहीं सकता।[2]

अन्यथाख्यातिवादी का कथन है कि पूर्वकाल में दृष्ट रजत का स्मरण ही नेत्र एवं दूरवर्ती रजत में सम्बन्ध स्थापित कर देता है इस प्रकार अन्यथाख्यातिवादी के मतानुसार भ्रमवश दूरवर्ती रजत का सम्बन्ध पुरोवर्ती 'इदम्' (विषय) से हो जाता है। यह कथन युक्तिपूर्ण नहीं है। भ्रमकालिक रजत ज्ञान, रजत का दूरवर्ती होना सिद्ध नहीं करता। भ्रमकाल में तो 'इदम्' (पुरोवर्ती विषय) ही रजत रूप में भासता है। इसीलिये तो द्रष्टा को शुक्ति का 'इदम' रूप से ज्ञान होता है और 'इदम्' से सम्बन्धित ही रजत का ज्ञान होता है। भ्रम दूर होने पर किसी दूरवर्ती रजत का निषेध न होकर भ्रमवश प्रत्यक्ष रूप से अनुभूयमान रजत का ही निषेध होता है। इसलिये अन्यथाख्यातिवादी की दूरवर्ती रजत की कल्पना का तर्क स्वतः धराशायी हो जाता है। अन्यथाख्यातिवादी यह कह सकता है कि अन्य किसी स्थल पर रजत की सत्ता स्वीकार किये बिना शुक्ति में रजत का अनुभव नहीं हो सकता। इस मत के विरोध में वेदान्ती का तर्क है कि यद्यपि ज्ञान का सम्बन्ध विषय से है तथापि शुक्ति में प्रातिभासिक रजत के मान लेने पर किसी अन्य स्थल पर रजत की सत्ता स्वीकार करने का प्रश्न नहीं उठता। अन्यथाख्यातिवादी का कथन है कि किसी अन्य स्थल में रजत की सत्ता स्वीकार न करने पर भ्रम-निवृत्ति का कोई परिणाम नहीं होगा। भ्रम-निवृत्ति के द्वारा यही सिद्ध होता है कि दृश्यमाण रजत की सत्ता शुक्ति में न होकर किसी अन्य स्थल में है। वेदान्ती का कथन है कि किसी अन्य स्थल पर रजत की सत्ता स्वीकार कर लेने पर तो भ्रम-निवृत्ति का कोई तात्पर्य नहीं होगा। भ्रम-निवृत्ति होने पर किसी दूरवर्ती रजत का निषेध न

१. देखिए—नृसिंहाश्रम की टीका संक्षेप शारीरक १–२० पर। २. वही।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होकर शुक्ति में दृश्यमान रजत का ही निषेध किया सकता है। इस प्रकार अन्यथा-ख्यातिवादी का उक्त तर्क भी असंगत है।

अन्यथाख्यातिवादी ने चक्षु इन्द्रिय का दूरवर्ती रजत के साथ अलौकिक सम्बंध माना है। अन्यथाख्यातिवादी का कथन है कि अलौकिक सम्बन्ध के ही कारण द्रष्टा भ्रमवश दूरवर्ती रजत के गुणों का आरोप शुक्ति में कर लेता है। इस सिद्धान्त के स्वीकार कर लेने पर अन्यथा ख्यातिवादी नैयायिक का 'अनुमान' संबंधी असिद्ध हो जायेगा। 'अनुमान' के द्वारा एक ऐसे विषय का ज्ञान होता है जिसका इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं होता। परन्तु जैसा कि नैयायिक का कथन है अलौकिक प्रत्यक्ष के मानने पर तो अनुमान को अवसर ही नहीं रह जाता। इस प्रकार नैयायिक के मत में तो पर्वतादि में अग्नि आदि का अनुमान न होकर अलौकिक प्रत्यक्ष ही होना चाहिए। इस प्रकार अलौकिक प्रत्यक्ष के मानने पर अनुमान के वैयर्थ्य की आपत्ति हो जायेगी।[१] अतः अन्यथाख्यातिवादी का सिद्धान्त अयुक्त है।

४—आत्मख्यातिवाद का सिद्धान्त

आत्मख्यातिवाद के सिद्धान्त का प्रवर्तक विज्ञानवादी बौद्ध है। आत्मख्यातिवादी बौद्ध समस्त विषयों की बाह्य-सत्ता न मानकर बुद्धिगत सत्ता ही स्वीकार करता है। आत्मख्यातिवादी रजत की सत्ता किसी भी स्थान पर नहीं मानता परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि रजत असत् है। यदि रजत असत् हुआ होता तो उसका शुक्ति में ज्ञान सम्भव न होता। इसलिये आत्मख्यातिवादी बौद्ध मत में बाह्य विषयों की आन्तरिक सत्ता मानता है। आत्मख्यातिवादी के मतानुसार बुद्धिगत विषयों का बाह्य रूप से ज्ञान ही भ्रम है। नेत्रगत दोष के द्वारा रजत सम्बन्धिनी अनादिवासना शुक्ति में रजत विभ्रम की जननी है। आत्मख्यातिवादी के मतानुसार बाह्य अर्थ के अभाव में वासनाओं की विचित्रता से ही विभिन्न प्रत्ययों की विचित्रता उत्पन्न होती है। आत्मख्यातिवादी बौद्ध का कथन है कि इन्द्रिय सन्निकर्ष के बिना भी जिसका प्रत्यक्ष होता है वह रजत बुद्धि रूप है।[२] इस प्रकार आत्मख्यातिवादी के मत में रजतादि भ्रम का आधार चित्त है न कि कोई बाह्य विषय।

१. ब्रह्मविद्याभरण पृ० २२।
२. विमतं रजतं बुद्धिरूपम्, सं प्रयोगमन्तरेणापरोक्षत्वात्।
विवरण प्रमेय संग्रह पृ० १२३ (अच्युतग्रन्थमाला काशी)

1. The stimulus to erroneous experience comes wholly from within and not in the least from without.
(Hiriyanna, Introduction to इष्टसिद्धि)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मख्यातिवादी बौद्ध ने शुक्ति में रजतादि की सिद्धि के अर्थ चार प्रकार के प्रत्यय माने हैं।[1] ये प्रत्यय निम्नलिखित हैं—

(१) सहकारी प्रत्यय—प्रत्येक ज्ञान में सहकारी प्रत्यय की आवश्यकता होती है। घटादि विषयों के ज्ञान के लिये प्रकाश एवं सामीप्य आदि सहकारी प्रत्ययों की आवश्यकता होती है। क्योंकि समीप होने पर भी अन्धकार में घटादि विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रकाशादि के रहने पर भी दूरवर्ती घट का ज्ञान सम्भव नहीं है।

(२) आलम्बन प्रत्यय—किसी भी विषय के ज्ञान में उस विषय का आलम्बन भी हेतु होता है। घट के ज्ञान का कारण बाह्य घट है। यही घट ज्ञान का आलम्बन एवं आधार है।

(३) समनन्तर प्रत्यय – मनःस्थित पूर्ववर्ती ज्ञान के आधार पर ही किसी विषय का ज्ञान सम्भव होता है। इसी को समनन्तर प्रत्यय कहते हैं। घट-पटादि के ज्ञान के लिये चित्त में पूर्वस्थित घट-पटादि ज्ञान का होना आवश्यक है।

(४) अधिपति प्रत्यय—इन्द्रियां, ज्ञान की नियामक होने के कारण, अधिपति हैं। बिना इन्द्रियों के किसी बाह्य विषय का ज्ञान नहीं हो सकता। यही अधिपति प्रत्यय है।

इस प्रकार आत्मख्यातिवादी का कथन है कि उक्त प्रत्यय चतुष्टय की अपेक्षा करके ही चित्त एवं चित्त के विषयों की उत्पत्ति होती है।

आत्मख्यातिवाद का निराकरण

आत्मख्यातिवादी बौद्ध के मत में समस्त विषयों की सत्ता बाह्य न होकर चित्तगत ही है। परन्तु आत्मख्यातिवादी का यह मत निराधार है। भ्रमकालिक रजत का ज्ञान रजत की बाह्य सत्ता को सिद्ध करता है। भ्रम-निवृत्ति के पश्चात् शुक्ति एवं रजत का भेद स्पष्ट ही हो जाता है। आत्मख्यातिवादी का यह कथन युक्तियुक्त न होगा कि भ्रम-निवृत्ति के द्वारा रजत का निषेध न होकर रजत की बाह्य सत्ता मात्र का निषेध होता है और रजत की बाह्य सत्ता का निषेध होने पर आन्तरिक सत्ता स्वतः सिद्ध ही है। आत्मख्यातिवादी बौद्ध के उक्त तर्क की असंगति का कारण यह है कि भ्रमस्थल में बाह्य रजत का निषेध होने पर भी रजत का

---

१. ननु चतुर्विधान् हेतुन प्रतीत्य चित्त चैत्या उत्पद्यन्त इति हि सौगतानां मतम्।
—विवरण प्रमेय संग्रह १-१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सार्वत्रिक निषेध नहीं समझा जा सकता।[1] शंकराचार्य ने आत्मख्यातिवाद के समर्थक विज्ञानवादी बौद्ध के मत का खण्डन करते हुये लिखा है कि अर्थ से अतिरिक्त भी विज्ञान स्वयं ही अनुभव में आता है, यह कथन अनुचित है। क्योंकि आत्मा में क्रिया का विरोध है।[2] विज्ञानवादी बौद्ध का यह कथन भी उचित नहीं है कि जो अन्तःज्ञेय रूप है उसका 'बहिर्वत्' अवभास होता है। इस कथन के निराकरण के सम्बन्ध में शंकराचार्य ने कहा है कि विज्ञानवादी बौद्ध भी सर्व लोक-प्रसिद्ध बाह्य जगत् में अवभासमान उपलब्धि को मानते ही हैं। इसीलिये बाह्य अर्थ का प्रत्याख्यान करते हुये 'बहिर्वत्' इस प्रकार 'वत्' शब्द का प्रयोग करते हैं। यदि बाह्य-विषयों को स्वीकार न करते तो 'बहिर्वत्' का प्रयोग ही क्यों करते? शंकराचार्य का कथन है कि 'विष्णुमित्र' वन्ध्यापुत्र सा भासता है, इस प्रकार का कहीं भी प्रयोग नहीं देखा जाता। इसलिये अनुभव के अनुसार तत्त्व स्वीकार करने वालों को यही स्वीकार करना चाहिये कि बाह्य अर्थ का ही अवभास होता है न कि यह कहना चाहिये कि 'बहिर्वत् भासता है'।[3] आचार्य शंकर का कथन है कि बौद्ध-दार्शनिक का यह कथन नितान्त असंगत है कि बाह्य अर्थ के बिना भी वासना-वैचित्र्य से ही ज्ञान-वैचित्र्य हो सकता है। शंकराचार्य का तर्क है कि बाह्यार्थों की अनुपलब्धि रहने पर वासनाओं की विचित्रता उत्पन्न नहीं हो सकती।[4] वासनाओं के अनादि मानने पर तो अन्धपरम्परा से व्यवहार का लोप करने वाली अनवस्था उत्पन्न हो जायेगी। इसलिये आत्मख्यातिवादी का बाह्यार्थ का निषेध करना अत्यन्त अनुचित है।

आत्मख्यातिवादी बौद्ध ने जिन चार प्रत्ययों की कल्पना की है, वे भी घटित नहीं होते। अतः सहकारी, अधिपति, समनन्तर एवं आलम्बन हेतुओं की अपेक्षा करके चित्त एवं चैत्य (चित्त के विषय) उत्पन्न होते हैं, इस मत को नहीं माना जा सकता। इस स्थल पर उक्त चारों प्रत्ययों के सम्बन्ध में विवेचन किया जायगा।

सहकारी प्रत्यय के नाम से ज्ञात 'आलोक' आदि से रजत के आकार का उदय नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि आलोक आदि स्पष्टता मात्र के प्रति

---

१. कल्पतरू, पृ० २६ (निर्णयसागर)। २. ब्र० सू० शा० भा० २-२-२८

३. तस्माद् यथानुभवं तत्त्वमभ्युपगच्छद्भिर्बहिरेवा व भासत इति युक्तमभ्युपगन्तुं न तु बहिर्वदव भासत इति।

—ब्र० सू० शा० भा० २-२-२८

४. न भावो वासनानामुपपद्यते, त्वत्पक्षे नुपलब्धेर्बाह्यानामर्थानाम्।

ब्र० सू० शा० भा० २-२-२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही हेतु हो सकते हैं। अधिपति प्रत्यय—चक्षुरादि से भी रजताकार नहीं बन सकता। चक्षुरादि तो केवल विषय के नियममात्र के हेतु हैं। इनमें नवीन रजताकार के उत्पादन की क्षमता नहीं है। समनन्तर प्रत्यय नामक पूर्वज्ञान भी रजताकार के सिद्ध करने में हेतु नहीं हो सकता। विजातीय घट-ज्ञान के अनन्तर विजातीय रजत भ्रम का उदय देखा जाता है। परन्तु समनन्तर प्रत्यय केवल सजातीय उत्तर ज्ञान कहलाता है, उसमें विजातीय ज्ञान की उत्पत्ति कराने की सामर्थ्य नहीं होती। आलम्बन प्रत्यय नामक बाह्य पदार्थ से भी रजताकार की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि जब आत्मख्यातिवादी बौद्ध के मत में बाह्य पदार्थ को स्वीकार ही नहीं किया गया है तो विज्ञान को रजत का बाह्य आकार ही किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। बौद्ध-दार्शनिक संस्कार की सामर्थ्य से यदि ज्ञान की रजताकारता सिद्ध करने का समाधान प्रस्तुत करे तो यह नहीं घट सकता। क्योंकि संस्कार के स्थायी मानने पर बौद्ध दार्शनिक का अभिमत 'सर्वक्षणिकत्व' नहीं सिद्ध हो सकता। इसके अतिरिक्त संस्कार के क्षणिक मानने पर तो बौद्ध—दार्शनिक के विज्ञानमात्रवाद की सिद्धि ही नहीं हो सकती। क्योंकि संस्कार भी ज्ञेय हो जायगा। बौद्ध-दार्शनिक अपने मत की पुष्टि में कहता है कि अनादि सिद्ध ज्ञानधारा में किसी समय पूर्व में उत्पन्न हुआ ही रजत ज्ञान संस्कार है। यद्यपि यह संस्कार विजातीय घट—पट आदि विषयक अनेक ज्ञानों से व्यवहित हो गया है तथापि कदाचित् सजातीय दूसरे रजत ज्ञान को उत्पन्न कर देता है। जैसे व्रीहि का बीज अनेक अंकुर आदि कार्यों के व्यवधान रूप में रहते हुए भी सजातीय दूसरे व्रोहि बीजों को उत्पन्न करता है उसी प्रकार व्यवहित भी संस्कार सजातीय ज्ञान को उत्पन्न कर सकता है। यदि पूर्व बीज से उत्तर बीज की उत्पत्ति न मानकर पूर्व बीज से उत्पन्न हुए अंकुर आदि की परम्परा से बीजान्तर की उत्पत्ति मान ली जाय तो प्रकृतस्थल में भी पूर्व रजत ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान परम्परा को ही संस्कार मान लिया जायगा। इस प्रकार प्रथम रजत ज्ञान भी पूर्व रजत ज्ञान से उत्पन्न होता है। अतः अनादि वासना के द्वारा उपस्थापित रजत ज्ञानरूप ही होता हुआ भ्रान्ति के द्वारा 'बहिर्वत्' प्रतीत होता है। पूर्वपक्षी बौद्ध की उक्त विचारधारा का खण्डन करते हुए वेदान्ती का कथन है कि बौद्ध—दार्शनिक का अलौकिक रजत जन्म—रहित है अथवा लौकिक रजत के समान ही उत्पन्न होता है? यदि जन्म—रहित है तो वह उत्पन्न होने वाले ज्ञान का स्वरूप नहीं हो सकता। इसके विपरीत यदि अलौकिक रजत का जन्म माना जायगा तो यह शंका होगी कि उसका जन्म बाह्य—अर्थ से होता है अथवा ज्ञान से। बाह्य अर्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से तो रजत का जन्म सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि विज्ञानवादी बौद्ध तो बाह्य अर्थ को स्वीकार ही नहीं करता। इसके अतिरिक्त विशुद्ध ज्ञान भी मोक्ष-कारूप होने के कारण रजत का उत्पादक नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त यदि दूषित कारणों से उत्पन्न ज्ञान से रजत की उत्पत्ति मानी जाय तो यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि दूषित कारणों से उत्पन्न ज्ञान से रजत की प्रतीति मानने पर यह शंका होगी कि रजत की जनक प्रतीति ही रजत को ग्रहण करती है अथवा अन्य प्रतीति। जन्य और जनक के क्षणिक होने के कारण भिन्न कालिक होने से रजत की प्रत्यक्ष प्रतीति के अभाव का प्रसंग उपस्थित हो जायेगा। जन्य के उत्पन्न होने पर क्षणिक जनक की प्रतीति जब नष्ट हो गई तब जनक प्रतीति स्वरूप जन्य (रजत) की प्रतीति का प्रत्यक्ष कैसे सम्भव हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रतीति भी अदूषित कारणों से उत्पन्न होकर भ्रम विषयक रजत को ग्रहण कराने वाली नहीं हो सकती। क्योंकि अन्य प्रतीति में उक्त सामर्थ्य मानने से तो सभी यथार्थ ज्ञान भ्रम के स्थल हो जायेंगे। दूषित कारणों से उत्पन्न प्रतीति यदि रजत से उत्पन्न हुई है तो रजत को, अर्थ क्रियाकारकत्व (व्यवहार प्रयोजकता) होने के कारण सत् होने से बाह्य अर्थ मानना ही चाहिये। यदि वह प्रतीति रजत से जन्य नहीं है तो उस प्रतीति का विषय रजत नहीं हो सकता, क्योंकि बौद्ध-दार्शनिक के अनुसार ज्ञान में आकार का समर्पक हेतु ही विषय होता है। इस प्रकार आत्म-ख्यातिपक्ष में रजत की प्रतीति सिद्ध नहीं हो सकती।[1]

इस प्रकार आत्मख्यातिवादी बौद्ध का सिद्धान्त भी अत्यन्त दोषपूर्ण है।

५—असत्ख्यातिवाद का सिद्धान्त

असत्ख्यातिवाद के सिद्धान्त का प्रवर्तक शून्यवादी माध्यमिक बौद्ध है। इस सिद्धान्त के अनुसार शुक्ति आदि में रजतादि का अध्यास असत् है। अधिष्ठान-रूप शुक्ति में रजत के असत् होने के कारण, रजतशुक्ति में विपरीत धर्म की कल्पनामात्र है।[2] इस विपरीत धर्म की कल्पना का कारण अविद्या है। अविद्या के ही कारण पूर्व संस्कारों के आधार पर रजतादि भ्रम उत्पन्न होते हैं। असत्-ख्यातिवादी शुक्ति में रजत एवं रज्जु में सर्प की ख्याति को सत् न मानकर असत् मानता है। ख्याति के असत् होने के कारण ही इस सिद्धान्त का नाम 'असत्ख्यातिवाद'

१. तस्मादात्मख्यातिपक्षेरजतमेव न प्रतीयेत। वि० प्र० स० १–१

२. अन्ये तु यत्र यदध्यासः, तस्यैव विपरीत धर्मत्वकल्पनामाचक्षते।

ब्र० स० शा० भा० उपोद्घात।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ा है। असत्ख्यातिवादी के मत में अधिष्ठान शुक्ति एवं अध्यस्त रजत दोनों ही असत् हैं। परन्तु यदि शून्यवादी दार्शनिक से पूछा जाय कि यदि सर्वत्र असत् ही असत् है तो बिना अधिष्ठान के रजतादि का अध्यास कैसे सम्भव होगा, क्योंकि बिना अधिष्ठान के कोई भी कल्पना उपपन्न नहीं हो सकती।[1] इसके उत्तर में शून्यवादी का कथन है कि जिस प्रकार निराधार 'केशोण्डूक'[2] का भ्रम हो जाता है उसी प्रकार असत् शुक्ति में भी रजतादि भ्रम की उत्पत्ति हो जायेगी। शुक्ति में रजतादि विपरीत धर्मों का बाध ही रजतादि के असत् होने का प्रमाण है। इस प्रकार असत्ख्यातिवादी के मत में रजतादि असत् हैं।

असत्ख्यातिवाद का निराकरण

असत्ख्यातिवाद के समर्थक शून्यवादी बौद्ध हैं। असत्ख्यातिवादी माध्यमिक के मत में शून्य की सत्ता स्वीकार की गई है। शंकराचार्य ने शून्यवादी के युक्तिरहित मत के निराकरण की ओर विशेष ध्यान न देते हुए कहा है कि शून्यवादी का पक्ष तो सर्वप्रमाण विरुद्ध है। अतः उसके निराकरण का अवसर नहीं उपस्थित होता।[3] वास्तव में असत्ख्यातिवाद के समर्थक शून्यवादी का रजतादि को असत् कहना उचित नहीं है। क्योंकि यदि रजतादि असत् होते तो उनका व्यावहारिक ज्ञान न हुआ होता। इस के अतिरिक्त रजतादि के असत् मानने पर रजतादि भ्रम की उत्पत्ति भी सिद्ध नहीं हो सकती। असत्ख्यातिवादी का यह कथन भी युक्तियुक्त नहीं है कि अविद्या के द्वारा असद् विषय का ज्ञान होता है। यदि अविद्या के द्वारा असद् विषय का ज्ञान स्वीकार किया जायगा तो यह आशंका होगी कि अविद्या असद् विषय की उत्पादिका है अथवा केवल प्रदर्शिका।[4] अविद्या को उत्पादिका तो कहा नहीं जा सकता क्योंकि शून्यवादी के मत में असत् को, शून्य होने के कारण उत्पन्न नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त अविद्या की सहायता से किसी असद् विषय की उत्पत्ति तो देखी जा सकती है परन्तु अविद्या में असद् विषय के दर्शन

---

१. न हि निरास्पदा काचित्कल्पनोपपद्यते। भा० का० २–३३

२. केशोण्डूक (– the appearnce of a bright wooly mass when the closed eye is pressed with the finger–tip.
Brhma Sutra Chatuhsutri, (Oriental Book Agency Poona 1940)

३. ब्र० सू० शा० भा० २–२–३१

४. A.K.Ray Chawdhuri, The Doctrine of Maya, P. 42

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कराने की क्षमता नहीं है। इसलिये अविद्या को असद् विषय के ज्ञान का कारण मानना उचित नहीं है।

शून्यवादी माध्यमिक ने निराधार भ्रम को सिद्ध करने के लिये कहा है कि जिस प्रकार निराधार 'केशोण्ड्रक' का भ्रम हो जाता है उसी प्रकार असत् शुक्ति में भी रजत-भ्रम उत्पन्न हो जाता है। यह तर्क असंगत है। शून्यवादी का 'केशोण्ड्रक' को निराधार कहना उचित नहीं है। क्योंकि 'केशोण्ड्रक' का अधिष्ठान—प्रकाश की किरणें है। इसलिये 'केशोण्ड्रक' निराधिष्ठान नहीं है।[1] इसलिये बिना शुक्ति आदि अधिष्ठान के रजतादि भ्रम की उत्पत्ति नहीं हो सकती अतः असत्ख्यातिवाद भी दूषित सिद्धान्त है।

शंकराचार्य के अनिर्वचनीय-ख्यातिवाद की स्वरूपप्रतिष्ठा

शंकराचार्य ने अद्वैत-वेदान्त सम्मत अनिर्वचनीयख्यातिवाद के सिद्धान्त की स्थापना की है। सिद्धान्त सामरस्य एव तर्क-योजना की दृष्टि से शंकराचार्य का अनिर्वचनीयख्यातिवाद का सिद्धान्त ही मान्य है। परनिरुक्त्यभिमान निराकरण में पटीयान् श्री हर्ष ने 'मम चा निर्वचनीयतैव सर्वप्रतीति व्यवहारव्यवस्थितिपर्यनुयोगवाणवारणाय वज्रवारवाणायमाना विजयते' कहकर अनिर्वचनीयख्याति की प्रशंसा की है ख्याति सम्बन्धी अन्य सिद्धान्तों की आलोचना करते समय शंकराचार्य ने लिखा है कि अन्य वस्तु में, अन्य वस्तु के धर्मों की अवभासता के सम्बन्ध में सभी में एकमत्य है।[2] परन्तु सभी ख्यातिवादियों के ख्याति-निरूपण की व्यवस्था भिन्न है। शंकराचार्य ने शुक्ति में रजतरूप अध्यास को स्मृतिरूप कहा है। शुक्ति रूप अधिष्ठान में स्मृतिरूप रजत अध्यस्त होता है।[3] भ्रमस्थल में शुक्तिरूप अधिष्ठान सत् एवं अध्यस्तरूप रजत असत् है परन्तु यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि भ्रमस्थलवर्ती रजतादि की सत्ता शशशृंग अथवा बन्ध्यापुत्र के समान असत् नहीं है। इसलिये रजत की प्रातिभासिक सत्ता स्वीकार्य है। यह प्रातिभासिक रजत अनिवर्चनीय है। शुक्ति में अध्यस्त रजत को 'सच्चेन्न बाध्येत' (सत् का बाध नहीं

1. The शून्यवादिन् quoted the cognition of केशोण्डूक as an example of substratless cognition. But he is wrong. of The rays of light are the substrate of केशोण्डक।

—Brahma Sutra Chatubsutri, P. 15.

२ सर्वथापि त्वन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति। ब्र० सू० शा० भा० उपोद्घात।

३ ब्र० सू० शा० भा० उपोद्घात।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता) के अनुरूप त्रिकालाबाधित 'सत्' नहीं कहा जा सकता। क्योंकि भ्रम निवृत्ति के पश्चात् शुक्ति का ही ज्ञान होता है न कि अध्यस्त रजत का। इसलिये प्रातिभासिक रजत का बाध होने के कारण रजत को 'सत्' नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत रजत की प्रतीति होने के कारण रजत को पूर्णतया असत् भी नहीं कहा जा सकता। इसीलिये सद्-असत् से विलक्षण होने के कारण ही शांकर-दर्शन में अध्यस्त रजत को अनिर्वचनीय कहा गया है। इन रजतादि समस्त भ्रमों की जननी अविद्या है। अध्यास को शंकराचार्य ने अविद्या कहा है।[1] शुक्ति का रजतवत् अवभासना एवं एक चन्द्र के साथ द्वितीय चन्द्र-दर्शन, ये सब अविद्या-जन्य होने के कारण अनिर्वचनीय हैं।[2] अतः शांकर-दर्शन के अनुसार शुक्ति आदि में रजतादि की ख्याति सत् अथवा असत् न होकर अनिर्वचनीय है क्योंकि जब रजतादि की जननी अविद्या ही अनिर्वचनीय है तो तज्जन्य रजतादि भी अनिर्वचनीय ही होंगे। यही शंकराचार्य का अनिर्वचनीयख्यातिवाद है।

वेदान्त सम्मत अनिर्वचनीयख्याति के विपरीत पूर्वपक्षी का कथन है कि सत् का ही ज्ञान एवं असत् का ही निषेध होने के कारण सदभिन्न का ज्ञान नहीं हो सकता एवं असत् भिन्न का निषेध नहीं हो सकता। इसलिये अनिर्वचनीयख्याति के अनुरूप सदसद्भिन्न रजत का ज्ञान एवं बाध दोनों ही असम्भव हैं। पूर्वपक्षी की शंका का समाधान करते हुए वेदान्ती का कथन है कि वेदान्तसम्मत सत्, प्रातिभासिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक दृष्टि से तीन प्रकार का है। यद्यपि पारमार्थिक सत् ही एक पूर्ण सत्य है परन्तु प्रातिभासिक सत् भी अवभासित होने के कारण भ्रमकाल में सत् ही है। प्रातिभासिक रूप से सत् रजत का प्रत्यक्ष एवं उत्तरकाल में बाध होता है। इसलिये पूर्वपक्षी का उक्त तर्क असंगत है।

वेदान्ती एवं पूर्वपक्षी के मतभेद का कारण यह है कि वेदान्ती के मत में 'सत्' त्रिकालाबाधित होने के कारण निषिध्य नहीं हो सकता। सिद्धान्त अद्वैत का पक्षपाती होने के कारण परमार्थ रूप से एक सत् को ही स्वीकार करता है। उस अद्वैत मत् का बाध सम्भव नहीं है। साथ ही वेदान्ती के मत में असद् (अलीक) का ज्ञान भी नहीं होता। इसीलिये प्रत्यक्षानुभूति रजत सत् अथवा असत् न होकर अनिर्वचनीय है। इसके विपरीत पूर्वपक्षी का तर्क है कि सद् विषय का ही ज्ञान एवं असद्

१. तमेतमेवं लक्षणमध्यासं पण्डिता 'अविद्या' इति मन्यन्ते'। ब्र० सू० शा० भा० १-१-१।

२. ब्र० सू० शा० भा० उपोद्घात।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय का ही निषेध सम्भव है। भ्रमस्थलवर्ती रजत के सत् अथवा असत् न होने के कारण वेदान्ती के मत में रजत के प्रत्यक्ष एवं बाध का तर्क अयुक्त है। वेदान्ती का कथन है कि भ्रमस्थल में रजत का ज्ञान एवं उत्तरकाल मे उसका बाध रजत की अनिर्वचनीयता को सिद्ध करते हैं। भ्रमवर्ती रजत एवं सर्पादि की सत्ताओं और उनके उत्तरकालिक बाध को पूर्वपक्षी को मानना ही होगा। यह अनिर्वाच्य विषय ही है जो ज्ञान एवं निषेध दोनों का ही विषय है।[1] वेदान्ती का कथन है कि परमार्थ सत् एव वन्ध्यापुत्र रूप असत् प्रत्यक्ष ज्ञान एवं बाध के विषय नहीं हो सकते। इसलिए अनिर्वाच्य विषय का ही प्रत्यक्ष एवं बाध सम्भव है।[2]

अनिर्वचनीयता का खण्डन करते हुये पूर्वपक्षी का कहना है कि भ्रमकाल में 'इदम् रजमू' (यह रजत है) ज्ञान के अनुरूप रजत की सत्ता एवं उत्तर काल में 'नेदं रजतम्' (यह रजत नहीं है) के द्वारा रजत का बाध होने के कारण रजत की सत्ता का निषेध सिद्ध होता है। इसलिये रजतादि को अनिर्वचनीय (सत् एवं असत् से विलक्षण) कहना उचित नहीं है। रजतादि की अनिर्वचनीयता के सम्बन्ध में वेदान्ती का विचार है कि अधिष्ठान रूप शुक्ति एवं उसमें अध्यारोपित रजत, इन दोनों का अनिर्वचनीय सम्बन्ध होने के कारण मिथ्या रजत भी सत् प्रतीत होता है। इसका कारण यह कि अधिष्ठान 'सत्त्व' ही अध्यस्त में भासमान होता है। इसलिये शुक्ति रूप अधिष्ठान में अध्यस्त प्रातिभासिक रजत आदि के सत्त्व की पृथक् कल्पना करना उपयुक्त न होगा।[3] परन्तु परमार्थ सत का ज्ञान हो जाने पर अनिर्वाच्य सम्बन्ध जन्य अनिर्वाच्य रजत का भी बाध हो जाता है। इस अवस्था में एकमात्र अधिष्ठान ही अद्वैत सत्य रूप में वर्तमान रह जाता है। यद्यपि 'रजतमिदम्' (यह रजत है और 'नेदं रजतम्' (यह रजत नहीं है) रूप दो भिन्न ज्ञान रजत की सत्ता एवं रजत के निषेध को सिद्ध करते हैं परन्तु भ्रमकालिक रजत की सत्ता और उसके निषेध के सम्बन्ध में यदि एक साथ विचार किया जाय तो रजत को अनिर्वचनीय ही स्वीकार करना होगा। इसके अतिरिक्त अर्थापत्ति के द्वारा रजत की अनिर्वचनीयता

1. It is the anirvachya object that can be a content of perception and an object of negation too.
—The Doctrine of Maya, P. 47, II Edition, Calcutta.

२. लघुचन्द्रिका पृ० ६३५ (निर्णय सागर)

३. अधिष्ठानसत्त्वेनैवाध्यस्तं भासते, नान्यत्सत्त्वान्तरमित्येवमुख्यः सिद्धान्तः।
अद्वैतरत्नरक्षणम् पृ० २७ (निर्णयसागर)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिद्ध ही है। रजत की अनिर्वचनीय सत्ता को बिना स्वीकार किये भ्रम निवृत्ति के पश्चात् भी रजत का निषेध नहीं किया जा सकता।[1]

अनिर्वचनीयख्यातिवादी वेदान्ती के विरोध में पूर्वपक्षी का तर्क है कि अन्ध-परम्परा से यदि रजत को अनिर्वचनीय स्वीकार भी कर लिया जाय तो यह युक्ति-युक्त न होगा क्योंकि भ्रमस्थलवर्ती रजत का बाध होने पर यही कहा जाता है कि भ्रान्ति-ज्ञान-जन्य रजत असत् है। भ्रम निवृत्ति के पश्चात् यह नहीं कहा जाता कि भ्रमस्थलवर्ती रजत अनिर्वचनीय है। इस तर्क के विपरीत वेदान्ती का कथन है कि यद्यपि भ्रम-निवृत्ति के पश्चात् रजत का सर्वथा बाध हो जाता है, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भ्रमवर्ती रजत सर्वथा असत् है। प्रातिभासिक रजत ही दृष्टा की भ्रान्ति के कारण व्यावहारिक रूप से 'सत्' प्रतीत है। इसीलिये द्रष्टा रजत प्राप्ति की कामना से प्रातिभासिक रजत की ओर अग्रसर होता है। परन्तु भ्रम निवृत्ति के द्वारा यह सिद्ध होता है कि रजत मिथ्या है। यहाँ यह विचार-योग्य है कि भ्रम निवृत्ति के होने पर रजत की प्रातिभासिकता का बाध न होकर प्रातिभासिक रजत की व्यावहारिकता का ही बाध होता है। दुष्ट नेत्रों वाला व्यक्ति जब रजत की कामना से पुरोवर्ती 'इदम्' की ओर अग्रसर होता है तो उसे यह ज्ञान होता है कि प्रातिभासिक रजत व्यावहारिक रूप से 'असत्' है। इसके अतिरिक्त वेदान्ती के बाध का तात्पर्य त्रैकालिक बाध से है। यदि प्रातिभासिक रजत का निषेध किया जायगा तो उसकी त्रैकालिक सत्ता का निषेध नहीं किया जा सकता। भ्रमस्थल में रजत की प्रातिभासिक प्रतीति तो सत् ही कही जायेगी। परन्तु प्रातिभासिक रजत की व्यावहारिक सत्ता न कभी थी, न वर्तमाय काल में है और न भविष्यत् काल में होगी। इस स्थल पर यह द्रष्टव्य है कि प्रातिभासिक रजतगत—निषिध्य व्यावहारिकता रजत की अंग न होकर विशेषता रूप है। इस लिये प्रातिभासिक रजत का, व्यावहारिक रूप ग्रहण करने पर ही त्रैकालिक बाध होता है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भ्रमस्थलगत रजत की प्रातिभासिक एवं व्यावहारिक, ये दोनों पृथक् सत्तायें हैं। यह भेद तो उत्तरकालिक है। इस प्रकार भ्रमस्थल में प्रातीतिक एवं व्यावहारिक सत्ता का भेद न होने के कारण 'नेदं रजतम्' (यह रजत नहीं है) रूप बाध होने पर ही दोनों के भेद की प्रतीति होती है।[2]

१. देखिये—न्यायमकरन्द पर चित्सुख की टीका, पृ० ११३ (चौखम्बा संस्करण)
२. 'इदं रूप्यमिति' भ्रमे प्रातीतिक व्यावहारिक रूप्ययोरभेदावगाहनात् नेदं रूप्यमिति बाधस्त-त्रयोर्भेदमेवाव गाहते। लघुचन्द्रिका पृ० ६४६ (निर्णयसागर) १९१७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनिर्वचनीयख्यातिवाद के उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि सत्-ख्याति आदि सिद्धान्तों के अन्तर्गत जो दोष पाये जाते हैं वे अनिर्वचनीयवाद के सम्बन्ध में नहीं देखे जाते। इसलिये शांकरवेदान्त का अनिर्वचनीयख्यातिवाद एक युक्ति-सम्पन्न सिद्धान्त है।

माया विषयमूलक है अथवा विषयिप्रधान, इस समस्या पर विचार-विमर्श

अनिर्वचनीय माया की विषयमूलकता एवं विषयिप्रधानता विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय ही है। जिस प्रकार एक पुरुष में पितृत्व और पुत्रत्व दोनों प्रकार की बुद्धि उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार माया भी विचार-भेद से विषय-मूलक एवं विषयिप्रधान दोनों प्रकार की सिद्ध होती है। विचार-वैचित्र्य ही माया के विभिन्न स्वरूप-विधान का हेतु है। इस स्थल पर माया की विषयमूलकता एवं विषयि-प्रधानता के सम्बन्ध में विचार करना अपेक्षित है।

शांकर वेदान्त में माया को ईश्वर की अनादि शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। माया की भी दो शक्तियां हैं—एक आवरणशक्ति और दूसरी विक्षेप शक्ति। आवरण और विक्षेप शक्तियां ही माया की विषयमूलकता एवं विषयिप्रधानता की कारण हैं। संक्षेप-शारीरकार सर्वज्ञात्ममुनि ने कहा है कि आत्म—विषयक और आत्माश्रयी अज्ञान आत्मा के ज्योतिर्मय रूप को आच्छादित करके अपनी विभ्रमशक्ति के द्वारा आत्म—तत्त्व को जीव, ईश्वर और जगत् की आकृतियों में विक्षिप्त कर देता है।[1] इस प्रकार संक्षेप शारीरककार ने अज्ञान की आवरण और विभ्रम शक्तियों के योग से अज्ञान के विषयत्व और विषयित्व को स्पष्ट किया है। विक्षेप शक्ति ब्रह्माण्ड आदि जगत प्रपंच की सृष्टिकर्त्री है[2] और आवरणशक्ति वस्तु के सत् स्वरूप की आच्छादिका है।[3] विषयरूप से वर्तमान समस्त प्रपंच माया की विक्षेप शक्ति का ही परिणाम है। इस दृष्टि से विचार करने पर माया—विषयमूलक है। इसके अतिरिक्त प्रकारान्तर से विचार करने पर माया की—विषयिप्रधानता सिद्ध होती है। विषयित्व की दृष्टि से विचार करने पर माया का अविद्या रूप सामने आता है। अविद्या माया की आवरण शक्ति का ही रूप

---

१. आच्छाद्य विक्षिपति संस्फुरदात्मरूपम्। जीवेश्वरत्व जगदाकृतिभिर्मृषैव।
अज्ञानमावरणविभ्रमशक्तियोगात् । आत्मत्वमात्रविषयाश्रयता बलेन॥
संक्षेप शारीरक १–२०

२. वेदान्तसार १०, ३. विवेक चूडामणि ११३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। अविद्या के द्वारा जीव वस्तु के स्वरूप-ज्ञान में अक्षम रहता है, जिस प्रकार भस्मच्छन्न अग्नि के दहन और प्रकाशन तिरोहित रहते हैं, उसी प्रकार अविद्या से प्रत्युपस्थापित नाम और रूप से सम्पादित देह आदि उपाधियों के योग से अविवेक रूप भ्रम के कारण जीव के ज्ञान और ऐश्वर्य का तिरोभाव होता है।[1] इस प्रकार आवरण-शक्ति के रूप में अविद्या ही जगत् की अनेकरूपता की जननी है। अतः विक्षेप-शक्ति के रूप में जो माया विषयमूलक है वही आवरणशक्ति के रूप में विषयिप्रधान है। इस प्रकार माया का, जीवगत अविद्या का रूप ही विषयिप्रधान रूप है। संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि अनादि शक्ति माया ही विषयित्व की दृष्टि से अविद्या है एवं विषयत्व की दृष्टि से माया है।[2] यहां अविद्या और माया का भेद स्पष्ट किया जायगा।

अविद्या और माया

शंकराचार्य के परवर्ती दार्शनिकों—वाचस्पति मिश्र आदि ने अविद्या और माया के भेद की व्याख्या की है। वाचस्पति मिश्र ने अविद्या को ब्रह्माश्रया न मानकर जीवाश्रया माना है।[3] अद्वैत चन्द्रिकाकार आचार्य सुदर्शन अविद्या और माया के भेद को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि परमेश्वर की शक्ति माया है। वह परमात्म ज्ञान के द्वारा वाधित होने के कारण न सत् है और न, क्रियाकारिका होने के कारण असत् है। यह माया सत्त्व, रज और तमोगुण से युक्त है। इस माया के दो भेद हैं—एक विशुद्ध सत्त्व-प्रधाना और दूसरा अविशुद्ध सत्त्व प्रधाना। विशुद्ध सत्त्व प्रधाना माया सत्त्व गुण प्रधान है और अविशुद्ध सत्त्व प्रधाना माया तमोगुण प्रधान है। शुद्ध तत्त्व-प्रधाना माया परमेश्वर की दासी है। इसके विपरीत अविशुद्ध सत्त्व प्रधाना माया जीव की स्वामिनी है। जीव अविद्या के द्वारा परतन्त्र है।[4] शांकर मायावाद के बहुमुखी अध्ययन के दृष्टिकोण से आचार्य परवर्ती दार्शनिकों के माया-अविद्या सम्बन्धी विभाग की प्रक्रिया अत्यन्त प्रशंसनीय है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि शंकराचार्य माया और अविद्या के इस भेद से परिचित नहीं थे। यद्यपि शंकराचार्य ने माया एवं अविद्या, इन दोनों शब्दों को एक दूसरे

१. ब्र० सू० शा० भा० ३–२–६
2. Nalini Mohan Shastri. A study of Shankar, P. 142 Calcutta.
३. नाविद्या ब्रह्माश्रया किन्तु जीवे. सात्वनिर्वचनीयेत्युक्तं, तेन नित्यशुद्धमेव-ब्रह्म।
भामती पृ० ९५ (बा० शास्त्री संपादित)—१९३६
४. अद्वैत चन्द्रिका पृ० ४१ (बनारस १९०१)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का पर्यायवाची माना है[1] परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि शंकराचार्य अविद्या और माया के भेद से परिचित नहीं थे। इस मत के समर्थन में निम्नलिखित युक्तियां दी जा सकती हैं:—

१—शंकराचार्य का आवरण और विक्षेप शक्तियों का भेद-विभाजन अविद्या और माया के भेद का सूचक है। परवर्ती दार्शनिकों ने अविद्या को जीवाश्रया कहा है। शंकराचार्य के अनुसार माया की आवरण-शक्ति जीव को आत्म-स्वरूप-ज्ञान से वंचित करती है। इस प्रकार आवरण-शक्ति अविद्या का ही रूप है। विवरणकार के मत में भी माया और अविद्या एक ही है, परन्तु व्यवहार भेद से, विक्षेप की प्रधानता से माया और आवरण की प्रधानता से अविद्या संज्ञा है।[2]

२—शंकराचार्य ने माया का जीव के साथ सम्बन्ध दिखाते समय अनेक स्थलों पर अविद्या की चर्चा की है। आचार्य का कथन है कि अविद्या के ही कारण जीव को सर्व-व्यवहार को प्रतीति होती है।[3] इसके अतिरिक्त एक अन्य स्थल पर आचार्य की यह युक्ति भी कि 'भस्मच्छन्न अग्नि के समान अविद्या से उपस्थापित नाम और रूप से सम्पादित देह आदि उपाधियों के योग से अविवेक रूप भ्रम के कारण जीव के ज्ञान और ऐश्वर्य का तिरोभाव होता है' जीव का अविद्या के साथ ही सम्बन्ध प्रकट करती है न कि माया के साथ। इस प्रकार के प्रसंगों के आधार पर अविद्या और माया का भेद स्पष्ट ही है।

३—निःसन्देह विवरणकार का यह कथन सत्य है कि भाष्यकार शंकर ने अविद्या, माया और अविद्यात्मिका माया शक्ति आदि शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है।[4] यही नहीं शंकराचार्य ने अविद्या और माया को पर्यायवाची भी माना है। इस प्रकार परमात्मा की शक्ति के रूप में अविद्या और माया में भेद

---

१. ब्र० सू० शा० भा० १–४–३

२. तस्माल्लक्षणैक्याद् वृद्धव्यवहारैचैकत्वावगमादेकस्मिन्नपि वस्तुनि विक्षेप प्राधान्येन माया आच्छादन प्राधान्येनाविद्येति व्यवहार भेदः ।

—पंचपादिका विवरण, पृ० ३२ (विजयनगरम् सिरीज़)

३. ब्र० सू० शा० भा० १–४–३

२. भाष्यकारेण चाविद्या माया विद्यात्मिका मायाशक्ति रिति तत्र तत्र निर्देशात् ।

—पंचपादिका विवरण, पृ० ३२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं है। परन्तु व्यवहार-दृष्टि से अविद्या और माया का भेद सिद्ध होता है।[1]

शंकराचार्य के मायावाद की प्रमुख विशेषतायें

किसी विषय के सैद्धान्तिक विवेचन और अनुभूत स्थितियों की असम्बद्ध व्याख्याओं में भेद स्पष्ट है। परमेश्वर की माया के अनादि होने के कारण, माया के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अभिव्यक्तियां मिलती हैं। परन्तु इन अभिव्यक्तियों को सैद्धान्तिक रूप नहीं दिया जा सकता। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत 'माया' का इतिहास देते समय माया सम्बन्धी विभिन्न विचारधाराओं की ओर संकेत किया जा चुका है। शांकर-मायावाद की कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो अन्यत्र नहीं मिलतीं। शंकराचार्य के मायावाद की निम्नलिखित विशेषतायें प्रमुख हैं:—

१—शक्तिरूपता, १—अनिर्वचनीयता, ३—भावरूपता, ४—अनादिता, ५-सान्तत्व, ६—अध्यस्तता, ७—इन्द्रजालत्व, ८—व्यावहारिकता।

इस स्थल पर मायावाद की उक्त विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन किया जायगा।

१—शक्तिरूपता—शांकर-मायावाद के अनुरूप माया परमेश्वर की शक्ति का रूप है।[2] माया शक्ति के द्वारा ही ब्रह्म जगत् का कारण है। जगत् त्रिगुणात्मिका माया का परिणाम है। परन्तु शांकर दर्शन की माया परमार्थ में असत् होने के कारण न तान्त्रिकों की महामाया-शक्ति है और न ईश्वर परतन्त्रा होने के कारण सांख्य-दर्शन की 'प्रकृति' है। यद्यपि शंकराचार्य ने भी 'ईश्वरस्य मायाशक्ति प्रकृतिः' कहकर माया को प्रकृति का रूप दिया है, परन्तु यह विचारणीय है कि शांकर-दर्शन की मायारूपा प्रकृति में सांख्य-दर्शन की 'प्रकृति' की तरह स्वतन्त्र रूप से कर्तृत्वादी की क्षमता नहीं है। शंकराचार्य ने माया को बीज शक्ति के रूप में स्वीकार किया है।[3]

२—अनिर्वचनीयता—शंकराचार्य के मायावाद के अनुरूप 'माया' अनिर्वचनीय है। अनिर्वचनीय होने के कारण 'माया' न परमार्थ रूप से सत् है और न वन्ध्यापुत्र के समान असत्। परन्तु माया की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार्य ही है।

1. Nalini Mohan Shastri, A Study of Shankar, P 142. (Calcutta, 1942)

१. विवेक चूड़ामणि १०८, ब्र० सू० शा० भा० १-४-३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्म सिद्धिकार का कथन है कि अविद्या न ब्रह्म का स्वभाव कही जा सकती है न अर्थान्तर, न अत्यन्त असती और न सती। इस प्रकार यह अविद्या, माया मिथ्यावभास ही है। यदि माया को ब्रह्म का स्वभाव माना जायगा तो वह परमार्थ ही होगा, अविद्या नहीं।[1] अत्यन्त असत् मानने पर खपुष्प सदृशी माया व्यवहार योग्य नहीं बन सकती। इसीलिये इसे अनिर्वचनीय कहा गया है।

३–भावरूपता—शांकर मायावाद के अनुसार माया भावरूप है। आचार्य ने 'तदेतदव्यक्तं—क्वचिदाकाश शब्द निर्दिष्टम्'[2] कहकर आकाश को अविद्या का पर्यायवाची माना है। अतः यह अविद्या भावरूप ही है। 'आत्मन आकाशः संभूतः'[3] श्रुति वाक्य भी अविद्या के वस्तुत्व का ही साधक है। 'अहमज्ञः' (मैं अज्ञ हूं) इत्यादि अनुभव भी अज्ञान की भावरूपता को ही सिद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त यदि 'अज्ञान' भावरूप न हुआ होता तो उसकी निवृत्ति का ही प्रसंग न आता। परन्तु इस प्रसंग में यह विचारणीय है कि अज्ञान की भावरूपता चक्षु आदि के द्वारा वेद्य न होकर नित्य साक्षी-वेद्य ही है।[4] अज्ञान के दर्शनाभिलाषी के लिये तो प्रकाशानन्द का यह समाधान ही युक्त है कि यदि कोई मूढ़ भी अज्ञान के जानने की इच्छा करे तो उसे उत्तम प्रकाशयुक्त दीपक के द्वारा अन्धकार का दर्शन कर लेना चाहिये।[5] भावरूप अनादि माया की निवृत्ति विज्ञान के द्वारा ही होती है।[6]

४–अनादिता—मायावादी शंकराचार्य ने परमेश्वर की शक्ति—माया के अनादित्व का प्रतिपादन किया है।[7] त्रिगुणात्मिका अनादि माया ही जगत् की उत्पत्ति का कारण है। अनादि माया के द्वारा उत्पन्न होने के कारण जगत् भी अनादि ही है। इस प्रकार मायावाद के अनुसार माया को अनादि सिद्ध किया गया है।

५–सान्तत्त्व—शांकर-मायावाद के अनुसार माया अनादि होते हुए भी सान्त है। परमार्थ में अद्वैत मात्र की ही सत्यता सिद्ध होने पर द्वैत बुद्धि की

---

१. देखिये–शतभूषणी पृ०१२१ (तृ० भा०) पर ब्रह्मसिद्धिकार का मत।
२. शांकर भाष्य १–४–३, ३. तै० उ० २–१
४. तच्चाज्ञानं नित्य साक्षिवेद्यम्, नं तुरूपादिवत् चक्षुराद्यपेक्षज्ञानवेद्यम्।
—शतभूषणी, तृतीय भाग पृ० ६४
५. वेदान्त–सिद्धान्त–मुक्तावली ४८, ६. चित्सुखी १–१–३
७. विवेक चूड़ामणि १०८,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्पादिका माया का अन्त स्वतः सिद्ध है। शंकराचार्य ने मायावी के उपमान के द्वारा सिद्ध किया है कि जिस प्रकार मायावी अपने द्वारा प्रसारित माया का अनायास ही उपसंहार करता है उसी प्रकार शरीर जीव भी इस मायिक सृष्टि का उपसंहार करता है। इस प्रकार मायिक सृष्टि के उपसंहार से भी माया का अन्त ही सिद्ध होता है। यद्यपि अविद्यात्मिका बीजशक्ति ही जगत् की जननी है परन्तु शंकराचार्य का कथन है कि विद्या के द्वारा अविद्या रूप बीजशक्ति का विनाश हो जाता है।[1] परन्तु अविद्या निवृत्ति के सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है कि जब अविद्या अथवा माया अनिर्वचनीय है तो उसकी निवृत्ति भी अनिर्वचनीय ही होगी।[2] न्याय-दर्शन और बौद्ध-दर्शन में भी अविद्या निवृत्ति को प्रकारान्तर से स्वीकार किया गया है।[3]

६–अध्यस्तता—शंकराचार्य ने 'अध्यास' के आधार पर ही मायावाद का विकास किया है। आचार्य ने 'अविद्या' एवं 'अध्यास' को पर्यायवाची माना है।[4] शंकराचार्य ने 'अध्यास' की परिभाषा देते हुए कहा है कि किसी वस्तु में तदितर वस्तु का ज्ञान ही अध्यास है।[5] शुक्ति में 'रजत', रज्जु में सर्प और ब्रह्म में जगत् का ज्ञान अध्यास ही है। अध्यास का अधिष्ठान के बिना सिद्ध होना असम्भव है। इसीलिये शाँकर-दर्शन के अनुसार शुक्ति, रज्जु और ब्रह्म क्रमशः रजत, सर्प और जगत् के अधिष्ठान हैं। इस प्रकार शाँकर-मायावाद के अनुसार अधिष्ठान एवं अध्यास के आधार पर मायिक जगत् की सत्ता सिद्ध की गई है।

७–इन्द्रजालत्व—शाँकर-मायावाद के अनुसार माया इन्द्रजाल-रूप है। शंकराचार्य ने ईश्वर के लिये मायावी का उपमान प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक 'इन्द्रजाल' की सृष्टि करता है उसी प्रकार मायावी परमेश्वर भी अपनी माया के द्वारा जगत् की सृष्टि करता है। परमेश्वर इस माया से स्पृष्ट होता है अथवा नहीं होता, इस सम्बन्ध में शंकराचार्य का कथन है कि जिस प्रकार मायावी (ऐन्द्रजालिक) अपने द्वारा प्रसारित माया (इन्द्रजाल) से संस्पृष्ट नहीं होता उसी प्रकार परमात्मा भी संसार-माया से स्पृष्ट नहीं होता।[6] इस प्रकार माया के इन्द्रजालत्व के आधार पर ही शंकराचार्य ने मायावाद का प्रतिपादन किया है।

१. विद्यया तस्या बीजशक्तेर्दाहात्, ब्र० सू० शा० भा० १–४–३
२. विशेष—देखिये–शतभूषणी, तृतीय भाग, पृ० १५८ पर इष्टसिद्धिकार का मत।
३. देखिये—अनन्तकृष्ण शास्त्री की 'शतभूषणी' की भूमिका पृ० ४६।
४. ब्र० सू० शा० भा० उपोद्घात।
५. वही।
६. ब्र० सू० शा० भा० २–१–६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

८–व्यावहारिकता—व्यावहारिकता शांकर-मायावाद की सर्वप्रमुख विशेषता है। शांकर-वेदान्त के अनुसार परमार्थ दृष्टि से एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता मानी गई है। परन्तु परमार्थ सत् के अतिरिक्त शांकर-मायावाद-मत में व्यावहारिक सत्ता को भी स्वीकार किया गया है। अतः मायिक जगत् परमार्थ रूप से असत् होने पर भी व्यावहारिक रूप से सत् है। माया की यह व्यावहारिकता अत्यन्त उपादेय है। माया की व्यावहारिकता के कारण ही, शांकर-दर्शन परमार्थ और व्यवहार—दोनों दृष्टियों से उपयोगी सिद्ध हुआ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शङ्कराचार्य

[उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन]

पंचम-अध्याय

मायावाद का अन्य आध्यात्मिक तत्त्वों से सम्बन्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

५

माया और ईश्वर का सम्बन्ध

आध्यात्मिक तत्त्वों के सम्बन्ध में ईश्वर का विवेचन समस्त ईश्वरवादी दर्शनों में विस्तार से किया गया है। लोक में भी ईश्वर और उसकी माया का व्यवहार प्रायः होता है। यहां ईश्वर और माया के पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन प्रतिपाद्य है।

निर्गुण ब्रह्म जब मायावच्छिन्न होने पर सगुण रूप धारण कर लेता है तो उसकी ईश्वर संज्ञा हो जाती है। मायावच्छिन्न चैतन्य ईश्वर है और मायोपाधिक चैतन्य ईश्वर साक्षी। एक ही परमेश्वर मायाविष्ठ सत्त्व, रज और तमोगुण के भेद से ब्रह्मा, विष्णु और महेश संज्ञाओं को प्राप्त होता है।[1] इस प्रकार ईश्वर के ईश्वरत्त्व का मूल कारण माया है। मायी ईश्वर ही विश्व सर्जना करता है और जीव मायावश बन्दी बनता है। पंचदशीकार ने तो 'वत्सौ जीवेश्वरावुभौ' कहकर जीव और ईश्वर को माया रूप कामधेनु के वत्स तक कह दिया है।[2] कहना न होगा कि मायाशक्ति ही ईश्वरत्व की बोधिका है। शंकराचार्य का सिद्धान्त है कि परमेश्वर अपनी मायाशक्ति के द्वारा ही जगत् की सृष्टि करता है। माया के बिना परमेश्वर का स्रष्टापन सिद्ध नहीं होता।[3] शक्ति रहित परमेश्वर में प्रवृत्ति की उपपत्ति ही नहीं देखी जा सकती। परमेश्वर की यह माया लौकिक मायावी की माया के समान ही परतन्त्र है। अद्वैत मतानुसार माया सांख्य के प्रधान के समान स्वतन्त्र न होकर ईश्वराश्रित होने के कारण ईश्वराधीन है। अपनी माया-शक्ति के कारण ही ईश्वर जगत् का उपादान कारण भी है और निमित्त कारण भी। जिस प्रकार रज्जु सर्प का अधिष्ठान है उसी प्रकार ईश्वर समस्त प्रपंच का अधिष्ठान है। सर्पादि भ्रम के उपादान रज्जु के समान ही प्रपंच भ्रम का उपादान ईश्वर है। इसीलिये जीवाश्रित अविद्या भी निमित्त और विषय रूप से ईश्वराश्रित होने से

१, सुदर्शनाचार्य, अद्वैत चन्द्रिका, पृ० ४० (बनारस संस्करण, १९०१)।

२. पंचदशी, चित्रदीप प्रकरण, श्लोक २३६।

३. नहितया बिना परमेश्वरस्य स्रष्टत्वं सिध्यति। ब्र० सू० शा० भा० १-४-३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ईश्वराश्रया है न कि आधार रूप से, क्योंकि जिसका स्वभाव विद्या है उसमें अविद्या कैसे रह सकती है।[१]

ईश्वर अविद्याकृत समस्त नामरूप उपाधि का उसी प्रकार अनुरोधी है जिस प्रकार घट, करक आदि का अनुरोधी आकाश है।[२] व्यवहार दशा में ईश्वर घटाकाश सदृश अविद्या द्वारा उत्थापित नामरूप कृत कार्य-कारण संघात के अनुरोधी विज्ञानात्मा जीवों पर शासन करता है। नियन्ता ईश्वर अन्तर्यामी होने के कारण प्राणियों के पूर्व कर्मों के अनुसार उन्हें निज कर्मों में प्रेरित करता रहता है। इसलिये ईश्वर का ईश्वरत्व सर्वज्ञत्व एवं सर्वशक्तित्व मायोपाधि पर ही आधारित है। परमार्थ में तो विद्या के उत्पन्न होने पर सर्वोपाधि रहित आत्मा के लिये ईशितृ, ईशितव्य और सर्वज्ञत्व आदि व्यवहार उत्पन्न नहीं होते। ब्रह्मज्ञानी न किसी अन्य को देखता है, न सुनता है, और न जानता है। अतः ईश्वर की सत्ता व्यावहारिक है।[3] श्रुति के अन्तर्गत ईश्वर को सर्वभूताधिपति, सर्व भूतपालक और लोक व्यवस्था का सेतु कहा गया है। ईश्वर ही यन्त्रारूढ़ के समान समस्त प्राणियों को अपनी माया से भ्रमित करता हुआ सर्व प्राणियों के हृदय में वर्तमान रहता है।[४] चिदाभास रूप मायाधीन मायी महेश्वर माया का अधीश्वर है। वही अन्तर्यामी, सर्वज्ञ एवं इस जगत् का मूल कारण है।

उक्त प्रसंग में आरम्भ में यह कहा गया है कि मायावच्छिन्न चैतन्य ईश्वर है एवं मायोपाधिक चैतन्य की ईश्वर साक्षी संज्ञा है। प्रकारान्तर से एक ही माया ईश्वर का विशेषण है तथा ईश्वर साक्षी की उपाधि। ईश्वरत्व तथा ईश्वर साक्षित्व का यही मौलिक भेद है। वेदान्त परिभाषाकार का विचार है कि धर्मी ईश्वर और ईश्वर साक्षी में भेद की व्यवस्था नितान्त अनुचित है।[५] अनादि ईश्वर साक्षी के सम्बन्ध में यह शंका कदापि उचित न होगी कि 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय' (उस परमेश्वर ने इच्छा की कि मैं बहुत से रूपों से प्रादुर्भूत होऊं) आदि श्रुति वाक्यों के आधार पर अनादि परमेश्वर के सम्बन्ध में अनित्यइच्छा आदि भाव कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? इसका समाधान यह है जिस प्रकार घटादि विषय यथा नेत्रादि इन्द्रियों के परस्पर सम्बन्धादि रूप कारण-वश जीवोपाधिभूत अन्तःकरण के अनेक प्रकार के वृत्ति-भेद उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार संसृज्यमान

१. भामती, ब्र० सू० १–४–३।
२. ब्र० सू० शा० भा० २–१–१४।
३. छा० उ० ७–२४–१।
४. शा० भा० गीता १८–६१।
५. वेदान्त परिभाषा प्र० परि०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राणियों के अनेक प्रकार के कर्मों के वश से परमेश्वर की उपाधि अर्थात् विशेषणी भूता माता के 'इस काल में इस पदार्थ की सृष्टि करनी चाहिये,' 'इस काल में इस पदार्थ का पालन करना चाहिये' और इस काल में इस पदार्थ का संहार करना चाहिये' इत्यादि अनेक वृत्ति—भेद उत्पन्न होते हैं। ये समस्त मायावृत्तियां सादि हैं। इन माया-वृत्तियों के सादि होने से उनमें प्रतिबिम्बित चैतन्य में भी सादि व्यवहार होता है।[1] इस प्रकार चिदात्मस्वरूप साक्षी में अनित्यता की कल्पना नितान्त असंगत होगी।

शंकराचार्य का कथन है कि जिस प्रकार मायावी (ऐन्द्रजालिक) स्वयं प्रसारित माया से त्रिकाल में भी स्पृष्ट नहीं होता उसी प्रकार परमात्मा भी संसार-माया से स्पृष्ट नहीं है।[2] (इसीलिए ईश्वर अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश और अविद्या इन पंचक्लेशों, शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण और अशुक्ल-कृष्ण इन चार प्रकार के कर्मों, जाति, आयु तथा भोग—इन कर्मविपाकों और इनसे उत्पन्न होने वाले संस्कारों से अस्पृष्ट है।) माया की आवरण शक्ति जीव के लिये है न कि ईश्वर के लिये। जीव ही अविद्यावश मिथ्या जगत् को सत्य जानकर सुख दुःखादि बन्धन के मोह में फंस जाता है। जीव में ही राग द्वेष की प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं। (इसके विपरीत ईश्वर राग द्वेष से वर्जित है। ईश्वर के लिये तो यह मायिक सृष्टि लीला मात्र है। इस सृष्टि रचना के मूल में निर्विकार ईश्वर का कोई अन्य प्रयोजन न होकर लीलारूप प्रवृत्ति मात्र ही प्रयोजन है।[3] इस स्थल पर यह विचारणीय है कि शांकर दर्शन के अनुसार जिस माया के द्वारा ईश्वर का ईश्वरत्व है उस माया के अवस्तु रूप होने के कारण ईश्वर उससे अस्पृष्ट एवं असम्बद्ध है।)

माया और जीव का सम्बन्ध

ईश्वर और जीव संज्ञाओं का मूल कारण माया है। परमेश शक्ति माया एक ही है। माया की ही आवरण और विक्षेप शक्तियों के आधार पर व्यावहारिक दृष्टि से अविद्या और माया, ये दो भेद हो गये हैं।[4] आवरण शक्ति अविद्या का स्वरूप है। इसका सम्बन्ध जीव से है। विक्षेप शक्ति जगत् की माया का स्वरूप

---

१. इदमिदानीं स्रष्टव्यमिदमिदानीं पालयितव्यमिदमिदानीं संहर्तव्य मित्याद्याकारा जायन्ते तासां च वृत्तीनां सादित्वात्तत्प्रतिबिम्ब चैतन्यमपि सादीत्युच्यते। वेदान्त परिभाषा प्र० परि०

२. ब्र० सू० शा० भा० २-१-९ ३. वही २-१-३३

४. पंचपादिका विवरण, पृ० ३२ (विजयनगरम् सीरिज़)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है।[१] प्राज्ञ ईश्वर और अल्पज्ञ जीव इन दोनों की सत्ता व्यवहारिक मात्र है। परमार्थ में केवल अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है। ईश्वर और माया के सम्बन्ध में विवेचन किया जा चुका है। यहां माया और जीव के सम्बन्ध में विचार किया जायगा। शांकर दर्शन के अनुसार 'जीवो ब्रह्मैवनापरः' उक्ति के अनुरूप जीव अतिरिक्त तत्व न होकर ब्रह्म ही है। अविद्या की उपाधि से ब्रह्म का विशुद्ध चैतन्य स्वरूप ही जीव रूप में परिणत हो जाता है। प्रत्येक जीव के साथ एक अन्तःकरण की उपाधि होने के कारण जीव परिच्छिन्न एवं अल्पज्ञ है। अतएव अविद्योपाधिक अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य को 'जीव' कहते हैं। जीव के स्वरूप-विर्धारण एवं माया और जीव का पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित करने के लिये अद्वैती दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न रीति से तत्त्वानुसन्धान किया है। वास्तव में यह अविद्या किसकी है, यह प्रश्न बड़ा जटिल है। वाचस्पति मिश्र ने इस प्रश्न के उत्तर की खोज करते हुए लिखा है कि यह अविद्या न जीव की ही कही जा सकती है और न परमात्मा की ही। जीव की तो इसलिये नहीं कही जा सकती कि जीव की सत्ता परमात्मा से पृथक् नहीं है और परमात्मा की इस लिये नहीं कही जा सकती कि विद्यैकरस परमात्मा में अविद्या का आश्रयत्व अनुचित है।[२] अविद्या, जीव, और ईश्वर के सम्बन्ध की समस्या का समाधान करते हुये वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि अविद्या जीव का अधिकरण है। परन्तु जीव में रहने वाली अविद्या निमित्तता और विषयता के कारण ईश्वर के आश्रित होने से ईश्वराश्रया कही जाती है।[3] वस्तुतः अविद्या आधाररूप से ईश्वराश्रया नहीं हो सकती।

प्रकटार्थ विवरणकार का मत है कि सर्वभूत प्रकृति, चिन्मात्र सम्बन्धिनी, अनादि एवं अनिर्वचनीय माया में चैतन्य का प्रतिबिम्ब ईश्वर है और उसी माया के अविद्या नाम वाले, आवरण और विक्षेप शक्तियुक्त परिच्छिन्न अनन्त प्रदेशों में चैतन्य का प्रतिबिम्ब जीव है।[४]

पंचदशी के रचयिता विद्यारण्य मुनि का कथन है कि त्रिगुणात्मिका प्रकृति के माया और अविद्या ये दो रूप हैं। रज और तम से तिरस्कृत न होकर जो मुख्य रूप से शुद्ध सत्व प्रधान है वह माया है। इसके अतिरिक्त जो रज और तम से अभिभूत होकर मलिन सत्व प्रधान है वह अविद्या है। माया में प्रतिबिम्बित चैतन्य ईश्वर और अविद्या में प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है।[५]

१. रामाद्वयाचार्य, वेदान्त कौमुदी, पृ० १८२।
२. भामती, ब्र० सू० १-४-२२.
३. भामती, वही १-४-३।
४. सिद्धान्तलेश संग्रह, २१,
५. पंचदशी १-१६, १-१७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संक्षेप शारीरक कार सर्वज्ञात्म मुनि ने 'कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः' श्रुतिवाक्य के आधार पर अविद्या में चैतन्य के प्रतिविम्ब को ईश्वर और अन्तःकरण में चैतन्य के प्रतिविम्ब को जीव संज्ञा दी है।[1]

दृग्दृश्यविवेक में विद्यारण्य मुनि ने जीव के तीन भेद किये हैं। दृग्दृश्यविवेककार द्वारा किये गये जीव के निम्नलिखित भेद हैं:—

१—अन्तःकरणावच्छिन्न कूटस्थ चैतन्य पारमार्थिक जीव।

२-मायावृत कूटस्थ में चित् का आभासरूप व्यावहारिक जीव।

३—निद्रा से आवृत व्यावहारिक जीव में कल्पित चिदाभासरूप प्रातिभासिक जीव।

विवरणमतानुयायियों का कथन है कि अविद्या में चैतन्य का आभास जीव और बिम्ब स्थानापन्न चैतन्य ईश्वर है।[2] कुछ विद्वानों के मत में अन्तःकरण से अवच्छिन्न चैतन्य जीव है। इसके विपरीत एक मत का उल्लेख करते हुए अप्पय दीक्षित ने लिखा है कि कुछ विद्वानों के मत में जीव न तो प्रतिविम्ब है और न अवच्छिन्न। जिस प्रकार कुन्ती-पुत्र कर्ण में राधेयत्व (राधापुत्र) का व्यवहार होता है उसी प्रकार अविद्या से अविकृत ब्रह्म में ही जीवत्व का व्यवहार होता है।[3] कुछ विद्वान् जीव को योगी की उपाधि देते हुए कहते हैं कि जैसे शरीरों के समूह में एक ही योगी अपना अधियत्य रखता है उसी प्रकार हिरण्यगर्भ से अन्य एक मुख्य जीव है। यही सब शरीरों में अधिकार रखता है।[4]

इन मत–मतान्तरों के आधार पर यह निश्चित है कि माया के ही द्वारा जीव का जीवत्व सिद्ध होता है। शंकराचार्य का कथन है कि जीव, स्वरूप बोध न होने के कारण अविद्या में ही लीन रहते हैं।[5] वास्तव में जीवों का स्वरूप ब्रह्म ही है।[6] इसी ब्रह्मरूपता का बोध न होने के कारण जीव अविद्योपाधि के कारण जीव संज्ञा को प्राप्त होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शांकर वेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही अविद्या के द्वारा जीव भाव को प्राप्त होता है। अविद्या निवृत्ति के होने पर जीव ब्रह्मरूपता को प्राप्त हो जाता है।

परमेश्वर की माया 'अविद्यात्मिका बीज शक्ति के साथ-साथ मोह शक्ति भी

१. अप्पय दीक्षित, सिद्धान्त लेश संग्रह ३२। २. वही ४०।
३. वही ४२। ४. वही ४४।
५. ब्र० सू० शा० भा० १–४–३
६. जीवानां स्वरूपं वास्तवं ब्रह्म। भामती ब्र० सू० १–४–३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रखती है। उसमें जैसे जगत् की सर्जना की सामर्थ्य है वैसे ही जीव को मोहने की शक्ति भी है। माया से मोहित होने के कारण ही जीव को अपने चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान नहीं रहता। यही अन्त:करणावच्छिन्न जीव अपने आपको कर्ता एवं भोक्ता मानता है। जगत् का सृष्टा ईश्वर है परन्तु भोक्ता जीव है। जिस प्रकार स्त्री अपने पिता द्वारा उत्पन्न एवं पालित होकर पति के द्वारा उपभुक्त होती है उसी प्रकार जगत् भी ईश्वर द्वारा सृष्ट होकर जीव द्वारा उपभुक्त होता है। ईश्वर के संकल्प से जगत् की सृष्टि और जीव के संकल्प से जगत् का भोग होता है। इस प्रकार जीव ही अविद्या के द्वारा कर्ता एवं भोक्ता बनता है।

जीवेश्वरैकत्ववाद और माया

शंकराचार्य ने परमार्थ दृष्टि से जीव और ईश्वर में भेद को न स्वीकार करके दोनों में एकत्व की स्थापना की है। शंकराचार्य का कथन है कि जीव राजा के द्वार के समान परमात्मा से भिन्न नहीं है। आत्मा का जीव भाव उपाधि मात्र के आधार पर स्थित है।[२] इस प्रकार घट, मठ आदि के भेद से घटाकाश, मठाकाश आदि भिन्न-भिन्न आकाशों की कल्पना की जाती है, उसी प्रकार मायाजन्य उपाधि के द्वारा ब्रह्म में अनेक जीवों की कल्पना की जाती है। जिस प्रकार घट, मठादि के भग्न होने पर घटाकाश, मठाकाश आदि भेद समाप्त हो जाने पर केवल आकाश मात्र का ही बोध होता है, उसी प्रकार उपाधि के नष्ट हो जाने पर जीव परमात्मा भाव को प्राप्त हो जाता है। अविद्या के द्वारा उपस्थापित नाम रूप से उत्पन्न शरीरेन्द्रिय रूप उपाधि के अविवेक से ही जीव के पार्थक्य की भ्रान्ति होती है। ये देहादि संघात पारमार्थिक न होकर मायिक मात्र हैं।[३] उपाधि के नष्ट हो जाने पर जीव और ईश्वर में भेद दृष्टिगोचर नहीं होता।

सूत्रकार बादरायण ने जीव और ईश्वर के सम्बन्ध को अंशादि भाव के द्वारा स्पष्ट किया है। सूत्रकार बादरायण के मत में ईश्वर अंशी और जीव उसका अंश है।[४] परन्तु शंकराचार्य एकदम अंशांशि भाव के समर्थक नहीं हैं। आचार्य शंकर ने जीव को ईश्वर का अंश न मानकर 'अंशइव' कहा है। अपने मत की पुष्टि में आचार्य का कथन है कि निरवयव वस्तु के अंश की सम्भावना नहीं की जा सकती।[५] अंश तो सावयव वस्तु का ही संभव हो सकता है। ईश्वर निरवयव है।

१. पंचदशी ४-२२। २. ब्र० सू० शा० भा० २-४-२०
३. ना० का० शा० भा० ३-१०, ब्र० स० शा० भा० २-१-२२
४. ब्र० सू० २-३-४३
५ अंशइवांशो नहि निरवयवस्य मुख्योऽशः सम्भवति। ब्र० सू० शा० भा० २-३-४३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसलिये उसके अंश की कल्पना निरर्थक है। शंकराचार्य ने जीव और ईश्वर के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए ईश्वर और जीव के मध्य उपकार्य–उपकारक सम्बन्ध सिद्ध किया है।[1] जीव उपकार्य एवं ईश्वर उपकारक है। जीव और ईश्वर के पारस्परिक सम्बन्ध का स्पष्टीकरण प्रतिविम्बवाद एवं अवच्छेदवाद के सिद्धान्तों के द्वारा सरलता से किया जा सकता है। यहां इन दोनों दार्शनिक सिद्धान्तों का पृथक–पृथक विवेचन किया जायगा।

प्रतिविम्बवाद का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार जीव और ईश्वर में विम्ब–प्रतिविम्ब भाव माना जाता है। जिस प्रकार कि एक ही सूर्य का प्रतिविम्ब जल के अनेक भागों में भिन्न–भिन्न रूप से प्रतीत होता है उसी प्रकार एक ही परमात्मा उपाधि के सम्पर्क से जीव-दशा को प्राप्त होता है। जिस प्रकार कि प्रतिविम्ब की सत्ता विम्ब से पृथक नहीं है, उसी प्रकार जीव की सत्ता भी ईश्वर से पृथक नहीं है। जैसे कि जल में सूर्य का प्रतिविम्ब पड़ता है, उसी प्रकार जीव ईश्वर का आभास मात्र है। यही प्रतिविम्बवाद का सिद्धान्त है।

प्रतिविम्बवाद के सिद्धान्त के विषय में इस शंका का होना स्वाभाविक है कि जब जीव और ईश्वर एक ही है तो जीव की ही तरह ईश्वर को भी दुःखादि का भोक्ता होना चाहिये। शंकराचार्य ने उक्त शंका का समाधान करते हुए कहा है कि जीव की दुःखानुभूति का कारण मिथ्याभिमान जनित भ्रम है। अविद्या के वशीभूत जीव अपने को देह, इन्द्रियों और मन से अभिन्न समझने लगता है। यही कारण है कि जीव शरीर आदि के दुखों को अपना ही दुःख समझ कर दुःखी बन जाता है।[2] इससे यह सिद्ध होता है कि दुःखादि अनुभूति की जननी अविद्या है। अतः विद्या स्वभाव वाले ईश्वर के अविद्या अभिभूत न होने के कारण, उसके सम्बन्ध में दुःखादि के भोक्ता होने का प्रश्न नितान्त अनुचित है।

शंकराचार्य ने सूर्य और प्रतिविम्ब के उदारण के द्वारा ब्रह्म की स्वतन्त्रता को सिद्ध करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार जल में पड़ने वाला सूर्य का प्रतिविम्ब जल के बढ़ने पर बढ़ता है, जब जल घटता है तो वह प्रतिविम्ब भी संकुचित हो

---

१. जीवेश्वरयोरूपकार्योपकारक भाव उक्तः। ब्र० सू० शा० भा० २–३–४३।

२. जीवोह्यविद्यावेशवशाद् देहाद्यात्म भावमिव गत्वा तत्कृतेन दुःखेन दुख्यहमित्यविद्ययाकृतं दुःखोपभोगमभिमन्यते। मिथ्याभिमान भ्रम निमित्त एव दुःखानुभवः।
ब्र० सू० शा० भा० २–३–४६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाता है। जल के कम्पन के अनुसार प्रतिविम्ब का भी कम्पन होता है। इस प्रकार प्रतिविम्ब जल के धर्म का अनुयायी होता है परन्तु विम्ब स्थानीय सूर्य स्वतन्त्र रहता है। प्रतिविम्ब की तरह सूर्य में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। इसीप्रकार ब्रह्म, जो परमार्थ में अविकृत एवं एक रूप है, देहादि उपाधि के अन्तर्भाव से वृद्धि, क्षय आदि उपाधि के धर्मों को ग्रहण करता सा प्रतीत होता है।[1] वास्तव में ईश्वर इन उपाधि धर्मों से स्वतन्त्र है। इस समीक्षा का यह तात्पर्य है कि ईश्वर जीव की तरह अविद्याजनित मिथ्याभिमान भ्रम का पात्र नहीं है।

अवच्छेदवाद का सिद्धान्त

कतिपय दार्शनिक विद्वान जीव और ईश्वर के सम्बन्ध में प्रतिविम्बवाद को न मानकर अवच्छेदवाद को स्वीकार करते हैं। अवच्छेदवाद में सिद्धान्त के अनुसार घटाकाश के समान अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य ही जीव है और उपाधि से अनवच्छिन्न चैतन्य ईश्वर है।[2] अविद्योपाधि ही ब्रह्म की अवच्छेदिका है। अवच्छेदिका से अविद्या के सीमित कर्त्री होने से तात्पर्य है। अविद्योपाधि के निवृत्त हो जाने पर जीव ब्रह्म भावापन्न हो जाता है। जिस प्रकार घट, मठ आदि के नष्ट हो जाने पर आकाश के घटाकश, मठाकाश आदि खण्ड नष्ट हो जाते हैं और आकाश अखण्ड सिद्ध हो जाता है उसी प्रकार उपाधि के नष्ट हो जाने पर जीव विभाग नष्ट हो जाता है और अखण्ड ब्रह्म की सद्धि होती है। यही अवच्छेदवाद है।

आलोचना -- अवच्छेदवादी की दृष्टि में प्रतिविम्बवाद का सिद्धान्त अयुक्त है। प्रतिविम्बवाद के विरुद्ध अवच्छेदवादी का तर्क है कि लोक में जिनके प्रतिविम्ब देखे जाते हैं वे सब रूपवान् होते हैं। क्योंकि रूपरहित पदार्थ का प्रतिविम्ब नहीं हो सकता। इसलिये रूपरहित अन्तःकरण आदि में चैतन्य का प्रतिबिम्ब होना नितान्त असम्भव है। अतः प्रतिविम्बवाद का दृष्टान्त अयुक्त है। शंकराचार्य ने उक्त तर्क का खण्डन अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य के अन्तर्गत किया है। आचार्य का कथन है कि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक में कहीं-कहीं एकाध विवक्षित अंश को छोड़ कर सर्वसारूप्य को कोई भी नहीं दिखा सकता क्योंकि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक में सर्वथा सारूप्य होने पर तो दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक भाव उच्छेद ही हो जायगा।[3] इसके अतिरित जल-सूर्यकादि दृष्टान्त शास्त्र प्रणीत है। शास्त्रप्रणीत

१. ब्र० सू० शा० भा० ३-२-२१।
२. परमात् घटाकाशवदन्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्यं जीवः। तदनवच्छिन्नम् ईश्वरः। सिद्धान्त लेश संग्रह १—४१।
३. ब्र० सू० शा० भा० ३—२—२०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जलसूर्यकादि दृष्टान्त का प्रयोजन जीवेश्वर एवं विम्ब प्रतिविम्ब के बीच सर्वथा सारूप्य का प्रतिपादन न होकर विशिष्ट सारूप्य का प्रतिपादन है। इस सारूप्य प्रयोजन का उल्लेख करते हुए शंकराचार्य ने कहा है कि जल में स्थित सूर्य प्रतिबिम्ब जल की वृद्धि होने पर बढ़ता है और जल के क्षीण होने पर क्षीण होता है। प्रति-बिम्ब जल के हिलने पर हिलता है और भेद होने पर भिन्न हो जाता है। इस प्रकार जल–स्थित सूर्य प्रतिविम्ब जल के धर्मों का अनुसरण करता है। परन्तु परमार्थतः सूर्य जल के धर्मों का अनुसरण नहीं करता। इसी प्रकार यद्यपि ब्रह्म परमार्थ से अविकृत है, एकरूप है, तो भी देहादि उपाधि के अन्तर्भाव से वृद्धि, क्षय आदि उपाधि के धर्मों को प्राप्त करता सा प्रतीत होता है। इस प्रकार दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक में सामंजस्य होने के कारण अविरोध है।[1] प्रतिविम्बवाद के द्वारा इसी सारूप्य का प्रतिपादन अभीष्ट है न कि सर्वसारूप्य का। अतः अवच्छेदवादी का उक्त तर्क असंगत है।

मेरे विचार से तो इन दोनों वादों में नाम मात्र का ही अन्तर प्रतीत होता है। जल में प्रतिबिम्बित सूर्य जल की वृद्धि होने पर वृद्धि को प्राप्त करता सा प्रतीत होता है, जल के कम होने पर संकुचित प्रतीत होता है और जल के चलने पर चलता सा प्रतीत होता है। इस प्रकार सूर्य में जल के सम्बन्ध से आध्यासिक वृद्धि और ह्रास आदि की प्रतीति होती है। इसी प्रकार चिदात्मा के अन्तःकरण आदि से अवच्छिन्न होने के कारण बुद्धि आदि उपाधि में अन्तर्भूत होने से उसमें अन्तः-करण प्रयुक्त आध्यासिक वृद्धि और ह्रास आदि की प्रतीति होती है। इस प्रकार दोनों सिद्धान्तों में कोई मौलिक भेद नहीं प्रतीत होता। वेदान्त की मूल धारणायें— ब्रह्म और अविद्या दोनों ही सिद्धान्तों में वर्तमान हैं।[2] इस प्रकार वेदान्त के मूल मत के अनुसार जीव और ईश्वर में भेद की व्यवस्था अविद्या जन्य है। वास्तव में में जीव और ब्रह्म में अभेद है।

जीव की तीन अवस्थायें

कर्ता एवं भोक्ता जीव की तीन अवस्थाओं का उल्लेख मिलता है। ये अवस्थायें जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति हैं। वेदान्त में स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर ये तीन प्रकार के शरीर तथा अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय

---

१ एवमुभयोर्दृष्टान्त दार्ष्टान्तिकयोः सामंजस्यादविरोधः। वही ३—२—२०

२. डा० देवराज, भारतीय–दर्शनशास्त्र का इतिहास, पृ० ४१९

—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और आनन्दमय ये पांच प्रकार के कोश माने गये हैं। जाग्रदवस्थावर्ती, अन्नमय-कोश रूप स्थूल शरीर के अभिमानी जीव की विश्व और स्वप्नावस्थावर्ती, मनोमय प्राणमय और विज्ञानमय कोश रूप सूक्ष्म शरीर के अभिमानी जीव की तैजस संज्ञा है। जीव में ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति तथा कार्यशक्ति के आधार यही तीन कोश हैं। विज्ञानमय कोश ज्ञानशक्ति से युक्त होने के कारण कर्तृत्वमय है। मनोमयकोश इच्छा-शक्ति से सम्पन्न होने के कारण विवेक का साधक है तथा प्राणमय कोश गमनादिक्रिया सम्पन्न होने के कारण कार्यरूप है। यही प्राणमय कोश ज्ञानेन्द्रिय सहित बुद्धिरूप कर्ता, मन एवं ज्ञानेन्द्रिय रूप कारण की साहयता से प्राणादि पंचक (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) तथा कर्मेन्द्रियों से गमनादि कार्य का प्रेरक है। इस प्रकार जीव के सूक्ष्म शरीर में ही कर्तृत्व, करणत्व एवं कार्यत्व की क्षमता है। सुषुप्ति अवस्थावर्ती, आनन्दमयकोश रूप कारण शरीर के अभिमानी जीव की प्राज्ञ संज्ञा है। अवस्थात्रयवर्ती कोशों और शरीरों के अनुरूप समष्टि रूप ईश्वर की वैश्वानर अथवा विराट्, सूत्रात्मा अथवा हिरण्यगर्भ तथा ईश्वर संज्ञायें हैं।

जीव और साक्षी

'साक्षात् द्रष्टरि संज्ञायाम्' इस सूत्र से द्रष्टा अर्थ में साक्षात् शब्द से 'इनि' प्रत्यय के द्वारा साक्षी शब्द बनता है। इस प्रकार साक्षी का बोद्धा होना स्वाभाविक ही है। परन्तु साक्षी 'द्रष्टृत्वेसति उदासीनत्वम् साक्षित्वम्' के अनुसार उदासीन होता है। ब्रह्म, ईश्वर, जीव और साक्षी शब्दों में सूक्ष्म अन्तर है। उपाधि शून्य चेतन तत्त्व का नाम ब्रह्म है। माया-विशिष्ट ब्रह्म को ईश्वर कहते हैं। जगत् के भोक्तापन का अभिमानी जीव है। साक्षी इन तीनों से भिन्न है। साक्षी में न जीव जैसा कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अभिमान है और न सृष्टा ईश्वर की सी सक्रियता है। साक्षी तो बुद्धिवृत्तियों को प्रकाशितमात्र करता है। शंकराचार्य ने मुण्डकोपनिषद् के भाष्य में जीव और साक्षीगत भेद को बड़े सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है। उन्होंने कहा है कि वृक्ष पर बैठे हुए दोनों पक्षियों में से सूक्ष्म शरीरधारी क्षेत्रज्ञ अज्ञानतावश सुख-दुःखमय विचित्र स्वादयुक्त कर्म-फलों का उपभोग करता है। यह जीव है। दूसरा शुद्ध स्वतन्त्र एवं सर्वज्ञ है। वह कर्म फल का भोक्ता न होकर विषय एवं भोक्ता का द्रष्टामात्र है। यह साक्षी है। इसका कार्य राजा के समान दर्शन मात्र है।[1] शंकराचार्य के परवर्ती दार्शनिकों

१. शा० भा० मु० उ० ३-१-१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने जीव और साक्षी के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न दृष्टि से विचार किया है। यहां कतिपय महत्वपूर्ण मतों का ही उल्लेख किया जायगा।

वेदान्त परिभाषाकार ने इन सूक्ष्म तत्वों के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मायावच्छिन्न चैतन्य परमेश्वर, माया विशिष्ट चैतन्य ईश्वर तथा मायोपाधिक चैतन्य साक्षी कहलाता है।[1] एक ही माया जो ईश्वर का विशेषण है वही साक्षी की उपाधि है। परन्तु ईश्वर और साक्षी रूप धर्मों में कुछ भेद नहीं है। यहां यह और विचारणीय है कि वेदान्त परिभाषाकार के अनुसार साक्षी भी जीव साक्षी और ईश्वरसाक्षी रूप से दो प्रकार का होता है।[2] अन्तःकरणरूप विशेषण के द्वारा जो जीव है वही अन्तःकरण उपाधि के द्वारा जीवसाक्षी। इसी प्रकार माया विशिष्ट चैतन्य ईश्वर और मायोपाधिक चैतन्य ईश्वरसाक्षी कहलाता है। माया की विशेषता के द्वारा ही ईश्वर में कर्तृत्व आदि की शक्ति देखी जाती है। इसी प्रकार जीव में भी अन्तःकरण की विशेषता के द्वारा ही सुखी, दुःखी आदि अभिमान उत्पन्न होते हैं। यहां जीव को अन्तःकरण की विशेषता से यही तात्पर्य है। जो कार्य में अन्वित होकर स्ववर्तमान अवस्था में व्यावर्तक है, वह विशेषण है। इसके विपरीत कार्य में अनन्वित होकर स्ववर्तमान अवस्था में व्यावर्तक का नाम उपाधि है।[3] माया के अनादि होने के कारण जीव साक्षित्व और ईश्वर साक्षित्व भी मायिक होने के कारण अनादि हैं।

विद्यारण्यमुनि ने पंचदशी के कूटस्थदीप में कहा है कि स्थूल और सूक्ष्म शरीर का अधिष्ठान कूटस्थ चैतन्य अपने अवच्छेदक उक्त दोनों शरीरों का साक्षात् द्रष्टा है, परन्तु कर्तृत्वादि विकारों से शून्य होने के कारण साक्षी है।[4] लोक में भी साक्षी वही व्यक्ति माना जाता है। जो विषय का ज्ञाता होने पर भी उदासीन होता है। जीव और साक्षी के भेद को स्पष्ट करते हुए मुनि विद्यारण्य ने पंचदशी के नाटक दीप प्रकरण में नृत्यशाला स्थित दीपक के दृष्टान्त के द्वारा साक्षी के रूप को बड़े सुन्दर प्रकार से स्पष्ट किया है। जिस प्रकार नृत्यशाला में स्थित दीपक प्रभु (नाटक के स्वामी), सभ्य और नर्तकी आदि को समान रूप से प्रकाशित करता है और उन सब के अभाव में भी प्रकाशित होता रहता है उसी प्रकार साक्षी भी

---

१. मायावच्छिन्नं चैतन्यं परमेश्वरः मायायाः विशेषणत्वे ईश्वरत्वम् उपाधित्वे साक्षित्वम्।
वेदान्त परिभाषा पृ० २४

२. वेदान्त परिभाषा पृ० २१। ३. वही पृ० २२।

४. देखिए—सिद्धान्त लेश संग्रह (१—९२) पर उद्धृत विद्यारण्य का मत।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अहंकार रूप प्रभु, विषय रूप सभ्य, बुद्धिरूप नर्तकी और आदि को धारण करने वाली इन्द्रियों का समान रूप से अवभासक है।[१] यह साक्षि चैतन्य अहंकारादि के न रहने पर भी स्वयं प्रकाश रूप होने के कारण प्रकाशित होता ही रहता है।

तत्व प्रदीपिका कार चित्सुखाचार्य जीव और ईश्वर से रहित शुद्ध चिदात्मा को ही साक्षी मानते हैं। इनका कथन है कि मायोपहित सगुण परमेश्वर में केवल शुद्ध और गुणरहित आदि विशेषण नहीं सिद्ध हो सकते। शुद्धता एवं निर्गुणता के अभाव में साक्षीगत उदासीनता भी नहीं आ सकती। इसलिये विशुद्ध निर्गुण ब्रह्म ही साक्षी होने के योग्य है।[२] कौमुदीकार ने जीव की प्रवृत्ति और निवृत्ति के ज्ञाता, स्वयंमुदासीन परमेश्वर के स्वरूप विशेष को ही साक्षी कहा है।[३] कौमुदीकार के मतानुसार साक्षी ईश्वर का स्वरूप विशेष होने पर भी कारणत्व आदि धर्मों के न रहने से अपरोक्ष है और जीवगत अज्ञान आदि का अवभासक होने के कारण जीव का अत्यन्त अन्तरंग भी है।

तत्वशुद्धिकार ने भी कौमुदीकार के मत का ही समर्थन किया है। तत्व-शुद्धिकार का कथन है कि यद्यपि वस्तुतः ब्रह्म कोटि में ही साक्षी का अन्तर्भाव है तथापि 'अहं सुखमनुभवामि' (मैं सुख का अनुभव करता हूँ) प्रतिभास से जीव कोटि के अन्तर्गत आता है। अतः जीव के सुख आदि के व्यवहार में, सुख आदि के अनुभवकर्ता साक्षी का उपयोग है। कौमुदीकार ने भी साक्षी को जीवगत अज्ञान आदि का अवभासक होने के कारण जीव का अत्यन्त अन्तरग स्वीकार किया है। कुछ विद्वानों के मत में अविद्या प्रतिबिम्बित चैतन्य रूप जीव ही साक्षात् दृष्टा होने के कारण साक्षी है। इस मत की एक दुर्बलता यह है कि यदि सर्वगत अविद्या से उपहित जीव को साक्षी माना जायगा तो अन्य पुरुषों के अन्य पुरुषों के अन्तःकरण आदि का प्रत्यक्ष होना आरम्भ हो जायगा। परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। इसलिए अन्तःकरणोपहित चैतन्य रूप से ही जीव साक्षी है। ऐसा मानने पर साक्षी के भेद में प्रयोजनीभूत उपाधि का भेद होने पर प्रति पुरुष-साक्षी का भेद सिद्ध होता है। इस प्रकार अन्य पुरुषों के अन्त.करण आदि का अन्य पुरुष के साक्षी के साथ सम्बन्ध न होने से उपर्युक्त आपत्ति नहीं आती। इस सम्बन्ध में यह शंका करना उचित नहीं है कि अन्तःकरण से उपहित चैतन्य प्रमाता हो सकता है साक्षी नहीं। इसलिये सुषुप्ति में प्रमाता के न रहने पर भी साक्षी के रहने से प्रमाता और साक्षी का भेद अवश्य

---

१. पंचदशी नाटकदीप प्रकरण ११, १२। २. सिद्धान्त लेश संग्रह १-९३।

३. परमेश्वरस्यैवरूपभेदा कश्चिज्जीव प्रवृत्ति निवृत्योरनुमन्ता स्वयमुदासीनः सा साक्षीनाम। सिद्धान्त लेश संग्रह १-९४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानना होगा। इस शंका का समाधान विशेषण और उपाधि का सैद्धान्तिक भेद मानने पर स्वतः ही हो जाता है। क्योंकि अन्तःकरण रूप विशेषण से विशिष्ट चैतन्य प्रमाता है और अन्तःकरण से उपहित चैतन्य-साक्षी। इस प्रकार प्रमाता और साक्षी का भेद स्वतः सिद्ध है।

एक जीववाद और अनेक जीववाद—

अविद्योपाधिक कर्मफल के भोक्ता, कर्तृत्वादि के अभिमानी जीव की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान केवल एक ही जीव की सत्ता मानते हैं। इसके विपरीत दूसरे विद्वान जीवों की अनन्त संख्या को स्वीकार करते हैं। एक जीववाद के सिद्धान्त के समर्थक विद्वानों का कथन है कि शरीरधारी जीव एक ही है। इसके अतिरिक्त भासमान जीव स्वप्नवत् मिथ्या हैं। एक ही जीव अविद्या के कारण समस्त जगत् की कल्पना करता है।[1] जिस प्रकार स्वप्न में देखे पदार्थों को, निद्रा निवृत्ति होने पर निवृत्ति हो जाती है उसी प्रकार अविद्या निवृत्ति के पश्चात् अनन्त जीव युक्त जगत् की कल्पना भी नष्ट हो जाती है। इस मत के अनुयायी एक जीव को ही मानने के कारण बन्धन और मुक्ति की व्यवस्था को नहीं मानते। मुक्ति को ये एक जीववादी विद्वान काल्पनिक मानते हैं। इस मत की सब से बडी दुर्बलता यह है कि इस मत के अनुसार जीव ही समस्त काल्पनिक जगत् का स्रष्टा है। वास्तव में स्रष्टृत्व का कार्य ईश्वर का है न कि जीव का। ईश्वर ही बिना किसी प्रयोजन के जगत् का स्रष्टा है।[2] कदाचित् इस उक्त आपत्ति के कारण ही एक जीववादियों का एक दूसरा वर्ग जीव के सृष्टिकर्त्ता होने का निरोध करते हुए ब्रह्म के प्रतिबिम्बभूत एक हिरण्यगर्भ को ही मुख्य जीव मानता है। मुख्य जीव हिरण्यगर्भ के अतिरिक्त तत्प्रतिबिम्बभूत चित्रपट में लिखित मनुष्य देह में अर्पित पटाभास के समान जीवाभास संसारादि के भोक्ता हैं। इस प्रकार एक जीववाद के इस सिद्धान्त के अनुसार अनेक शरीर सजीव हैं।[3] यह मत भी दोषपूर्ण है। क्योंकि प्रत्येक कल्प में हिरण्यगर्भ का भेद होने से किसी एक हिरण्यगर्भ में मुख्य रूप से जीवत्व की स्थापना नहीं की जा सकती। इस त्रुटि को दूर करने के लिये ही एक जीववादियों ने एक तृतीय मत की स्थापना करते हुये लिखा है कि एक ही जीव मुख्यामुख्यविभाग के बिना ही सब शरीरों में अपने भोग के लिये अधिष्ठित है।[4] इसका तात्पर्य यह

१. सिद्धान्त लेश संग्रह १ परि०। २. ब्र० सू० शा० भा० २-१-३३।
३. सिद्धान्त लेश संग्रह १—२२२, १२३। ४. वही १—१२३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है कि अविद्या के एक होने के कारण तत्प्रतिबिम्बित चैतन्य-जीव एक है। वही जीव सकल शरीरों में स्वभोग के लिये अधिष्ठित है। एक जीववादियों का यह सिद्धान्त अविशेषानेकशरीरैक जीववाद के नाम से प्रख्यात है। यदि देखा जाय तो एक जीववादियों का यह सिद्धान्त भी त्रुटिपूर्ण है। क्योंकि यदि एक जीव को ही सकल शरीरों का अधिष्ठान माना जायेगा तो उस जीव को भिन्न २ शरीरों की सुख-दुःखादि की अनुभूति भी होगी। किन्तु ऐसा नहीं होता। अपने प्रिय बन्धु का सदा के लिये विछोह होने पर किसी भी एक जीववादी को शोक के साथ-साथ सुख-दुःखमय संसार के किसी शरीर का हर्ष प्रकट करते नहीं देखा गया। इसलिये एक जीववाद का सिद्धान्त नितान्त असंगत है।

प्रत्येक जीव के भिन्न-भिन्न कर्मफल और रुचि वैचित्र्य के आधार पर अनेक जीववाद का सिद्धान्त ही युक्ति प्रतिपाद्य है। अनेक जीववाद के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म ही अविद्याजन्य अन्तःकरणोपाधि के द्वारा अनेक जीव भावत्व को प्राप्त करके संसारी हो जाता है। शंकराचार्य का कथन है कि अनन्त संसारी जीव अपने स्वरूप बोध (ब्रह्म बोध) से वंचित होकर ही अविद्या रूप अज्ञान की निद्रा में शयन किया करते हैं।[1] अविद्या जन्य एक उपाधिगत बन्ध की अनुवृत्ति होने पर एक जीव का व्यवहार और अन्य उपाधिगत बन्ध की अनुवृत्ति होने पर जीवान्तर का व्यवहार होता है। कोई एक जीव ही अविद्या बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्मात्म भाव को प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि जिस जीव की अविद्या निवृत्ति हो जाती है वही मुक्त होता है। तदितर जीव बद्ध ही रहते हैं क्योंकि एक का अज्ञान नष्ट होने पर सभी का अज्ञान नष्ट नहीं होता। इसलिये जीवों की अनन्तता स्पष्ट ही है।[2] असंख्य जीवों की अनन्तता के सम्बन्ध में यह शंका की जा सकती है कि सर्वज्ञ ईश्वर द्वारा जीवों की संख्या के ज्ञात होने पर जीवों की अनन्तता सिद्ध नहीं हो सकती। अन्यथा ईश्वर के सर्वज्ञत्व में सन्देह होगा। इस शंका के समाधान में यह कहा जायेगा कि अविद्या के अनादि होने के कारण अविद्याजन्य जीवों की निश्चित संख्या के अभाव में जीवों की एक काल में गणना न होने के कारण ही जीवों को अनन्त कहा गया है। इस प्रकार अनादि-अविद्यावर्ती जीवों की गणना ही असम्भव है। इससे ईश्वर की सर्वज्ञता में भी दोष नहीं आता।[3]

---

१. ब्र० सू० शा० भा० १-४-३.
२ अनन्ताश्च जीवा अज्ञातसंख्यात्वात्। वेदान्त कौमुदी, पृ० २७८, मद्रपुरी।
४ वेदान्त कौमुदी, पृ० २७८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवों की अनेकता के सम्बन्ध में भी अनेक जीववादियों के विभिन्न मतवाद प्रसिद्ध हैं। अनेक जीववादियों में से कुछ-एक तो अन्तःकरण आदि को जीव की उपाधि मानकर, बद्ध और मुक्त की पृथक् व्यवस्था करके अनेक जीववाद के सिद्धान्त की स्थापना करते हैं।[1] इसके विपरीत अनेक जीववादियों के द्वितीय मत के अनुसार यद्यपि शुद्ध ब्रह्म का आश्रय एवं विषय अज्ञान एक ही है और उसके नाश होने से ही मोक्ष होता है, तथापि अज्ञान सांश है। क्योंकि जीवन्मुक्ति में अज्ञान के विक्षेपांश की अनुवृत्ति होती है। इसलिये जिस उपाधि में (जीवरूप अधिकरण में) ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति होगी, उसी स्थल में अज्ञान की आंशिक निवृत्ति होगी। अन्य उपाधियों में तो पूर्ववत् अपने अंशों में अज्ञान की अनुवृत्ति रहेगी ही।[2] अनेक जीववादियों का एक तीसरा मत भी है। यह मत नैयायिक का है। नैयायिक का तर्क है कि जिस प्रकार भूतल में घटात्यन्ताभाव की वृत्ति में घटसंयोगाभाव के नियामक होने के कारण, घटसंयोगाभाव वाले प्रदेशों में घटात्यन्ताभाव सम्बन्ध करके स्थित रहता है और प्रदेशान्तर में, जहां घट-संयोग से घटसंयोगाभाव की निवृत्ति हो गई है, सम्बद्ध नहीं होता उसी प्रकार चैतन्य में अज्ञान की वृत्तिता का नियामक मन होने के कारण अज्ञान मन रूप उपाधि से युक्त प्रदेश में तो व्याप्त करके रहने वाली जाति के समान, अन्तःकरण में प्रतिबिम्ब रूप समस्त जीवों में रहता है। (जैसे जाति रूप धर्म नष्ट व्यक्ति का त्याग कर देता है उसी प्रकार अज्ञान उस जीव का त्याग कर देता है जिसमें विद्या उत्पन्न हो जाती है। यही त्याग मोक्ष का हेतु है) परन्तु जिस पुरुष में विद्या का आविर्भाव नहीं हुआ है अज्ञान उसका आश्रय मानकर रहता है।[3] जिस जीव में अज्ञान आश्रय मानकर रहता है, वह बद्ध होता है। इस प्रकार बन्ध और मोक्ष की कल्पना भी इन अनेक जीववादियों की भिन्न ही है। अनेक जीववादियों के एक वर्ग का कहना है कि प्रत्येक जीव में अविद्या भिन्न रूप से स्थित है। इसलिये प्रत्येक जीव की मुक्ति उसकी अविद्या निवृत्ति पर निर्भर करती है।

उक्त विवेचन के आधार पर एक जीववाद की अपेक्षा अनेक जीववाद का सिद्धान्त ही उचित प्रतीत होता है।

---

१. सिद्धान्त लेश संग्रह, पृ० १२५।

२. यद्यपि शुद्ध ब्रह्माश्रयविषयमेकमेवा ज्ञानम्, तन्नाश एवचमोक्षः, तथापि जीवन्मुक्तौ अज्ञान-लेशानुवृत्त्यभ्युपगमेन अज्ञानस्य सांशत्वात् तदेव क्वचिदुपाधौ ब्रह्मावगमोत्पत्तौ अंशेन निवर्त्तते, उपाध्यन्तरेषु यथापूर्वमंशान्तरैरनुवर्तत इति। सिद्धान्त लेश संग्रह, पृ० १२६।

३. सिद्धान्त लेश संग्रह, पृ० १२९।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीव की अविद्यानिवृत्ति एवं मुक्ति

ब्रह्म की जीवरूपता का मूल कारण अविद्या है। अविद्या के द्वारा ही जीव में कर्तृत्वादि का अभिमान उत्पन्न होता है। विद्या की उत्पत्ति एवं अविद्या की निवृत्ति होने पर जीव अपने स्वरूप का बोध कर लेता है। यह आत्मबोध ही मुक्ति है। मुक्ति प्राप्त होने पर जीव का जीवत्व नष्ट होने से जीव का बन्धन नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार अविद्यावश जब तक रज्जु का सर्परूपेण ज्ञान होता है तब तक सर्पजन्य भय आदि बन्धन बने रहते हैं परन्तु जब वास्तविक रूप रज्जु का ज्ञान होता है तो भ्रान्तिकालीन सर्प के नष्ट हो जाने पर तज्जन्य भयादि बन्धन भी स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार कूटस्थ ब्रह्मात्मता के बोध के द्वारा जीव का जीवत्व नष्ट होने पर जीव के सुख-दुःखादि बन्धन भी स्वतः नष्ट हो जाते हैं।[1] इस प्रकार बन्धन और मोक्ष का व्यवहार भी मायिक ही है।[2] ब्रह्म स्वभाव से शुद्ध एवं मुक्त है। मुक्ति की विस्तृत चर्चा का यही आधार है।

शंकराचार्य ने मोक्ष का स्वरूप निश्चित करते हुए लिखा है कि मोक्ष पारमार्थिक, कूटस्थ, नित्य, व्योमवत् सर्वव्यापी, सर्वविकार रहित, नित्य तृप्त, निरवयव, स्वयं प्रकाश स्वभाव है। इस अवस्था में धर्म और अधर्म अपने कार्य—सुख-दुःख से त्रिकाल में भी सम्बन्ध नहीं रख सकते। यही शरीर रहित स्थिति मोक्ष है।[3] (जिस प्रकार शुक्ल स्फटिक मणि में रक्तनीलादि उपाधियों के कारण स्फटिक के शुद्धरूप का ज्ञान नहीं हो पाता और उपाधि के नष्ट हो जाने पर स्फटिक के शुद्धरूप का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार जीव को भी देहाद्युपाधि के कारण आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं होता) परन्तु विवेक के द्वारा उसे आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाता है। यही आत्मस्वरूप की बोधावस्था मुक्तावस्था है। मोक्ष की उपादेयता बन्धन की निवृत्ति मात्र है। इस मुक्तावस्था में ही आत्मानन्द की प्राप्ति होती है। आचार्य चित्सुख अनवच्छिन्नानन्द प्राप्ति को ही मोक्ष कहते हैं।[4] आत्मा स्वरूपतः चिदानन्दघन है। उसका यह रूप अविद्या की आवरण शक्ति के द्वारा बाधित होने के कारण नहीं जाना जाता। मुक्ति के सम्बन्ध में इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि मुक्त पुरुष का इस धराधाम के प्रपंच के साथ क्या सम्बन्ध है? मुक्त पुरुष के लिये इस प्रपंच-रूप जगत् की सत्ता रहती है अथवा नहीं? इसके उत्तर में यह

१. मुण्डकोपनिषद् २–२–८।
२. बन्धमोक्षोपदेशादि व्यवहारोऽपि मायया। मानसोल्लास २–५६, अड्यार मद्रास।
३. ब्र० सू० शा० भा० १–१–४। ४. सि० ले० सं० पृ० ५२८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा जायगा कि मुक्त पुरुष के लिये यह प्रपंच रूप जगत् उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार कि अग्नि के द्वारा घृत का काठिन्य नष्ट हो जाता है। यदि मोक्ष का आशय प्रपंच रूप जगत् के विनाश से हुआ होता तो सर्वप्रथम मुक्त पुरुष के होने पर ही जगत् का विनाश हो गया होता।[1] मुक्त पुरुष के लिये भी इस द्वैत जगत् का विनाश न होकर 'ज्ञाते द्वैतं न विद्यते' के अनुसार केवल द्वैत बुद्धि का नाश हो जाता है। जगत् के प्रति उसको 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अनुभूति होती है। ब्रह्मवेत्ता का जगत् के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता। ब्रह्मज्ञानी स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है।

मुक्तावस्था एवं बद्धावस्था में यही अन्तर है कि मुक्त पुरुष के लिये अविद्या की निवृत्ति हो जाने पर मिथ्याभिमान भ्रमजन्य दुःखाद्यनुभूति नहीं रहती। कारण कि दुःखाद्यनुभूति का कारण मिथ्याभिमान ही है। अविद्याजन्य मिथ्याभिमान के कारण ही पुत्र-मित्रादि के मरने पर संसारी पुरुषों को मरण जन्य-शोक की अनुभूति होती है। अविद्याभिमान से रहित सच्चे परिव्राजक इस प्रकार की दुःखाद्यनुभूति के भाजन नहीं बनते।[2]

शंकराचार्य के मुक्ति सम्बन्धी मत का समर्थन करते हुए सुरेश्वराचार्य ने लिखा है कि जिस प्रकार निद्रा-भंग होने पर द्रष्टा स्वप्न में दृष्ट पदार्थों को पुनः नहीं देखता उसी प्रकार ज्ञानी सम्यग् ज्ञान होने पर इस विश्व को नहीं देखता।[3] विश्व की इस स्वप्नमात्रता का यही भाव है कि आत्मैकत्व प्राप्त हो जाने पर बन्ध-मोक्षादि समस्त व्यवहारों की परिसमाप्ति हो जाती है।[4] यही माण्डूक्योपनिषद् वर्णित 'प्रपंचोपशमत्व' की स्थिति है।[5]

मुक्त पुरुष के लिये किसी अन्य ब्रह्मलोक का अथवा स्वर्गलोक की कल्पना करना भी शांकर-दर्शन के प्रतिकूल है। 'कार्यंबादरिरस्यगत्युपपत्तेः' सूत्र में बादरायण

---

१. एकेन चादिमुक्तेन पृथिव्यादि प्रविलयः कृत इदानीं पृथिव्यादि शून्यं जगदभविष्यत्।
ब्र० सू० शा० भा० ३-२-२१।

२. पुत्रो मृतो मित्रं मृतम्, इत्येवमाद्युद्घोषितेयेषामेव पुत्रमित्रादि मत्वाभिमानः, तेषामेव तन्निमित्तं दुःखमुत्पद्येत, नाभिमान हीनानां परिव्राजकादीनाम्।
ब्र० सू० शा० भा० २-३-४६।

३. निद्रया दर्शितानर्थान्न पश्यति यथोत्थितः।
सम्यग्ज्ञानोदयादूर्ध्वं तथा विश्वं न पश्यति। मानसोल्लास १-१२।

४. ब्र० सू० शा० भा० १-२-६। ५. मा० उ० ७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वारा उद्धृत आचार्य बादरि के मत की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि सगुण ब्रह्म अर्थात् ईश्वर में गन्तव्यत्त्व की उपपत्ति होने के कारण उपासक ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है परन्तु परब्रह्म में गन्तृत्त्व, गन्तव्यत्त्व या गति की कल्पना नहीं हो सकती। क्योंकि ब्रह्म सर्वगत एवं गमन करने वालों का प्रत्यगात्मा है।[1] मुक्त पुरुष स्वयं ब्रह्मरूप ही होता है। अद्वैत मत में ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ सत्य नहीं है। इसीलिये मुक्त पुरुष के लिये कोई गन्तव्य स्थान न होने के कारण किसी लोकान्तर की प्राप्ति का प्रश्न उपस्थित नहीं होता।

मुक्ति की अवस्थायें स्वर्गादि की अनेक विधता के समान अनेक नहीं हैं। ब्रह्म ही मुक्ति की अवस्था है। ब्रह्म का एक निश्चित स्वरूप होने के कारण उसके अनेक रूप नहीं हो सकते।[2] अतएव मुक्ति के सम्बन्ध में की गई भेद-व्यवस्था भी निरर्थक है। मुक्त पुरुष 'नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति सभूमा (छा० उ० ७-२४-१)' श्रुति वाक्य के अनुरूप व्यवहारकाल के दर्शनादि व्यवहारों से सम्बन्धित नहीं होता। मुक्त के लिये आत्मैकत्त्व रूप ज्ञान प्राप्त होने पर समस्त जागतिक विभेद नष्ट हो जाता है। ब्रह्मज्ञानी अथवा मुक्त की यह स्थिति नितान्त शून्यता की स्थिति नहीं है। प्रत्युत ज्ञानी के लिये आत्मैकत्त्व हो जाने पर जगत् की" प्रतीति न होकर समान रूप से ही प्रतीति होती है।[3]

मुक्त के आत्मैकत्त्व के सम्बन्ध में भी विद्वानों की भिन्न-भिन्न धारणायें हैं। जैमिनि आचार्य का विचार है कि मुक्तात्मा सर्वज्ञत्व आदि धर्मों से युक्त होता है।[4] इसके विपरीत आचार्य औडुलोमि जीवों के चैतन्यस्वरूप होने से चैतन्य रूप में अवस्थित मुक्त ब्रह्म में सर्वज्ञत्वादि शब्दों की योजना व्यर्थ ही मानते हैं।[5]

बादरायण का मत है कि पारमार्थिक चैतन्यमात्र के स्वीकार कर लेने पर भी ब्रह्म स्वरूप के सर्वज्ञत्त्व आदि व्यवहार होने से मुक्तात्मा के सप्रपंचत्त्व और निष्प्रपंचत्त्व का विरोध नहीं है।[6]

मुक्तात्मा शरीरपात होने पर पुनः शरीर को धारण करता है अथवा मुक्त होने के उपरान्त जन्म ग्रहण करने के बन्धन से छूट जाता है, इस समस्या पर भी

१. ब्र० सू० शा०भा० ४-३-७।

२. ब्रह्मैवहि मुक्त्यवस्था, न च ब्रह्मणोनेकाकारयोगोऽस्ति। ब्र० सू० शा० भा० ३-४-५२।

३. मुक्तस्यापि सर्वैकत्त्वात् समानो द्वितीयाभावः। शा० भा० छा० उ० ८-१२-२।

४. ब्र० सू० शा० भा० ४-४-५,

५. वही ४-४-६।

६. ब्र० सू० ४-४-७,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विचार करना अपेक्षित है। प्राचीन इतिहास में मुक्तात्माओं के शरीर ग्रहण करने की अनेक कथायें मिलती हैं। अपान्तरतमा नाम के आचार्य ने विष्णु की आज्ञा से कलि और द्वापर की सन्धि में कृष्ण द्वैपायन रूप से जन्म ग्रहण किया था। ब्रह्मा के मानसपुत्र वसिष्ठ ने भी निमि के शाप से पूर्व देह का त्याग करके ब्रह्मा के आदेश से मित्रवरुण के रूप में जन्म ग्रहण किया था। इस प्रकार के दृष्टान्तों के सम्बन्ध में यह कहा जायगा कि अपान्तरतमा आदि लोक मर्यादा के अर्थ वेद प्रवर्तन आदि अधिकार में नियुक्त हुए थे। अतः उनकी स्थिति अधिकाराधीन है। जिस प्रकार 'अथ तत ऊर्ध्वं उदेत्य नैवोदेता नास्तमैकल एव मध्येस्थाता (छा० उ० ३-११-१)' श्रुति वाक्य के अनुसार सूर्य सहस्र युगों तक जगत् का अधिकार चला कर उसकी समाप्ति होने पर उदय और अस्त से रहित कैवल्य का अनुभव करता है और जैसे आज भी ब्रह्मवेत्ता आरम्भ कर्मों के भोग के क्षीण होने पर कैवल्यानुभूति को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर के द्वारा तत् अधिकारों में नियुक्त हुए अपारन्तरतमा आदि कैवल्य हेतु-सम्यक्-तत्त्वज्ञान के होने पर भी कर्मों के क्षीण न होने से अधिकार पर्यन्त रहते हैं। कर्मों के क्षीण होने पर ही कैवल्य प्राप्ति होती है।[१]

शंकर परवर्ती अद्वैतवाद में मुक्ति के सम्बन्ध में अनेक मतमतान्तर प्राप्त होते हैं। सर्वज्ञात्म गुरु जीवन मुक्ति को ही अस्वीकार करते हैं। इनके मत में अविद्या के विरोधी ब्रह्मज्ञान रूप तत्त्व साक्षात्कार के उदित हो जाने पर अविद्या की अनुवृत्ति लेशरूप से भी सम्भव नहीं है। इसलिये ये जीवन्मुक्ति के प्रतिपादक शास्त्र को श्रवण आदि विधि का केवल अर्थवाद मात्र मानते हैं। क्योंकि जीवन्मुक्ति के प्रतिपादन में शास्त्र का प्रयोजन नहीं प्रतीत होता। सर्वज्ञात्म गुरु का कथन है कि जिस पुरुष ने निदिध्यासन किया है उस पुरुष को ब्रह्म का साक्षात्कार के उदय-मात्र से विलास और वासना के साथ अविद्या की निवृत्ति हो जाती है।[२] आनन्द-बोधाचार्य अविद्या की अनिर्वचनीयता के अनुरूप ही अविद्या की निवृत्ति को भी अनिर्वचनीय ही मानते हैं।[३] जैसे कि कहा जा चुका है आचार्य चित्सुख अनवच्छिन्न (शुद्ध) आनन्द की प्राप्ति को ही मुक्ति मानते हैं क्योंकि दुःखाभाव के स्वतः पुरुषार्थ न होने से संसार रूप दुःख की निवृत्ति भी अविद्या निवृत्ति के समान सुख की अंग है।[४]

मुक्त पुरुष के सम्बन्ध में इस शंका का होना स्वाभाविक है कि मुक्त पुरुष

---

१. ब्र० सू० शा० भा० ३-३-३२,   २. सिद्धान्त लेश संग्रह पृ० ५१४।
३. वही चतुर्थ परि०,   ४. वही।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुद्ध चैतन्य रूप को प्राप्त होता है अथवा ईश्वर रूप को। इसका समाधान यह है कि एक जीववाद के पक्ष में तो केवल जीव के एक अज्ञान से कल्पित जीव और ईश्वर के विभाग आदि समस्त प्रपंच का उस जीव की विद्या का उदय होने पर विनाश होने से निर्विशेष चैतन्यरूप से ही जीव का अवस्थान होता है। अनेक जीववाद के सिद्धान्त के अनुसार जिस पुरुष का ज्ञानोदय हुआ है उसी पुरुष के लिये अविद्यादि समस्त प्रपंच का विलय होगा। परन्तु अन्यवद्ध पुरुषों की अविद्या से जीव तथा ईश्वर विभाग आदि प्रपच की अनुवृत्ति होने पर भी जीव के समान ईश्वर के भी प्रतिविम्ब विशेष होने के पक्ष में मुक्त पुरुष विम्वभूत शुद्ध चैतन्य रूप से ही अवस्थित रहता है। क्योंकि अनेक उपाधियों में एक ब्रह्म चैतन्य के प्रतिविम्व होने पर एक उपाधि के विलय से उस प्रतिविम्ब का विम्व भाव से अवस्थान उचित ही है।

जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति

जैसा कि साधारणतया समझा जाता है जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति के दो भेद नहीं हैं। इस सन्देह की निवृत्ति के लिये ही शंकराचार्य ने अपने भाष्य में 'मुक्त्यवस्था हि सर्ववेदान्तेष्वेकरूपैवावधार्यते' (ब्र० सू० ३-४-५२) कह कर मुक्तिपरक अवस्था भेद का स्पष्ट निषेध किया है। जीवन्मुक्ति के लिए अविद्या की निवृत्ति एवं ब्रह्मबोध होने पर कर्मबन्धन समाप्त हो जाता है। परन्तु जिस प्रकार छोड़े हुए बाण की निवृत्ति वेग का क्षय होने पर होती है, उसी प्रकार जिस कर्म का फल प्रवृत्त हो चुका है उसकी निवृत्ति शरीरपात होने पर ही होती है। जब तक पूर्वकृत कर्मों का भोग समाप्त नहीं हो जाता, तब तक मुक्त पुरुष को भी शरीर धारण करना ही पड़ता है। मुक्त पुरुष के जीवन धारण करने की समस्या कुम्भकार के चक्र के दृष्टान्त से स्पष्ट समझी जा सकती है। जिस प्रकार एकबार चलाया गया कुम्भकार का चक्र तब तक नहीं रुकता जब तक कि उसका वेग समाप्त नहीं हो जाता उसी प्रकार मुक्त पुरुष को भी प्रवृत्त फल वाले गत कर्मों के भोग के लिये जीवन धारण करना ही पड़ता है।[1]

यदि जीवन्मुक्त प्राणी संसार में रहता है तो मुक्त एवं अमुक्त के बीच क्या अन्तर है? क्या मुक्त पुरुष भी अमुक्त की ही तरह कर्म करता रहता है अथवा हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाता है? इत्यादि प्रश्नों का होना स्वाभाविक है। इन शंकाओं के समाधान के लिये यह कहा जायगा कि जिस प्रकार जादू देखने वाला पुरुष जादू को

१. ब्र० सू० शा० भा० ४-१-१५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिथ्या समझता है उसी प्रकार जीवन्मुक्त भी मांस-रक्त-मल-मूत्रादि के पात्र शरीर, अन्धत्वादि के भाजन इन्द्रिय समूह और शोक मोहादि के पात्र अन्तःकरण से पूर्व वासना के कारण किये जाते हुये कर्मों तथा आरब्ध कर्मों के मुक्त फलों को देखता हुआ भी परमार्थ दृष्टि से नहीं देखता।[1] इस प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष सब कुछ देखते हुये भी नहीं देखता और सुनते हुये भी नहीं सुनता। इसके विपरीत अमुक्त अथवा बद्ध के समस्त क्रिया-कलाप कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अभिमानजन्य होते हैं। बद्ध पुरुष की शुभाशुभ कर्मों में आसक्ति होती है परन्तु जीवन्मुक्त पुरुष शुभाशुभ कर्मों के प्रति उदासीन होता है। शुभ वासनाओं के अनुरूप जीवन्मुक्त की प्रवृत्ति शुभ कर्मों में ही होती है। जीवन्मुक्तावस्था में जीवन्मुक्त पुरुष आत्मानुभव में लीन रहता है। जीवन्मुक्त स्वेच्छाकृत, परेच्छाकृत एवं अनिच्छाकृत कर्मों से उत्पन्न सुख-दुःखों का अनुभव करता हुआ भी अपने ज्ञान के द्वारा सब कुछ तात्त्विक दृष्टि से देखता है। जब प्रारब्ध कर्मों के नष्ट हो जाने पर प्राणादि विलीन हो जाते हैं तो अज्ञान एवं तज्जन्य संस्कारों के नष्ट होने पर ब्रह्ममात्र अवशिष्ट रह जाता है।[2] यही विदेहमुक्ति की अवस्था है। जिस प्रकार घटादि उपाधि के नष्ट हो जाने पर आकाश मात्र अवशिष्ट रह जाता है उसी प्रकार केवलावस्था में ब्रह्ममात्र अवशिष्ट रह जाता है।

माया और प्रपंच का विकास-क्रम

शंकराचार्य ने, क्रमिक–विकास को पदार्थ का धर्म होने के कारण[3] आकाशादि प्रपंच के विकास का भी क्रम माना है। तमोगुण प्रधान माया की विक्षेप शक्ति से युक्त अज्ञानोपहित चैतन्य से पहिले आकाश की उत्पत्ति होती है। आकाश से वायु उत्पन्न होता है, वायु से अग्नि की उत्पत्ति होती है, अग्नि से जल उत्पन्न होता है और जल से पृथिवी उत्पन्न होती है।

अग्नि से जल की उत्पत्ति होने में यह शंका स्वाभाविक है कि अग्नि और जल का पारस्परिक विरोध होने के कारण अग्नि से जल की उत्पत्ति किस प्रकार सिद्ध की जा सकती है। वास्तव में यदि विचार किया जाय तो अग्नि और जल में विरोध की कल्पना ही अनुचित है। उदाहरण के लिये ताप के आधिक्य में स्वेद और वृष्टि की उत्पत्ति दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म अपंचीकृत अग्नि और जल का विरोध भी नहीं कहा जा सकता। इसलिये उक्त शंका निरर्थक है। जल से पृथिवी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूर्वपक्षी का तर्क है कि 'ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः

१. वेदान्त सार ३५, २. वेदान्तसार ३८।

३. पदार्थधर्मत्वात् क्रमस्य। ब्र० सू० शा० भा० २-३-६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त' (छा० उ० ६–२–४) श्रुति के आधार पर अन्न से व्रीह्यादि, ओदनादि अन्न का ग्रहण करना ही युक्त होगा न कि पृथ्वी का। क्योंकि लोक में भी अन्न शब्द से ऐसा ही व्यवहार होता है। इस सम्बन्ध में शंकराचार्य का कथन है कि अन्न शब्द से जलोत्पन्न पृथिवी का अर्थ ग्रहण ही समुचित है। इसके तीन कारण हैं—अधिकार, रूप और श्रुति। 'ततैजो सृजत' 'तदपो सृजत' (छा० उ० ६–२–३) के प्रसंग में पंच-महाभूत विषयक अधिकार होने के कारण अन्न शब्द से क्रम प्राप्त पृथिवी महाभूत का ग्रहण ही समीचीन होगा। इस प्रकार 'यत्कृष्णं तदन्नस्य' (छा० उ० ६–४१) के द्वारा जो अन्न का कृष्ण रूप निश्चित किया गया है वह भी पृथिवी का ही है न कि ओदनादि एवं व्रीह्यादि का। अन्न का अर्थ पृथ्वी लेने का तीसरा कारण श्रुति प्रमाण है। श्रुति में 'अद्भ्यः पृथिवी' 'तद्यदपांशर आसीत्तत्समहन्यता सापृथिव्यभवत्' (वृ० उ० १–२–२) आदि वाक्य जल से पृथिवी की ही उत्पत्ति सिद्ध करते हैं।[1] इस प्रकार अन्न से व्रीह्यादि की उत्पत्ति की कल्पना निरर्थक ही कही जायगी।

सत, रज और तमोगुण से युक्त त्रिगुणात्मिका माया से आकाशादि की उत्पत्ति होने पर उत्तरोत्तर कारण गुण के अनुरूप आकाशादि में सत्, रज और तम ये तीनों ही गुण उत्पन्न होते हैं। अपंचीकृत सूक्ष्मरूप पंचभूत—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी ही क्रम से शब्द तन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा तथा गन्धतन्मात्रा कहलाते हैं। इन्हीं सूक्ष्मभूतों से अपंचीकृत सूक्ष्म प्रपंच तथा पंचीकृत स्थूलभूतों से स्थूल प्रपंच उत्पन्न होता है। शांकर-दर्शन के अनुसार प्रपंच के विकास का यही क्रम है।

माया और देश–काल

श्रुति में स्थल–स्थल पर ब्रह्म को नित्य, विभु, सर्वगत एवं अत्यन्त सूक्ष्म सिद्ध किया गया है।[2] इसलिये ब्रह्म सर्वव्यापी, नित्य एवं सर्वात्मा होने के कारण देश, काल एवं वस्तु के बन्धन से रहित है। देश–कालादि का बन्धन व्यावहारिक होने के कारण मायिक है। परन्तु ब्रह्म इस देश–काल के बन्धन से मुक्त है। जिस प्रकार आकाश में गन्धर्व नगर के कारण प्रतीत होने वाला देशादिकृत अन्त पारमार्थिक नहीं होता उसी प्रकार ब्रह्म में माया के द्वारा किया हुआ देश एवं काल कृत अन्त नहीं होता।[3] अतः ब्रह्म देश एवं काल से अपरिच्छिन्न है।

१. ब्र० सू० शा० भा० २–३–१२
२. देखिये–मु० उ० १–१–६, कठ० उ० २–२–१३, वृ० उ० २–४–६, मा० उ० २।
३. पंचदशी ३–३६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकराचार्य का कथन है कि ब्रह्म से अव्यतिरिक्त देशकाल में ही आकाश होता है।[1] इस प्रकार देश-कालादि की सत्ता ब्रह्म से भिन्न नहीं है। विवर्तवाद के अनुसार देश-कालमय आकाशादि की सत्ता उसी प्रकार ब्रह्म से अतिरिक्त नहीं है जिस प्रकार कि जलगत् बुद्-बुद् तरंगादि की सत्ता जल से पृथक नहीं होती।

मायिक देश-काल की व्यावहारिकता

जिस नाम रूपात्मक प्रपंच की चर्चा की गई है वह अध्यस्त होने पर भी अपनी स्वरूप सत्ता के लिये देश एवं काल की अपेक्षा रखता है। किसी देश अथवा काल की कल्पना किये बिना नाम रूपात्मक जगत् की कल्पना करना भी असंगत होगा। इसलिये नाम रूपात्मक प्रपंच की सिद्धि देश एवं काल के द्वारा ही सम्भव है। मानव ने अपनी व्यवहार सुविधा के लिये ही देश एवं काल की व्यवस्था की है। किसी देश विशेष में ही किसी वस्तु की सत्ता स्वीकार की जा सकती है। इसीलिये भिन्न-भिन्न प्रपंच रूप व्यावहारिक जगत् के पदार्थों के लिये भिन्न-भिन्न देशों की कल्पना की जाती है। यदि हम कोई चित्र देखते हैं तो चित्र के लिये आधार रूप में किसी देश विशेष का होना अनिवार्य ही है क्योंकि मृग-मरीचिका भी बिना आधार के नहीं टिक सकती। देश की ही तरह काल की भी अपेक्षा है। किसी वस्तु का ज्ञान देश एवं काल के ही अन्तर्गत सम्भव हो सकता है। कणाद ने काल को अतीतादि व्यवहार का हेतु कहा है।[2] भूत, भविष्यत् और वर्तमान ये काल के व्यवहारार्थ किये गये भेद हैं। यदि देखा जाय तो ज्ञात होगा कि जो कल होने वाली घटना हमारे लिये आज भविष्यत् है वही कल के बाद भूत हो जायेगी। इसी प्रकार जो एक का भूतकाल है वही दूसरे का वर्तमान एवं तीसरे का भविष्यत्काल है।[3] इस प्रकार भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान के रूप में काल का विभाजन व्यवहारिक उपयोगिता की दृष्टि से ही किया जान पड़ता है। घड़ी जैसे यन्त्रों के आविष्कार के रूप में व्यावहारिक दृष्टि से 'काल' अध्येताओं ने काल के सम्बन्ध में अनेक कल्पनायें कर डाली हैं। अंकगणित तथा तन्मूलक गणितांग 'काल' के, व्यावहारिक दृष्टि से किये गये अध्ययन के प्रयास ही हैं।

इस प्रकार देश और काल दोनों ही नाम रूपात्मक प्रपंच की तरह व्यावहारिक हैं। मायाजन्य प्रपंच का विद्या के द्वारा विनाश हो जाने पर व्यावहारिक

---

१. ब्रह्मणाच्चाव्यतिरिक्तदेशकालमेवाकाशं भवति। ब्र० सू० शा० भा० २-३-५.
२ अतीतादि व्यवहारहेतु कालः, तर्कसंग्रहः।
३. डा० सम्पूर्णानन्द, चिद्विलास, पृ० ६५, ज्ञानमण्डल, काशी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देश एवं काल भी समाप्त हो जाते हैं। किसी देश में वर्तमान प्रपंचरूप वस्तु के नष्ट हो जाने पर उस वस्तु से सम्बन्धित देशादि का व्यवहार भी नहीं रहता। इसलिये देश में केवल दर्शनमात्र की ही सत्यता है।[1] इसी प्रकार काल की सत्ता भी प्रपंच तक ही सीमित है। परमात्मा नित्य, अखण्ड एवं अव्यवहार्य होने के कारण मायाकृत समस्त देश एवं कालकृत बन्धन से मुक्त है। अतः देश एवं कालकृत भेद मायिक है।

1. F. H. Bradley, Appearance and Reality, P. 32 —Oxford Clarendon.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शङ्कराचार्य

[उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन]

षष्ठ-अध्याय

शंकराचार्य के मायावाद का परवर्ती दर्शन पर प्रभाव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

६

०००

मायावाद की प्रतिक्रिया से उदय होने वाली दर्शन-पद्धतियां और उनमें माया का स्वरूप

विश्व-दर्शन का मूलाधार वैदिक साहित्य है। वैदिक साहित्य में भी उपनिषद् साहित्य दर्शन जगत् का प्राण है। वेदान्त-दर्शन के विभिन्न रूप उपनिषद्वर्ती विभिन्न सिद्धान्तों से निज-निज मतानुसार किये गये पर्यालोचनों के फल हैं। यद्यपि वेदान्त-दर्शन से शंकराचार्य और रामानुजाचार्य आदि भाष्यकारों के भाष्य का उपनिषद् साहित्य के साक्षात् सम्बन्ध नहीं है क्योंकि वे महर्षि बादरायण के ब्रह्मसूत्र के व्याख्या रूप हैं परन्तु महर्षि के वेदान्त-सूत्रों का प्रतिपाद्य उपनिषद् सिद्धान्त की स्थापना होने के कारण उपनिषद्वर्ती सिद्धान्त के पृष्ठ पर ही ब्रह्मसूत्र के भाष्यकारों का भाष्य-रचना का प्रयास सफल कहा जायेगा। शंकराचार्य का भाष्य इस निकष पर पूर्णतया सफल सिद्ध होता है। शंकराचार्य के परवर्ती दार्शनिकों ने भी जिनमें रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य और बल्लभाचार्य प्रमुख हैं, महर्षि बादरायण के 'ब्रह्मसूत्र' पर भाष्य रचना की है। इन सब भाष्यकारों के साफल्य का अंकन भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों की स्थापना के उपरान्त किया जायेगा। किन्तु यह निःसन्देह स्वीकार करना होगा कि रामानुजाचार्य का विशिष्ट-द्वैतवाद, माधवाचार्य का द्वैतवाद, निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद और बल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद शंकराचार्य के—अद्वैतपोषक मायावाद के सिद्धान्त की प्रतिक्रिया के परिणाम हैं। दर्शन ही नहीं वरन् साहित्य, राजनीति और धर्म आदि क्षेत्रों में यह सैद्धान्तिक प्रतिक्रिया अनिवार्य रूप से पाई जाती है। दर्शन के क्षेत्र में स्वयं शंकराचार्य के दर्शन मूल में बौद्ध-दर्शन की प्रतिक्रिया देखने में आती है। बौद्ध-दर्शन भी वैदिक धर्म और दर्शन की प्रतिक्रिया का ही स्वरूप था। शंकराचार्य ने बौद्ध-दर्शन की प्रतिक्रिया के स्वरूप वैदिक मत—अद्वैत की स्थापना के लिये ही मायावाद के सिद्धान्त की स्थापना की थी जिसकी प्रतिक्रिया से रामानुज प्रभृति आचार्यों की दर्शन-पद्धतियों की उत्पत्ति हुई थी। यह बात दूसरी है कि इन आचार्यों को अपने मतवादों की स्थापना करते समय भागवत 'धर्म' प्रभृति कुछ अन्य पृष्ठभूमियां भी मिली थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्यपि शंकराचार्य के परवर्ती आचार्यों के दार्शनिक सिद्धान्तों का विकास पूर्ववर्ती मायावाद की प्रतिक्रिया से जन्य है परन्तु इन परवर्ती दर्शन-पद्धतियों में भी माया को यथाकथंचित् स्वीकार किया गया है। यहां शंकराचार्य के मायावाद की प्रतिक्रिया से जन्य विभिन्न दर्शन-पद्धतियों और उनमें प्राप्त माया के स्वरूप के अध्ययन का दृष्टिकोण है। शंकराचार्य के मायावाद की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होने वाली दर्शन-पद्धतियों में आचार्य रामानुज, निम्बार्क, माध्व और वल्लभ की दर्शन-पद्धितियां प्रमुख हैं। यहां इन सब का पृथक्-पृथक् विवेचन किया जायेगा।

रामानुजदर्शन—(विशिष्टाद्वैतवाद)

शंकराचार्य के परवर्ती आचार्यों में रामानुजाचार्य अग्रगण्य हैं। इनका दार्शनिक सिद्धान्त विशिष्टाद्वैतवाद के नाम से प्रचलित है। रामानुजाचार्य का ब्रह्म शंकराचार्य की तरह निर्गुण न होकर चिदचिद् विशेषणों से विशिष्ट है। इसीलिये इस सिद्धान्त का नाम विशिष्टाद्वैतवाद पड़ा है। किसी-किसी के मत में कार्य और कारण विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म के आधार पर विशिष्टाद्वैतवाद सिद्धान्त का प्रचलन हुआ है।[1]

शंकराचार्य-मायावाद सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म शुद्ध निर्विशिष्ट एवं कैवलाद्वैत है। माया ब्रह्म की अनादि शक्ति है। माया शक्ति से विशिष्ट ब्रह्म की ईश्वर संज्ञा है। मायावी ईश्वर ही इस मायिक जगत् का स्रष्टा एवं नियन्ता है। जगत् माया का परिणाम एवं ब्रह्म का विवर्त है। परमार्थ में जीव ब्रह्म ही है परन्तु अविद्या के कारण जीव में कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व का अभिज्ञान उत्पन्न होता है। अविद्या निवृत्ति के पश्चात् जीव ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है। संक्षेप में शांकर-मायावाद की यही आधार-भूमि है। रामानुजाचार्य शंकराचार्य के उपर्युक्त सिद्धान्त को नहीं स्वीकार करते। इसीलिये उनकी ब्रह्म, जीव, जगत् एवं मुक्ति के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न धारणायें हैं।

ब्रह्म—रामानुजाचार्य, शंकराचार्य की तरह ब्रह्म और ईश्वर इन दो भेदों की पृथक् कल्पना नहीं करते। जैसा कि विशिष्टाद्वैत की ओर संकेत करते हुए कहा गया है, रामानुज का ब्रह्म शंकराचार्य का कैवलाद्वैत न होकर चित् एवं अचित् से विशिष्ट है। विशिष्टाद्वैतवादी का यह सगुण ब्रह्म समस्त द्वैत प्रपंच का कारण है।[2] ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान एवं आनन्दघन है। शांकर-दर्शन के

1 Three Great Acharyas, Foot Note, Page 137.
2. Dr. Thibout, Introduction, S. B. E. Vol. XXXIV P. XXX.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुसार ब्रह्म ज्ञानस्वरूप ही है परन्तु रामानुज के मतानुसार ज्ञान ब्रह्म का प्रमुख विशेषण है। सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापी होते हुए भी ब्रह्म का पापों से स्वाभाविक विरोध है। इसीलिये श्रुति में ब्रह्म को उभय लक्षण कहा गया है। कहीं वह विशिष्ट और कहीं निर्विशिष्ट है। ब्रह्म निखिल दोषों से निर्विशिष्ट एवं कल्याण गुणाकर से विशिष्ट है। रामानुज का ब्रह्म अपहतपाप्मा, विजर, विमृत्यु, विशोक, अविजिघत्स, तृष्णारहित, सत्यकाम एवं सत्यसंकल्प है।[1] आचार्य रामानुज के मतानुसार चित्-जीव और अचित् जगत् ब्रह्म के शरीर हैं। शरीर तथा आत्मा के सम्बन्ध के अनुरूप ही ब्रह्म और चिदचित् में भी शरीर-शरीरी भाव ही समझना चाहिये। ब्रह्म शरीरी तथा चिदचित् स्वरूप जीव एवं जगत् ब्रह्म के शरीर हैं। जिस प्रकार आत्मा शरीर में आश्रित होकर शरीर पर नियमन करता है और उसे कार्य मे प्रवृत्त करता है उसी प्रकार ब्रह्म भी चिदचित् के आश्रित रहता है और उसे कार्य में प्रवृत्त करता है।[2] ब्रह्म अपने जीव शरीर के साथ प्रकृति में प्रवेश करता है एवं नाम रूप-प्रपंच का निर्माण करता है।[3] इस प्रकार यही स्रष्टा है। प्रलयकाल में जीव-जगत् के सूक्ष्म रूप हो जाने पर सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म 'कारणावस्थ' कहलाता है और सृष्टिकाल में स्थूल रूप धारण करने के कारण स्थूल चिदचिद्-विशिष्ट ब्रह्म 'कार्यावस्थ' कहलाता है।[4] ब्रह्म निर्विशिष्ट किसी अवस्था मे नहीं रहता। परन्तु हेय गुणों से शून्य होने के कारण ब्रह्म को निर्गुण कहा जाता है। आचार्य रामानुज की सगुण निर्गुण कल्पना शंकराचार्य की अद्वैत कल्पना से भिन्न है। आचार्य रामानुज ने जिस सगुण ब्रह्म की प्रस्थापना की है वह शंकराचार्य का मायावी ईश्वर है।

ईश्वर—विशिष्टाद्वैतवादी के मतानुसार ईश्वर अन्तर्यामी होने के कारण समस्त सृष्टि का नियन्ता एवं शासक है। जिस प्रकार भौतिक शरीर का आत्मा जीव है, उसी प्रकार जीव का आत्मा ईश्वर है। ईश्वर भोक्ता जीव और भोग्य जगत् दोनों में अन्तर्यामी रूप से अवस्थित है।[5] जैसे कि जेलर महोदय बन्दीगृह

---

१. अपहत पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकी विजिघत्सो पिपासस्सत्यकामस्सत्य संकल्पः।
श्री भाष्य ३-२-११।

२. श्री भाष्य २-१-६।

३. P. N. Srinivasachari, Tne Philosophy of Vishishtadvait, Page 221, Adyar 1946.

४. यतिपतिमत दीपिका (अवतार ६, पृ० ३६)

५. परस्येश्वरस्य भोक्तृभोग्योरुभयोरन्तर्याभिस्वरूपेणावस्थानम्। सर्वदर्शन संग्रह ४-३१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का निरीक्षण करते समय बन्दीगृह के अन्दर होते हुए भी बन्धन का अनुभव नहीं करते एवं शासक बने रहते हैं, उसी प्रकार अन्तर्यामी ईश्वर भी सभी जीवों के साथ अन्तर्यामी रूप से रहता हुआ नियामक एवं शासक है। परन्तु ईश्वर अपहत पाप्मा होने के कारण जीव की अनादि कर्मरूप अविद्या से लिप्त नहीं होता। अपरिच्छिन्न एवं निर्मल ज्ञानस्वरूप होते हुए भी चित् जीवात्मा के, अविद्या से वेष्टित होने पर तत् तत् कर्मानुसार ज्ञान का संकोच-विकास एवं भोग्यभूत अचित् संसर्गजनित सुखदुःखोपभोग, भगवत् प्रपत्ति और भगवत् प्राप्ति आदि स्वभाव हैं।[1] नियन्ता ईश्वर जीवों के कर्मफल का दाता एवं लोक-रक्षक है। वह निज-निज कर्मानुसार प्राणियों को दण्ड देता है। यद्यपि वह कृपालु है परन्तु उसे पापी को दण्ड देने में संकोच नहीं होता। यही ईश्वर का समुचित शासकत्व है। लोकनियन्ता एवं शासक होने के साथ-साथ ईश्वर लोक का रक्षक है। अवतारवाद का सिद्धान्त भी लोक-रक्षक ईश्वर की कृपा पूर्ण दृष्टि का एक ज्वलन्त, उदाहरण है। ईश्वर जगत् की रक्षा के लिये ही पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी तथा अर्चा रूपों को ग्रहण करता है।[2] प्रथम पर, ज्ञानशक्त्यादि अनन्त कल्याण गुणों से विशिष्ट नारायण का स्वरूप है। इसी को परब्रह्म एवं बासुदेवादि शब्दों के द्वारा वर्णित किया गया है। अपने व्यूह रूप के द्वारा ईश्वर जगत् की सृष्ट्यादि के लिये वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध इन चार रूपों को धारण करके स्थिर रहता है। वासुदेव षड्गुणयुक्त, संकर्षण ज्ञान और बलयुक्त, प्रद्युम्न ऐश्वर्य और वीर्य युक्त एवं अनिरुद्ध शक्ति और तेज गुणों से युक्त है। विभवरूप ईश्वर का अवतार रूप है। लोक-रक्षक ईश्वर धर्म की हानि एवं अधर्म की वृद्धि होने पर सदा अवतार लेता है।[3] भगवान् के मत्स्यादि अवतार लोक-रक्षा के लिये ग्रहण किये गये अवतार हैं। अपने अन्तर्यामी रूप के द्वारा ईश्वर स्वर्ग-नरकादि की अनुभव दशा में भी सुहृत् रूप से जीवात्मा के हृदय में स्थित रहता है। परन्तु वह जीव के दोषों से अस्पृष्ट ही रहता है। अर्चारूप के द्वारा ईश्वर सदा के लिये अवतार धारण करता है। लोकरक्षक परम कारुणिक ईश्वर लोक के कल्याण हेतु गृह, ग्राम, नगर एवं पर्वतादि प्रदेशों में मूर्ति विशेष ग्रहण करके स्थित रहता है। ईश्वर का यह स्वरूप देश, काल की बाधा से

१. सर्वदर्शन संग्रह, पृ० १०७–१०८।

२. एवं प्रकार ईश्वरः पर व्यूह विभवान्तर्याम्यर्चावतार रूपेण पंच प्रकारः।
यतिपतिमत दीपिका, नवम अवतार, पृ० ४०।

३ गीता ४–७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहित है। वह अप्राकृत शरीर विशिष्ट ईश्वर स्नान, भोजन, आसन और शयनादि के सम्बन्ध में अर्चक के अधीन होने के कारण सर्वसहिष्णु एवं परिपूर्ण है।

मीमांसा की दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो ईश्वर 'शेषी' है और जीव शेष है। 'शेष' जीव ईश्वर का उपकारक है। जीव की प्रत्येक क्रिया अन्तर्यामी ईश्वर के निर्देशानुसार ही होती है। इस प्रकार इन दोनों में सेवक और स्वामी का सम्बन्ध है।[1] जिस समय जीव अपने और ईश्वर के मध्य स्थित सम्बन्ध को जान लेता है उस समय वह कर्मों में भगवदर्पण बुद्धि से प्रवृत्त होता है। उस समय जीव अपनी अहंता को भगवदर्पित कर देता है।

विशिष्टाद्वैतवादी के मतानुसार ईश्वर के सम्बन्ध में की गई—शरीरशरीरीभाव, नियाम्यनियामकभाव, आधाराधेयभाव और शेष—शेषीभाव की विचारणायें मायावाद की प्रतिक्रिया के स्वरूप ही उत्पन्न हुई हैं। अद्वैत मत के अनुसार जीव की सत्ता अविद्योपाधिजन्य होने के कारण, ब्रह्म और जीव के विषय में उक्त सम्बन्ध निश्चित नहीं होते।

जीव—शांकर-दर्शन में जीव ब्रह्म ही है। अविद्या-उपाधि के द्वारा ब्रह्म का ही जीव रूप से बोध होता है। परन्तु विशिष्टाद्वैतवादी के मत में शंकराचार्य प्रतिपादित माया के स्वीकार न करने के कारण जीव की भिन्न रूप से कल्पना की गई है। रामानुजाचार्य के मतानुसार जीव ब्रह्म का अंश है और ब्रह्म अंशी है। शंकराचार्य ने भी अंशांशिभाव के दृष्टान्त के द्वारा जीव और ब्रह्म के स्वरूप के विषय में विवेचन किया है। परन्तु आचार्य ने जीव को निरवयव ब्रह्म का मुख्य अंश न होने के कारण, पूर्णतया अंश न कहकर अंश के समान (अंशत्व) कहा है।[2] श्री भाष्यकार रामानुज के मत में जीव और ब्रह्म में अंशांशिभाव होने पर भी विशेषण विशेष्य भाव के कारण स्वभाव वैलक्षण्य पाया जाता है।[3]

जहां अद्वैती शंकर जीव की मायिक सत्ता मानकर जीव को ब्रह्म ही कहते हैं वहां आचार्य रामानुज ब्रह्म को प्रकारी एवं चिदचित् रूप जगत् को प्रकारी (ब्रह्म) का प्रकार सिद्ध करने के पक्षपाती हैं। विशिष्टाद्वैत सिद्धि के अभिप्राय से ही आचार्य रामानुज ने चिदचिद् वस्तुरूप जीव एवं जगत् को ब्रह्म का शरीर कहा है। प्रकार रूप चिदचिदात्मक शरीर प्रकारी ब्रह्म से भिन्न नहीं है, यही विशिष्टा-

1. P.N. Srinivasachari, The Philosophy of Vishishtaduait, Page 186

२. ब्र० सू० शा० भा० २–३–४३, ३. श्रीभाष्य २–३–४५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वैतवादी का प्रमुख सिद्धान्त है।[१] प्रकार-प्रकारीभाव के आधार पर प्रकारी उपादान एवं प्रकार उपादान कारण का कार्य कहा गया है। विशिष्टाद्वैतवादी की इस प्रकार—प्रकारप्रकारीभाव की कल्पना का मूल कारण विशिष्टाद्वैतवादी का सत्कार्यवाद अथवा परिणामवाद का सिद्धान्त है। रामानुज के सत्कार्यवाद अथवा परिणामवाद के सिद्धान्त के अनुसार जीव एवं जगत् की सत्तायें ब्रह्म के परिणाम हैं। कार्य-रूप जीव एवं जगत् की सत्ता कारण-रूप ब्रह्म में वर्तमान रहती है।[२] इसलिये कारण और कार्य का भेद केवल प्रकारी और प्रकार का भेद समझना चाहिये। इसके विपरीत आचार्य शंकर सत् कार्यवाद अथवा परिणामवाद के समर्थक न होकर विवर्तवाद के समर्थक हैं। शंकराचार्य के केवला-द्वैतवाद के अनुसार समस्त प्रपंच उसी प्रकार मिथ्या हैं जिस प्रकार जलवर्ती बुद्बुद तरंगादि विकार मिथ्या होते हैं। शंकराचार्य के मतानुसार अखिल प्रपंच ब्रह्म का विवर्त एवं माया का परिणाम है।

रामानुज दर्शन में जीव को 'ज्ञ' न कहकर 'ज्ञाता' कहा गया है। शंकराचार्य ने वैशेषिक के आगन्तुक चैतन्य[3] एवं स्वतः अचेतन जीव का खण्डन करके जीव को 'ज्ञ' एवं नित्य चेतनस्वरूप कहा है। इस प्रकार आचार्य रामानुज ने वैशेषिक ही नहीं अपितु सांख्य एवं शांकर-वेदान्त में स्वीकृत जीव के शुद्ध चैतन्यभाव का खण्डन करके जीव को 'ज्ञाता' सिद्ध किया है।[४]

आचार्य रामानुज का 'जीव' ज्ञाता होने के साथ साथ सर्वगत न होकर अणु है। जीव की अणुत्व सिद्धि की प्रमाण—उत्क्रान्ति, गति एवं आगति हैं। उत्क्रान्ति के द्वारा जीवात्मा चक्षु, मूर्धा एवं शरीर के अन्यान्य देशों से निष्क्रमण करता हुआ देखा जाता है। गति के द्वारा ही जीव इस लोक से चन्द्रलोक में प्रवेश करता है। आगति के अनुसार जीव चन्द्रलोक से पुनः इस कर्मभूमि—मर्त्यलोक में आता है।[५] जीव की अणुत्व सिद्धि की यह समस्त प्रक्रिया शंकराचार्य के इस तथ्य की प्रतिक्रिया है कि जीव सर्वगत् एवं विभु है।[६] शांकर-दर्शन के अनुसार जीव का स्वरूप ब्रह्मेतर न होकर ब्रह्म ही है। आचार्य रामानुज का कथन है कि जिस प्रकार एक देशवर्ती मणि आदि का प्रकाश अनेक देश-व्यापी देखा जाता

१. सर्वदर्शन संग्रह ४-३०, 2. Ghate, The Vedant, Page 28.
३. वैशेषिक मत में आत्मा और मन के संयोग से आगन्तुक चैतन्य होता है।
—देखिये ब्र० सू० शा० भा० २-३-१८।
4. Dr. Thibout, S. B. E., Introduction, Vol. XXXIV P. liv.
५. श्रीभाष्य २-३-२० ६. ब्र० सू० शा० भा० २-३-२९,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है उसी प्रकार अणु जीवात्मा भी अपने ज्ञान के द्वारा सकल देश में व्याप्त रहता है।[1] जीव में ही कर्तृत्व एवं सुख–दुःखादि का अभिमान वर्तमान रहता है।

जगत्—शंकराचार्य ने जगत् को मिथ्या (अनिर्वचनीय) कहा है। आचार्य के मत में समस्त नामरूपात्मक प्रपंच मिथ्या है। इसके विपरीत आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार जगत् ब्रह्म का शरीर है। इसीलिये इस मत में जगत् मिथ्या न होकर सत्य ही है। रामानुज के मत में ब्रह्म और जगत् का ऐसा ही सम्बन्ध है जैसा कि पुष्प और गन्ध का, स्वर्ण और तद्गत पीतिमा का। ब्रह्म-रूप विशेष्य को जगत् रूप विशेषण से पृथक् नहीं किया जा सकता। अतः ब्रह्म में ही सारा जगत् अन्तर्भूत है। प्रलयकाल में कारणावस्था में वर्तमान ब्रह्म में प्रकृति अव्यक्त रूप से वर्तमान रहती है। कारणावस्था सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म अपनी इच्छा से विचित्र शक्ति के योग से नामरूपात्मक जगत् एवं अनन्त जीवों की सृष्टि करता है। जीव अपने गत जीवन के पाप-पुण्य के आधार पर ही शरीर धारण करते हैं। नामरूपात्मक सृष्टि के विकास का यह रूप ब्रह्म का कार्यरूप है। इस प्रकार प्रलय एवं सृष्टि ब्रह्म की ही कारण और कार्य-रूप दो अवस्थायें हैं। ब्रह्म ही कार्यावस्थ और कारणावस्थ रूप से स्थित है।[2] यहां यह विचारणीय है कि स्रष्टा ईश्वर का सर्जना कार्य जीवों के गत कर्मों पर आधारित होने के कारण ईश्वर की पूर्ण-स्वतन्त्रता का बाधक है।[3]

मुक्तिः—शांकर-वेदान्त के अनुसार अविद्या निवृत्ति हो जाने पर जीव ब्रह्म के साथ एकीभाव को प्राप्त हो जाता है। मुक्त होने पर जीव नाम की कोई पृथक सत्ता अवशिष्ट नहीं रहती। परन्तु रामानुजदर्शन में जीव और ब्रह्म का ऐक्य सम्भव नहीं है। मुक्त जीव में ब्रह्म के समान ही सर्वज्ञत्व तथा सत्यसंकल्पत्व गुण तो आ जाते हैं परन्तु उसमें ब्रह्म के सर्वव्यापकत्व एवं कर्तृत्वगुण नहीं होते। जीव अणु है परन्तु ब्रह्म सर्वव्यापक है।[4] श्रीभाष्यकार रामानुज का कथन है कि मुक्त जीव अनेक शरीरों में प्रवेश कर सकता है, एवं ईश्वर के द्वारा सृष्ट —पितृ–लोक आदि लोकों में ईश्वर की लीला का आनन्द ले सकता है।[5] परन्तु मुक्त जीव का जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय रूप व्यापार में अधिकार नहीं होता।[6] मुक्त जीव की सारी कल्पनायें शान्त हो जाती हैं अतः वह पुनः संसार में लौट कर नहीं

1. श्रीभाष्य २–३–२६ 2. रामानुज भाष्यगीता १३–२,
3. श्रीभाष्य २–१–३४, २–१–३५
4. Radhakrishnan, Indian Philosophy, Vol. II, P. 710.
5. श्रीभाष्य ४–४–१३, १५, 6. श्रीभाष्य ४–४–१७, सर्वदर्शन संग्रह ४३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आता।[1] इसीलिये आचार्य रामानुज को जीवन-मुक्ति मान्य नहीं है।[2] वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार सकल वन्धन निवृत्तिरूपा मुक्ति जीवित दशा में नहीं प्राप्त हो सकती। इसलिये रामानुजदर्शन में केवल विदेह मुक्ति ही सम्भव है।

रामानुजदर्शन में माया का स्वरूप

यह कहा जा चुका है कि रामानुजदर्शन शांकर-मायावाद की प्रतिक्रिया से जन्य एक दार्शनिक विचारधारा है। आचार्य रामानुज ने शंकराचार्य की माया सम्बन्धी विचारधारा को न स्वीकार करके चिदचिद्विशिष्ट सगुण ब्रह्म की कल्पना की है और मायिक जगत् को शंकराचार्य की तरह मिथ्या न मानकर सत्य स्वीकार किया है। रामानुजदर्शन में मायावी ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म दो पृथक् तत्त्व न होकर सगुण ब्रह्म ही एक मुख्य तत्त्व है।

शंकराचार्य ने माया को 'मिथ्याभूता सनातनी' कहकर मिथ्या सिद्ध किया है। परन्तु रामानुजाचार्य के अनुसार माया परमात्मा की विचित्ररूपा शक्ति है। आचार्य रामानुज माया शब्द को आश्चर्यवाची मानते हैं।[3] जिस प्रकार स्वप्न में रथादि का पूर्णतया अभाव होने पर भी रथादि की आश्चर्यजनक सृष्टि देखने में आती है उसी प्रकार परमात्मा की यह सृष्टि भी आश्चर्यरूपा है। परमात्मा की यह सृष्टिकर्त्री शक्ति अचिन्त्य है।[4] इसके अतिरिक्त आचार्य रामानुज ने कहीं-कहीं माया का अर्थ 'कूटयुक्ति'[5] भी किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि शंकराचार्य अविद्या शक्ति एवं मिथ्यात्व प्रतिपादिका माया के आधार पर जिस मायावाद के सिद्धान्त की स्थापना की है उससे रामानुजाचार्य की माया सम्बन्धी अभिव्यक्तियां भिन्न हैं। शांकर-मायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में श्रीभाष्यकार रामानुजाचार्य ने मायावाद के सम्बन्ध में सात अनुपपत्तियों की कल्पना की है। यहां इन अनुपपत्तियों का उल्लेख एवं परिहार करना उपयुक्त होगा।

माया के सम्बन्ध में रामानुज की सात अनुपपत्तियां और उनका परिहार

(१) आश्रयानुपपत्ति और उसका परिहार:—मायावादी के अविद्या के सम्बन्ध में शंका करते हुए आचार्य रामानुज का कथन है कि जिस अविद्या के

१. श्रीभाष्य ४–४–२२।
2. Radhakrishnan, Indian Philosophy, Vol. II, Page 710.
३. मायाशब्दो ह्याश्चर्यवाची। श्रीभाष्य ३–२–३।
४. श्रीभाष्य ३–२–३, ५. रामानुजभाष्य गीता ७–१५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वारा भ्रम उत्पन्न होता है उसका आश्रय क्या है? यदि कहा जाय कि जीव अविद्या का आश्रय है तो यह उचित न होगा। क्योंकि जीव स्वयं अविद्या से परिकल्पित है। अतः जीव को अविद्या का आश्रय नहीं कहा जा सकता। साथ ही ब्रह्म भी अविद्या का आश्रय सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि ब्रह्म स्वयं प्रकाशवान् एवं ज्ञानरूप होने के कारण अज्ञानरूप अविद्या का विरोधी है। इसलिये अविद्या ब्रह्माश्रिता भी सिद्ध नहीं की जा सकती।[१]

परिहार:—डा० प्रभुदत्त शास्त्री ने उक्त दोष का परिहार करते हुए लिखा है कि रामानुज के उक्त आक्षेप की कारणा दो त्रुटियां हैं। पहली त्रुटि यह है कि आचार्य रामानुज अविद्या को सत् पदार्थ मानकर उसका आश्रय खोजते हैं। वास्तव में अविद्या सत् पदार्थ नहीं है। अविद्या विद्या का अभाव अथवा आवरणमात्र है। जस प्रकार लकड़ी में अग्नि छिपी रहती है उसी प्रकार ब्राह्मी सत्ता या चेतनता उपाधियों में छिपी रहती है।[2] यदि विचारकर देखा जाय तो प्रभुदत्त जी का समाधान उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि अविद्या ही यदि विद्या का अभाव मानी जायेगी जैसा कि प्रभुदत्त जी का कथन है, तो वह आवरण शक्ति का काम नहीं कर सकती। साथ ही अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार अज्ञान अथवा अविद्या अभावरूप न होकर भावरूप है।[3] प्रभुदत्त जी ने रामानुजाचार्य की दूसरी त्रुटि की ओर संकेत करते हुए कहा है कि रामानुजाचार्य के द्वारा स्वीकृत ब्रह्म और जीव का भेद व्यर्थ है। उपाधियां ही आत्मा को जीव एवं ब्रह्म रूप में विभक्त कर देती हैं। इसलिए रामानुज का अपेक्षित अविद्या का आश्रय, मन और इन्द्रियों की उपाधियां हैं।[४]

वास्तव में प्रभुदत्त जी का यह तर्क भी संगत नहीं है क्योंकि वेदान्त में भी अविद्योपाधि के कारण जीव और ब्रह्म का भेद स्वीकार किया गया है। यह बात दूसरी है कि परमार्थ में जीव ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है। परिहारार्थ मन और इन्द्रियों की उपाधियों को अविद्या का आश्रय कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि मन और इन्द्रियों की उपाधियां भी अविद्या ही हैं।

रामानुज की उक्त अनुपपत्ति के सम्बन्ध में इस लेखक का दृष्टिकोण तो

१. श्रीभाष्य १-१-१।
2. P. D. Shastri, The Doctrine of Maya, Page 122.
३. वेदान्तसार ६।
4. The Doctrine of Maya, Page 122.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह है कि जीव अविद्या पर आश्रित है एवं अविद्या जीव पर। दोनों के अनादि होने के कारण अन्योन्याश्रय दोष भी नहीं आ सकता। रामानुज के ब्रह्म और अज्ञान के विरोध के सम्बन्ध में हमारा यह समाधान है कि धर्मभूत ज्ञान एवं अज्ञान में ही विरोध है न कि स्वरूपभूत ज्ञान एव अज्ञान में। ब्रह्म को स्वरूप–ज्ञान होने के कारण उसका अज्ञान से विरोध नहीं हो सकता। इसलिये ब्रह्म और अविद्या को विरोधी कहना उचित नहीं है।

(२) तिरोधानानुपपत्ति और उसका परिहार –श्रीभाष्यकार का मत है कि अविद्या में ब्रह्म के तिरोधान की सामर्थ्य नहीं है। तिरोधान के दो अर्थ होते हैं—प्रकाश को उत्पत्ति को रोक देना और प्रकाश का नाश करना। परन्तु अद्वैत वेदान्त में प्रकाश के अनुत्पाद्य होने के कारण तिरोधाव का आशय प्रकाश के नाश से ही समझा जाता है।[1]

परिहार आचार्य रामानुज की उक्त शंका का कारण उनका शांकर-मायावाद का मनमाना अध्ययन है। यदि विचार करें तो ज्ञात होगा कि शांकर-वेदान्त के अनुरूप अविद्या ब्रह्म प्रकाश का नाश नहीं करती वरन् (अविद्या के वश) जीव को ब्रह्म के स्वरूप दर्शन से वंचित करती है। परन्तु रामानुज की उक्त शंका का होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि आंख के सामने एक छोटा सा मेघ का टुकड़ा आने पर मूढ़ बुद्धि पुरुष सूर्य को भी प्रकाशहीन एवं घनच्छन्न समझ लेता है।[2]

(३) स्वरूपानुपपत्ति और उसका परिहार—आचार्य रामानुज मायावादी पर आक्षेप करते हुए कहते हैं कि अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान निर्विषय, निराश्रय एवं स्वयं प्रकाशवान् है। परन्तु स्वाश्रयभूत अविद्या रूप दोष के कारण अनन्त ज्ञाताओं एवं ज्ञेयों की कल्पना की जाती है। आचार्य रामानुज का कथन है कि ज्ञाता और ज्ञेय की अनन्तता की द्योतक इस माया अथवा अविद्या की स्वरूप सिद्धि नहीं होती। आचार्य रामानुज का तर्क है कि अविद्या न सत् है और न असत्। अद्वैतियों के मत में एकमात्र ब्रह्म के ही सत्य होने के कारण अविद्या को सत्य नहीं स्वीकार किया जा सकता।[3] इसके अतिरिक्त अविद्या को असत् भी नहीं माना जा सकता। अविद्या को ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान के रूप में ही असत् माना जा सकता है। ज्ञान-रूप में तो इसलिये नहीं माना जा सकता कि अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान के स्वरूपों में भेद स्वीकार्य नहीं है। इसलिये असत्रूप ज्ञान के मानने पर

१. श्रीभाष्य १–१–१। २. हस्तामलक १२।
३. श्रीभाष्य १–१–१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शून्यवाद का प्रसंग उपस्थित हो जायेगा। क्योंकि अविद्या के असत् रूप मानने पर अविद्या का आश्रय भी असत् ही माना जायगा। यदि कहा जाय कि ज्ञाता, ज्ञेय और इनमें छिपा हुआ ज्ञान, ये तीनों असत् हैं तो जिस प्रकार इन तीनों पदार्थों की व्याख्या के लिये अविद्या रूप असत् पदार्थ की कल्पना करनी पड़ी उसी प्रकार अविद्या रूपी असत् पदार्थ के मानने के हेतु एक और असत् पदार्थ की कल्पना करनी पड़ेगी। इस प्रकार अनवस्था दोष उत्पन्न हो जायेगा।[1] यदि मायावादी कहे कि ब्रह्मस्वरूप सत् ज्ञान ही विद्या है तो यह भी अनुचित ही है। क्योंकि ऐसा मानने पर तो ब्रह्म ही प्रपंच का मूल होगा। फिर ब्रह्म से अतिरिक्त अविद्या अथवा माया को संसार का कारण मानने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। फिर ब्रह्म के नित्य होने से अविद्या रूप दोष भी नित्य ही माना जायगा। अविद्या के नित्य मानने पर मोक्ष का प्रसंग भी उपस्थित नहीं हो सकेगा। इसलिये अविद्या अथवा माया का कोई निश्चित स्वरूप उत्पन्न नहीं होता।

परिहार—आचार्य रामानुज द्वारा किये गये आक्षेपों के मूल में खण्डन की प्रवृति एवं निजमत प्रतिपादन की पक्षपातपूर्ण विचारधारा प्रबल प्रतीत होती है। आश्चर्य है कि रामानुज जैसे महान् आलोचक दार्शनिक का ध्यान शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित, प्रातिभासिक, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक सत्ताओं और माया के अनिर्वचनीय स्वरूप की ओर नहीं गया। यदि सतात्रय एवं अनिर्वचनीयवाद की ओर रामानुजाचार्य का ध्यान गया होता तो उन्हें अविद्या के स्वरूप ज्ञान में उपर्युक्त आपत्ति न हुई होती। अनिर्वचनीयता के द्वारा यह सिद्ध होता है कि माया न परमार्थ में सत्य है और न व्यवहार में शशशृंग अथवा वन्ध्यापुत्र के समान असत्। अतः माया की व्यावहारिकता स्वीकार्य है। इस प्रकार माया को अनिर्वचनीय मान लेने पर माया की स्वरूपोपपत्ति में कोई बाधा नहीं पड़ती।

(४) अनिर्वचनीयत्वानुपपत्ति और उसका परिहार—रामानुजाचार्य माया के अनिर्वचनीयत्व को असिद्ध करते हुए कहते हैं कि ज्ञान सत् हो सकता है अथवा असत्। यदि सदसद् विलक्षण (जो न सत् है न असत) वस्तु का भी ज्ञान होने लगेगा तब तो ज्ञान की कोई मर्यादा शेष न रह जायेगी।[2] इसलिये रामानुज का कथन है कि मायावादी का अनिर्वचनीयत्व उपपन्न नहीं होता।

परिहार—आचार्य के उक्त आक्षेप का कारण प्रातीतिक सत् को न मानना है। माया के सदसद् विलक्षणत्व से युक्त अनिर्वचनीयत्व का साधारणतया यह

१. श्री भाष्य १-१-१। २. वही।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थ नहीं है कि माया न सत् है और न असत् वरन् यह अर्थ है कि माया न पारमार्थिक रूप से सत् है और न शशशृंगवत् पूर्णतया असत्। इसलिये इस अर्थ के अनुसार माया की प्रातीतिक सत्ता स्वीकार्य है एवं आत्मा की पारमार्थिक सत्ता। ऐसा मानने पर न द्वैत हानि होती है और न माया के अनिर्वचनीय रूप की अनुपपत्ति ही होती है।

(५) प्रमाणानुपपत्ति और उसका परिहार—अनिर्वचनीयता का खण्डन करते हुए श्रीभाष्यकार का कथन है कि सत् एवं असद् विलक्षण वस्तु का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता। इसलिये प्रमाणाभाव के कारण माया का अनिर्वचनीयत्व अस्वीकार्य है।[1]

परिहार—आचार्य रामानुज के उक्त आक्षेप के सम्बन्ध में हमारा कहना है कि माया का व्यावहारिक सत् जो पारमार्थिक सत् एवं पूर्ण असत् से विलक्षण है, प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा सिद्ध होता है। सारा मायिक जगत् जो व्यवहार रूप से सत् है प्रत्यक्ष रूप से अनुभव का विषय है। अतः प्रमाणानुपपत्ति का आक्षेप असंगत है।

(६) निवर्तकानुपपत्ति और उसका परिहार—श्री भाष्यकार का आक्षेप है कि अद्वैतवादियों का यह सिद्धान्त अप्रमाणित है कि निर्विशेष ब्रह्म के ज्ञान से अविद्या की निवृत्ति होती है।[2] क्योंकि 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्' (श्वे० उ० ३–८) इत्यादि श्रुति वाक्यों में ब्रह्म के विशेषणों का वर्णन किया गया है।

परिहार—वेदान्त में परा एवं अपरा ये दो प्रकार की विद्यायें मानी गई हैं। अपरा विद्या का ब्रह्म सगुण है एवं परा विद्या का निर्गुण। इसलिये परब्रह्म निर्गुण ही है। अतः रामानुजाचार्य का आक्षेप निराधार है

(७) निवृत्त्यपुपपति और उसका परिहार—रामानुजाचार्य ब्रह्म और आत्मा के एकत्व के द्वारा अविद्या की निवृत्ति मानने के विरोधी हैं। आचार्य रामानुज की धारणा है कि बन्धन वास्तविक है इसलिये उसकी ज्ञान के द्वारा निवृत्ति सम्भव नहीं है।[3] आचार्य का विचार है कि पुण्य-पापरूप कर्मों के निमित्त से ही देव आदि का शरीर प्राप्त होता है। इसलिये बन्धन को मिथ्या नहीं कहा जा सकता।[4]

१. श्री भाष्य १–१–१। २. वही।
३. यत् पुनरिदमुक्तं......ज्ञाननिवर्त्यत्वा भावात्। श्रीभाष्य १–१–१।
४. श्रीभाष्य १–१–१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिहार—रामानुज के आक्षेप का कारण इनकी स्वेष्ट कल्पना प्रतीत होती है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार बन्धन वास्तविक न होकर अविद्या जन्य है। अविद्या निवृत्ति होने पर मिथ्या बन्धन से भी मुक्ति हो जाती है। ज्ञान होने पर अविद्या की निवृत्ति स्वतः हो जाती है। दूसरे, अद्वैत वेदान्त में कर्म की सत्ता पारमार्थिक न होकर व्यावहारिक मात्र है। जब तक अविद्या की निवृत्ति नहीं होती तब तक जीव और ब्रह्म की पृथगनुभूति होती है परन्तु अविद्या निवृत्ति होने पर जीव और ब्रह्म का एकत्व सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार यह कथन पक्षपातपूर्ण नहीं कहा जा सकता कि रामानुजाचार्य द्वारा मायावाद पर किये गये आक्षेप निराधार हैं। मायावाद का सिद्धान्त पूर्णतया निर्दोष है।

निम्बार्क—दर्शन

आचार्य निम्बार्क का दार्शनिक सिद्धान्त द्वैताद्वैतवाद एवं भेदाभेदवाद के सिद्धान्त के नाम से प्रचलित है। यह सिद्धान्त भास्कर (८ वीं शताब्दी) एवं यादव (११ वीं शताब्दी) के भेदाभेदवाद सिद्धान्त का विकासमात्र है। यादव के लगभग १०० वर्ष बाद आचार्य निम्बार्क का जन्म हुआ था और उन्होंने भेदाभेद सिद्धान्त के लुप्त गौरव को पुनः प्रतिष्ठित किया था।

जीव, जगत् और ईश्वर के सम्बन्ध में आचार्य निम्बार्क की धारणा शंकराचार्य और रामानुजाचार्य से भिन्न है। यहां निम्बार्काचार्य के सिद्धान्त के अनुसार इन तीनों का विवेचन किया जायगा।

जीव—आचार्य निम्बार्क विशिष्टाद्वैतवादी की ही तरह चित्, अचित् तथा ईश्वर ये तीन तत्त्व मानते हैं। ये तीनों क्रमशः कर्ता, भोक्ता, योग्य एवं नियन्ता हैं। चित् जीवस्वरूप है। यह ज्ञानस्वरूप, प्रज्ञानघन, स्वयं ज्योति एवं ज्ञानमय है। इन्द्रिय निरपेक्ष जीव इन्द्रियों की सहायता के बिना ही विषयज्ञान में समर्थ है। आचार्य निम्बार्क जीव और उसके ज्ञान में धर्मधर्मिभाव स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि जीव और उसके ज्ञान इन दोनों के ज्ञानत्व विषय में भेद न होने पर भी जीव धर्मी और ज्ञान उसका धर्म है।[1] जीव का स्वरूपभूत ज्ञान एवं गुणभूत ज्ञान स्वरूप से अभिन्न हैं परन्तु धर्मधर्मिभाव की दृष्टि से दोनों भिन्न हैं। इसीलिये इस सिद्धान्त का प्रचलन भेदाभेद एवं द्वैताद्वैत के नाम से हुआ है। यह तो निःसंकोच स्वीकार्य होगा कि द्वैताद्वैतवादी आचार्य निम्बार्क ने द्वैत एवं अद्वैत, उभय सिद्धान्तों

१. वेदान्त पारिजात सौरभ २–३–२७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की प्रतिपादक श्रुतियों के सामरस्यपूर्ण अध्ययन के लिये एक सरल प्रयास खोज निकाला है। इस स्थल पर रामानुज और निम्बार्क का सैद्धान्तिक अन्तर विचारणीय है। आचार्य रामानुज विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार अद्वैत पर ही बल देते हैं परन्तु निम्बार्क धर्मधर्मिभाव के द्वारा द्वैत एवं अद्वैत दोनों के समर्थक हैं। द्वैताद्वैतवादीके मत में जीव उसी प्रकार ज्ञानस्वरूप एवं ज्ञानाश्रय है जिस प्रकार सूर्य और उसका प्रकाश।

रामानुजाचार्य के ही समान निम्बार्काचार्य भी जीव और ईश्वर में अंशांशिभाव को मानते हैं। अणुपरिमाण वाला जीव अंशीरूप हरि का अंश है। यहां यह विशेषतया द्रष्टव्य है कि श्रीनिवासाचार्य के वेदान्त कौस्तुभ के अनुसार अंश शब्द का अर्थ शक्ति रूप है।[१] अनादि माया से युक्त होने के कारण जीव का धर्मभूत ज्ञान सकुचित हो जाता है। भगवान् के प्रसाद से ही हरि के सत्यरूप का ज्ञान हो सकता है।[२] परन्तु जीव की मुक्ति होने पर जीव पूर्णतया ईश्वर रूप को नहीं प्राप्त करता। जीव सदा ईश्वर के अधीन होने के कारण नियम्य है एवं ईश्वर नियन्ता है।

जीव की कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व रूप अहं बुद्धि मुक्तावस्था तक बनी रहती है। निम्बार्कमत में मुक्तावस्था में भी जीव के कर्तृत्व में बाधा नहीं पड़ती।[3] निम्बार्क मतानुयायियों के अनुसार जगत् का रूप भी रामानुज आदि से भिन्न है। इस स्थल पर निम्बार्क-दर्शन के अनुसार जगत् के स्वरूप का विवेचन किया जायगा।

जगत्—मूल रूप में जगत् अचित् जड़ पदार्थ है। निम्बार्काचार्य ने अचित् जड़ जगत् के तीन रूप माने हैं—प्राकृत, अप्राकृत और काल।[४] महत्तत्व से लेकर महाभूतपर्यन्त जगत् प्राकृत है। यह प्रकृति भी सांख्यवत् त्रिगुणात्मिका है परन्तु स्वतन्त्र न होकर ईश्वर के द्वारा नियंत्रित है। भगवान् के लोक एवं अलंकारादि अप्राकृत पदार्थ हैं। ये प्रकृति के गुणों के द्वारा निर्मित नहीं होते। निम्बार्क की यह अप्राकृत तत्त्व की कल्पना रामानुज के शुद्ध सत्त्व या नित्य विभूति से मिलती जुलती है। कालतत्त्व प्राकृत एवं अप्राकृत दोनों तत्त्वों से बिल्कुल भिन्न है। कालतत्त्व ही संसार के समस्त चक्रों का नियामक है। परन्तु ईश्वर उसका भी नियन्ता है। काल, स्वरूप से नित्य होते हुए भी कार्यरूप से अनित्य है।

१. वेदान्त कौस्तुभ २-३-४२। २. दशश्लोकी २।
3. Ghate, The Vedant, Page. 9.
४. अप्राकृतं प्राकृतरूपकं च कालस्वरूपं तदचेतनम् मतम्,
मायाप्रधानादि पदप्रवाच्यं शुक्लादिभेदाश्च समेपि तत्र। दशश्लोकी ३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ईश्वर—शंकराचार्य के विरुद्ध रामानुज की ही तरह निम्बार्काचार्य भी ब्रह्म को सगुण मानने के पक्षपाती हैं। ईश्वर अशेषज्ञान, बल आदि कल्याण गुणों का निधान है एवं अविद्या आदि समस्त दोषों से रहित है। आचार्य निम्बार्क ने कमल-नेत्र भगवान् कृष्ण को ईश्वर का रूप दिया है।[1] नारायण रूप ईश्वर समस्त जगत् में व्याप्त है।[2] परन्तु जीव और ईश्वर का भेदाभेद सम्बन्ध प्रत्येक दशा में वर्तमान रहता है। रामानुज दर्शन के अनुसार ही इस मत में भी ईश्वर मत्स्य, कूर्मादि रूपों में अवतार लेता है। भेदाभेदवादी के मत में सृष्टि विवर्त न होकर सूक्ष्म चित् एवं अचित् का स्थूल रूप परिणाम है। इस मत के अनुसार ईश्वर उपादान कारण भी है और निमित्त कारण भी। ईश्वर की चित् और अचित् शक्तियों की स्थूल रूप में अभिव्यक्ति उपादानकारणता की सूचक है। नियन्ता ईश्वर कर्मानुसार फलादि की योजना का व्यवस्थापक होने के कारण निमित्त कारण है। चित् और अचित् जो रामानुज दर्शन में ब्रह्म के शरीर हैं, निम्बार्क-दर्शन में ईश्वर की शक्तियां हैं। रामानुज के मत में जगत् ब्रह्म की विशेषणीभूता प्रकृति का परिणाम है परन्तु निम्बार्क के अनुसार जगत् ब्रह्म की शक्ति का परिणाम है। इस प्रकार रामानुज और निम्बार्क दोनों ही परिणामवाद के समर्थक हैं। इसके विपरीत शंकर विवर्तवादी हैं।

मुक्तिः—प्रपत्ति के द्वारा भगवान् जीवों पर अनुग्रह करते हैं। भगवदनुग्रह के द्वारा जीव मुक्ति को प्राप्त करता है। परन्तु मुक्त जीव ब्रह्म से अभिन्न होते हुए भी जीवस्वरूप की प्राप्ति करता है। संसारावस्था के समान मुक्तावस्था में भी 'मुमुक्षुर्ब्रह्मोपासीत' 'शान्तउपासीत' आदि श्रुतियां जीव के कर्तृत्व की द्योतक हैं। जीव के कर्तृत्व की निषेधक श्रुतियों का तात्पर्य जीव के स्वतन्त्र कर्तृत्व का निषेध मात्र है। मुक्त जीव के भी दो भेद हैं—नित्यमुक्त जीव और साधना द्वारा संसार-चक्र से मुक्त होकर परमानन्द की प्राप्ति करने वाला जीव। भगवद्-भावापन्न जीव समस्त सांसारिक क्लेशों से मुक्ति पा लेता है। परन्तु यह भगवद्-भावापत्ति शरीर सम्बन्ध रहने पर असम्भव है। अतएव निम्बार्क-दर्शन में जीवन्मुक्ति मान्य नहीं है।

निम्बार्क—दर्शन में माया का स्वरूप

निम्बार्काचार्य का माया सम्बन्धी दृष्टिकोण भी रामानुज के ही समान है।

---

1. दशश्लोकी ४। 2. वेदान्तरत्न मंजूषा, दशश्लोकी ६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निम्बार्काचार्य ने भी माया को आश्चर्यवाची ही माना है।[1] आचार्य निम्बार्क का कथन है कि सत्यसंकल्प, सर्वज्ञ परमेश्वर ही स्वप्नदृष्ट रथादि कार्यों का निर्माता है। ईश्वर की यह मायिक सृष्टि अत्यन्त आश्चर्यजनक है। इस सृष्टि का स्रष्टा बद्धजीव नहीं है। बद्धावस्था में जीवों के सत्यसंकल्पत्वादि गुण प्रकाशित नहीं होते। प्रधान—त्रिगुणात्मिका प्रकृति के अर्थ में ही निम्बार्क-दर्शन में माया का व्यवहार मिलता है।[2] एक अन्य स्थल पर आचार्य निम्बार्क का कथन है कि गुणमयी प्रकृतिरूपिणी अनादि माया से आवृत होने के कारण जीव का धर्मभूत ज्ञान संकुचित हो जाता है।[3]

निम्बार्क की उक्त माया सम्बन्धी विचारधारा के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शांकर-दर्शन में जिस मिथ्या माया के अर्थ में माया शब्द का प्रयोग हुआ है उसका निम्बार्क-दर्शन में अभाव है।

मध्व—दर्शन

शांकर मायावाद के विपरीत जिस प्रतिक्रियामयी सैद्धान्तिक विचारधारा का उदय रामानुज-दर्शन में हुआ था उसका पूर्ण पर्यवसान मध्वाचार्य के द्वैतवाद के सिद्धान्त में हुआ। मध्वाचार्य, आनन्दतीर्थ तथा पूर्णप्रज्ञ के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। शंकराचार्य ने द्वैत का निराकरण करके अद्वैतवाद का प्रस्थापन किया था। इसके विपरीत रामानुज ने अद्वैत को प्रधान मानकर द्वैत को अद्वैत का विशेषण सिद्ध करके विशिष्टाद्वैतवाद-सिद्धान्त को जन्म दिया था। आचार्य निम्बार्क ने द्वैत और अद्वैत इन दोनों तत्त्वों को समान महत्त्व देकर द्वैताद्वैतवाद—सिद्धान्त का समर्थन किया था। परन्तु इन सभी सिद्धान्तों के विपरीत आचार्य मध्व ने जगत् को ईश्वर से पृथक् सत्य मानकर द्वैतवाद—सिद्धान्त का प्रचार किया था। इनके मत में रज्जुगत सर्प—भ्रम मिथ्या न होकर सत् ही है।

मध्व—दर्शन में पांच प्रकार के भेद माने गये हैं:—

(१) ईश्वर और जीव का भेद:—ईश्वर और जीव दोनों भिन्न सत्तायें हैं। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और जीव अल्पज्ञ एवं अल्पशक्तिमान् है। अतएव इन दोनों में भेद है।

(२) ईश्वर और जड़-जगत् का भेद:—जिस प्रकार जीव ईश्वर से भिन्न है उसी प्रकार जड़ जगत् भी ईश्वर से भिन्न है। ईश्वर यदि चेतन है तो

१. वेदान्त पारिजात सौरभ ३-२-३।
२. 'मायाप्रधानादि पदप्रवाच्यम्' दशश्लोकी ३। ३. दशश्लोकी २।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगत् जड़ है। ईश्वर यदि स्रष्टा है तो जगत् सृष्टि है। एक नियामक है तो दूसरा नियम्य है।

(३) जीव और जगत् का भेदः—जीव चेतन पदार्थ है परन्तु जगत् जड़ पदार्थ है। इस प्रकार इन दोनों में भेद स्वीकार्य है।

(४) जीव और जीव का भेदः—जीव और उनके अनुभव अनन्त हैं। बद्धावस्था एवं मुक्तावस्थाओं में जीवों के विलक्षण अनुभव इसके प्रमाण हैं। इस प्रकार जीवों में भी परस्पर भेद पाया जाता है।

(५) जड़ और जड़ का भेदः—जिस प्रकार एक जीव अन्य जीवों से भिन्न है उसी प्रकार एक जड़ पदार्थ भी अन्य जड़ पदार्थों से भिन्न है।[1]

इसी भेदवाद के आधार पर आचार्य मध्व ने द्वैत सिद्धान्त की स्थापना की है।

मध्व-मत की पदार्थ सम्बन्धी कल्पना कुछ-कुछ न्यायवैशेषिक सी ही है। मध्व-मत में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश और अभाव ये दश पदार्थ माने गये हैं। इस मत में द्रव्य बीस प्रकार के माने गये हैं। ये बीस द्रव्य—परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत प्रकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्व, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, मात्रा, भूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल और प्रतिबिम्ब हैं। वैशेषिक द्वारा मान्य गुणों के अतिरिक्त मध्व-दर्शन में सम, दम, कृपा, तितिक्षा और सौन्दर्य आदि गुणों की कल्पना विशेष की गई है। कर्म के तीन भेद हैं—विहित, निषिद्ध तथा उदासीन। 'शक्ति' चार प्रकार की है—(१) अचिन्त्य शक्ति, (२) आधेयशक्ति, (३) सहजशक्ति और (४) पदशक्ति। विचित्र कार्य-सम्पादिका अचिन्त्य शक्ति परमात्मा में निवास करती है। इसी शक्ति के कारण परमात्मा में अलौकिक सामर्थ्य है। विधिवत् की गई प्रतिष्ठा के द्वारा प्रतिमा में जो देवता का सान्निध्य होता है, वही 'आधेय-शक्ति' है। कार्यमात्र के अनुकूल स्वभावरूपा शक्ति 'सहजशक्ति' है। यह सकल पदार्थ निष्ठ है। पदार्थ भेद के अनुरूप यह नित्य भी है तथा अनित्य भी। पद और पदार्थ में वाचक-वाच्य सम्बन्ध 'पदशक्ति' कहलाता है।

मध्व-मत में ईश्वर, जीव, जगत् एव मुक्ति के सम्बन्ध में भी भिन्न-भिन्न धारणायें मिलती हैं। यहां इन सब का पृथक्-पृथक् विवेचन किया जायगा।

ईश्वर—माध्वमत के अनुसार विष्णु परमात्मा का रूप है। वे उत्पत्ति, स्थिति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बन्ध और मोक्ष इन आठों के कर्ता हैं।

---

१. देखिये—डा० देवराज, दर्शनशास्त्र का इतिहास, पृ० ४६४, ४६५ तथा सकलाचार्य मत-संग्रह के अन्तर्गत मध्वाचार्य का मत, पृ० १७, बनारस १९०७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ईश्वर अनन्त गुणों का आगार है। परन्तु आचार्य मध्व का 'ईश्वर' निमित्त कारण-मात्र है। ईश्वर उपादान कारण नहीं है। ईश्वर एक होकर भी अनेक रूपों में व्यक्त होता है। लक्ष्मी, परमात्मा की सहचरी तथा शक्ति है। परमात्मा से अत्यन्त भिन्न होकर भी लक्ष्मी पूर्णरूप से परमात्मा के आश्रित है।

जीव—जीव परमात्मा से भिन्न एवं अनन्त हैं। जीव अज्ञान, मोह, दुःख आदि दोषों से युक्त तथा संसरणशील होते हैं। जीवों की तीन कोटियां हैं—(१) मुक्ति योग्य, (२) नित्य संसारी और, (३) तमोयोग्य। मुक्तियोग्य जीव देव, ऋषि पितृ, चक्रवर्ती तथा उत्तम मनुष्य रूप पांच प्रकार के होते हैं। नित्य संसारी जीव कर्मानुरूप सदा स्वर्ग नरकादि लोकों में विचरण करते रहते हैं। वे कभी मुक्त नहीं होते। तीसरी कोटि के अनुसार तमोयोग्यं जीवों में दैत्य, राक्षस, पिशाच तथा अधम मनुष्य, ये चार प्रकार के जीव आते हैं।

मुक्ति—मध्व-दर्शन की मुक्ति सम्बन्धी धारणा भी शंकराचार्य से नितान्त भिन्न है। मध्व-दर्शन के अनुसार मोक्ष, ब्रह्म के साथ तादात्म्य न होकर भगवान् विष्णु का साक्षात्कार है।[१] माध्वमत के अनुसार मुक्त पुरुष आनन्दानुभव अवश्य करता है परन्तु आनन्दानुभूति में भी परस्पर तारतम्य होता है। मुक्तावस्था में प्रत्येक जीव का आनन्दानुभव भिन्न होता है। मुक्ति के उपाय वैराग्य, शम, शरणागति, परमात्मभक्ति एवं उपर्युक्त जीवेश्वरादि का पंचविध भेदज्ञान है।

मध्व-दर्शन में माया का स्वरूप

मध्वाचार्य का, ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् की सत्य सत्ता स्वीकार करना शांकर-मायावाद की प्रतिक्रिया की चरम सीमा है। इसलिए मध्व की अद्वैतवादी विचार-धारा में शंकराचार्य प्रतिपादित माया की छाया भी देखना आकाशपुष्प की ही कल्पना होगी। परन्तु भाष्यकार होने के नाते आचार्य मध्व सूत्रकार द्वारा प्रयुक्त 'माया' शब्द से छुटकारा न पा सके। अपने पूर्ण प्रज्ञ दर्शन (ब्रह्मसूत्र भाष्य) में आचार्य मध्व ने 'माया मात्रन्तु कात्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात्' (३—२—३) सूत्र का भाष्य करते समय माया शब्द का अभिप्राय स्वप्न से ही लिया है।[२] आश्चर्य की बात तो यह है कि द्वैतवादी आचार्य मध्व ने परमात्मा की शक्ति की भी परमात्मा से भिन्न कल्पना की है।[३]

वल्लभ-दर्शन

वल्लभाचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैतवाद के नाम से विख्यात है।

1. Thate, The Vedanta, Page 34. २. पूर्णप्रज्ञ दर्शन ३—२—३।
३. परमात्मभिन्ना तन्मात्राधीना लक्ष्मीः। —मध्वसिद्धान्तसार पृ० २६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१३वीं शताब्दी में विष्णु स्वामी ने जिस शुद्धाद्वैत–सिद्धान्त की स्थापना की थी[१] उसी का सांग विकास आचार्य वल्लभ ने अपने दर्शन में किया। शंकराचार्य की तरह वल्लभाचार्य भी अद्वैतवादी ही हैं परन्तु उनका अद्वैत तत्त्वब्रह्म मायावादी तरह मायाशक्ति से युक्त न होने के कारण 'शुद्ध ब्रह्म' है। इसीलिये इस सिद्धान्त का नाम शुद्धाद्वैतवाद पड़ा है। आचार्य वल्लभ माया को अद्वैत सिद्धि में बाधक मानते हैं। उनका कथन है कि ब्रह्म बिना ही मायाशक्ति की सहायता के जगदुत्पत्ति करने में समर्थ है। आचार्य वल्लभ भगवान् को मायिक नहीं मानते।[२] इसी प्रकार वल्लभाचार्य और शंकराचार्य आदि अन्य दार्शनिकों की ब्रह्म, जीव, जगत्, एवं मुक्ति सम्बन्धी धारणाओं में भी मतभेद है।

ब्रह्म—शुद्धाद्वैतवाद सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुण सम्पन्न तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है। ब्रह्म की निर्गुणता को सूचक श्रुतियों के सम्बन्ध में अणुभाष्यकार का कथन है कि ऐसी श्रुतिया ब्रह्म के साधारण गुणों का निषेध करती हैं।[3] आचार्य वल्लभ के मत में ब्रह्म तीन प्रकार का माना गया है—(१) आधिदैविक परब्रह्म, (१) आध्यात्मिक अक्षर ब्रह्म और (३) आधिभौतिक जगत्रूप ब्रह्म। इस प्रकार वल्लभ-मत में जगत् भी ब्रह्म का ही रूप है। अहिकुण्डलवत् दोनों में भेद नहीं है। आविर्भावकाल में जो जगत् है वही तिरोभाव काल में ब्रह्म है।[४] वल्लभाचार्य के मतानुसार कृष्ण ईश्वर रूप हैं। लीला पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण लीला के लिये जगत् की सृष्टि करते हैं। भक्तवत्सल भगवान् भक्तों की इच्छानुरूप विभिन्न रूप धारण करके भक्तों के समक्ष आते हैं। अक्षर ब्रह्म विशुद्ध ज्ञानैक गम्य है परन्तु पुरुषोत्तम की प्राप्ति अनन्य भक्ति के द्वारा ही सम्भव है।[५]

जीव--ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। ब्रह्म के अविकृत सदश से जड़ का निर्गमन होता है एवं चित् अंश से जीव का। इस प्रकार जीव 'अंश' है एवं ब्रह्म 'अंशी'। अंशरूप जीव अंशीरूप ब्रह्म से अभिन्न है। भेद केवल परमेश्वर की लीलामात्र है। वल्लभ-दर्शन का जीव और ब्रह्म की अभिन्नता का यह दृष्टिकोण रामानुज और निम्बार्क की दार्शनिक विचारधारा के विपरीत है। वल्लभमत में जीव ज्ञाता, ज्ञानस्वरूप तथा अणुरूप है। शुद्ध, मुक्त तथा संसारी भेद से जीव की तीन कोटियां हैं।

---

१. देखिये—'सकलाचार्य मत संग्रह' में विष्णुस्वामी का मत।
२. न तु भगवानेवमायिकः अणुभाष्य १–१–२०, ३. अणुभाष्य ३–२–२२।
४. वही ३–२–२७, ५. वही ३–३–३३ एवं गीता ८–२२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगत्—वल्लभ-दर्शन के अनुसार शुद्ध ब्रह्म ही कारण एवं कार्य है। शुद्ध ब्रह्म को जगत् की सृष्टि के लिये किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा नहीं है।[1] ब्रह्म ही आविर्भाव काल में जगत् का रूप धारण कर लेता है। इसलिये जगत् ब्रह्म से भिन्न नहीं है। आचार्य वल्लभ जगत् के सम्बन्ध में अविकृत परिणामवाद सिद्धान्त को महत्त्व देते हैं। ईश्वर अपनी इच्छा से जगत् की सृष्टि और संहार करता है।

मोक्ष—मोक्ष प्राप्ति के दो साधन हैं एक भक्ति और दूसरा ज्ञान। भक्ति के द्वारा जिस परमानन्द की प्राप्ति होती है वह ज्ञान के द्वारा असम्भव है। भक्ति भी मर्यादा-भक्ति और पुष्टि-भक्ति रूप से दो प्रकार की है। मर्यादा भक्ति के अनुसार भक्त साधना एवं शास्त्रानुकुल आचरण के द्वारा मोक्ष प्राप्ति करता है। परन्तु पुष्टि-भक्ति के द्वारा भक्त भगवान् को सर्वात्मना आत्मसमर्पण कर देता है। भगवदनुग्रह के द्वारा जीव को मुक्ति लाभ होता है। भागवत में भगवदनुग्रह को ही पोषण या पुष्टि कहा गया है।[2] यही कारण है कि यह सिद्धान्त पुष्टि मार्ग के नाम से प्रचलित हुआ है। मुक्त हो जाने पर जीव का ब्रह्म के साथ अभेद सम्बन्ध हो जाता है।[3] मुक्त जीव में तिरोहित आनन्दांश का पुनः प्रादुर्भाव हो जाता है। इसलिये मुक्त जीव भगवान् के साथ अभेद सम्बन्ध को प्राप्त करके स्वयं सच्चिदानन्द बन जाता है।

वल्लभ-दर्शन में माया का स्वरूप—शुद्धाद्वैत-दर्शन के अनुसार मायिक जगत् शांकर-मायावाद के अनुरूप मिथ्या न होकर सत्य है। आचार्य वल्लभ माया के मिथ्यात्व प्रतिपादक दृष्टिकोण से पूर्णतया असहमत हैं। उनके मत में माया ब्रह्म की अपृथक् भूता शक्ति है। नाम रूपात्मक जगत् ब्रह्म का कार्य रूप है एवं प्रकृति अंश है। इसलिये इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म एवं उसकी शक्ति माया में परस्पर भेद मानकर सम्बन्ध नहीं मानना चाहिये। जैसा कि 'मम माया' आदि वाक्यों से प्रतीत होता है। इस प्रकार के वाक्य भगवान् और उसकी माया के अभिन्नत्व के ही सूचक हैं।

वल्लभ-दर्शन के उपर्युक्त माया सम्बन्धी विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि शुद्धाद्वैतवाद-सम्मत माया शंकराचार्य की, अविद्या अर्थ की प्रतिपादक माया से भिन्न है।

---

१. मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्॥ शुद्धाद्वैत मार्तण्ड २८।

२. भागवत २–१०

३. Radhakrishnan, Indian Philosophy, Vol: II. P. 758.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ अन्य दर्शनपद्धतियां

रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, माध्वाचार्य और वल्लभाचार्य वैष्णव-दर्शन-क्षेत्र के चार महारथी हैं। इन्होंने वैष्णव भक्ति और अद्वैत मत के सामंजस्य के द्वारा भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और सिद्धान्तों का प्रचलन किया था। इन दार्शनिकों के सिद्धान्तों के यत् किंचित अनुसरण एवं आलोचन के स्वरूप कतिपय अन्य दार्शनिकों ने भी पृथक् रूप से अपने-अपने सिद्धान्तों की स्थापनायें की थीं। इन दार्शनिकों में भक्त-चैतन्य प्रमुख हैं। ये वल्लभाचार्य के ही सम-सामयिक थे। इनका सम्प्रदाय चैतन्य सम्प्रदाय और सिद्धान्त अचिन्त्य भेदाभेदवाद के नाम से प्रचलित है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रपंचरूप जगत् न ब्रह्म से पूर्णतया भिन्न सिद्ध होता है और न पूर्णतया अभिन्न सिद्ध होता है। अत: भेदाभेद के अचिन्त्य होने के कारण ही इस सिद्धान्त का नाम अचिन्त्य भेदाभेदवाद पड़ा है।[1] भगवान् का अचिन्त्य आकार अनन्त शक्तियों से सम्पन्न है। परन्तु स्वरूप-शक्ति, तटस्थ-शक्ति और माया-शक्ति भगवान् की प्रमुख शक्तियां हैं। इन्हीं के द्वारा भगवान् जगत् की सृष्टि एवं संहार करते हैं। चैतन्य-मत के अनुसार जगत् मिथ्या न होकर सत्य है। भक्त का सदा भगवत् भक्ति में सिद्ध रहना मोक्ष से भी श्रेष्ठ है। रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी (चैतन्य के शिष्य) और जीव गोस्वामी आदि वैष्णवों ने भी चैतन्य-मत की ही पुष्टि की है। बलदेवविद्याभूषण (१८ वें शतक का उत्तरार्द्ध) ने ब्रह्मसूत्र का चैतन्य मत सम्मत भाष्य करके अचिन्त्य भेदाभेदवाद के सिद्धान्त का ही समर्थन किया है। इनका मत गोड़ीय वैष्णव मत के नाम से प्रचलित है। वैष्णव बलदेव की विचारधारा पर मध्वाचार्य के मत का प्रभाव भी लक्षित होता है परन्तु ये आचार्य मध्व की द्वैतपरक विचारधारा के विरोधी ही हैं। किसी-किसी ने तो बलदेव के विचारों पर मध्व का प्रभाव होने के कारण बलदेव-मत को मध्वगोड़ीय सम्प्रदाय तक कह दिया है।

आलोचना

शंकराचार्य और उनके परवर्ती उपर्युक्त दार्शनिकों की विभिन्न दर्शन-पद्धतियों का मूल आधार महर्षि बादरायण का 'ब्रह्मसूत्र' है। वास्तव में यह आश्चर्य का विषय है कि एक मूलाधार के होने पर विशिष्टाद्वैतवाद आदि विभिन्न सिद्धान्तों की उत्पत्ति कैसे हो गई। यदि विचार करें तो ज्ञात होगा कि इस मत-वैचित्र्य के दो

---

१. स्वरूपादि भिन्नत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वादभेदः, भिन्नत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वादभेदश्च प्रतीयत इति शक्ति शक्तिमतोर्भेदाभेदावंगीकृतौ। तौ च अचिन्त्यौ। स्वमतेतु अचिन्त्य भेदाभेदावेव अचिन्त्य शक्तित्वात्। जीवगोस्वामी-भागवत सन्दर्भ-'सर्वसंवादिनी'।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रधान कारण हैं—एक ब्रह्मसूत्र की दूरूहता और दूसरा साम्प्रदायिक एवं प्रतिक्रियात्मक भावना। यदि सूत्रकार का सिद्धान्त स्पष्ट हुआ होता तो इस 'दरिद्र दम्पतीन्याय की चरितार्थता का अवसर न आता। सूत्रों की दूरूहता एवं अस्पष्टता के कारण ही विभिन्न भाष्यकारों ने सूत्रों में प्रयुक्त द्वयर्थक शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं। उदाहरण के लिये, 'अन्तरा विज्ञान मनसी क्रमेण तल्लिगादिति चेन्नाविशेषात्' (२-३-१५, शंकराचार्य के अनुसार) सूत्र का भाष्य करते समय शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य ने 'अन्तरा' शब्द का अन्तराल अर्थात् मध्य अर्थ किया है। इसके विपरीत मध्वाचार्य ने इस स्थल पर 'अन्तरा' शब्द का 'विना' अर्थ किया है।[1] इसी प्रकार 'गुणाद्वालोकवत्' (ब्र० सू० २-३-२५) सूत्र में भी शंकराचार्य ने 'गुणात्', वा, लोकवत्' यह पदच्छेद किया है जब कि रामानुज, मध्व और निम्बार्क ने 'गुणात्, वा, आलोकवत्' ऐसा पदच्छेद किया है। इस प्रकार की दूरूहतायें ब्रह्मसूत्र का निश्चित पदपाठ न मिलने के कारण ही हुई जान पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त सूत्रकार के सिद्धान्त इतने स्पष्ट हैं कि उनमें पूर्वपक्ष एवं उत्तरपक्ष का निर्णय करना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि जो सूत्र एक भाष्यकार का पूर्वपक्ष है वही दूसरे का उत्तरपक्ष है। उदाहरण के लिये, ब्रह्मसूत्र के द्वितीय अध्याय के तृतीयपाद के त्रयोदश अधिकरण के १९—२८ सूत्रों को शकराचार्य ने पूर्व-पक्ष के रूप में स्वीकार किया है। इसलिये इन सूत्रों में वर्णित जीव का अणुत्व शंकराचार्य का सिद्धान्त पक्ष नहीं है। शंकराचार्य के मत में उक्त अधिकरण का २९ वां सूत्र—'तद्गुण सारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्' (२-३-२९) ही सिद्धान्त पक्ष का समर्थक है जिसके अनुसार जीव अणु न होकर विभु है।[2] इसके विपरीत आचार्य रामानुज के मत में 'उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्' (२-३-२० रामानुज के अनुसार) सूत्र सिद्धान्त पक्ष के अन्तर्गत आता है जिसके अनुसार जीव अणु है।[3] उक्त अधिकरण के २०-२५ सूत्र रामानुज के मत में जीव के अणुत्व के ही समर्थक हैं। इनके मत में २५ वें सूत्र के परवर्ती सूत्रों में जीव के अणुत्व से सम्बन्ध रखने वाली तर्कनायें निहित हैं।[4]

सूत्रकार वादरायण के संक्षिप्त सूत्रों के तात्पर्य-बोध में उक्त प्रकार की अनेक कठिनाईयां आती हैं। इसके अतिरिक्त रामानुज आदि आचार्य-चतुष्टय ने वैष्णव धर्म की साम्प्रदायिक भावना से ओतप्रोत होकर ही ब्रह्मसूत्र के भाष्य-प्रणयन का

1. Ghate, The Vedanta, Page 47.
२. तस्माद् विभुर्जीवः। ब्र० सू० शा० भा० २-३-२९
३. नायंसर्गगतः, अपित्वणुरेवात्मा। श्रीभाष्य २-३-२०.
4. Ghate, The Vedanta, Page 46.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार्य आरम्भ किया था। इस साम्प्रदायिकता के मूल में शांकर-दर्शन की प्रतिक्रिया भी बीजरूप से वर्तमान थी। परिणाम यह हुआ कि वैष्णव-दर्शन पद्धतियों के अनुसार वेदान्त, वेदान्त न रह कर भक्ति के रूप में परिणत हो गया और मुमुक्षु, भक्त के रूप में परिवर्तित होकर वृंदावन विहारी के साथ लीला विहार करने को ही मुक्ति से भी बढ़कर समझने लगा। निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने पर हम उक्त विचार-धारा से परिपूर्ण वैष्णव-दर्शन-पद्धतियों को एक पक्षपात पूर्ण साम्प्रदायिक विचार-धारा के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते। सच तो यह है कि विभिन्न दर्शनों के प्रस्थापक ये आचार्य निजमत प्रतिपादन के अनुसार ब्रह्मसूत्र की भाष्य रचना करते समय यह भूल गये थे कि ब्रह्मसूत्र के सिद्धान्त का मूलाधार औपनिषद् दर्शन है। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि सूत्रकार बादरायण के सूत्रों से प्रचारित वही दर्शन-पद्धति उचित कही जायेगी जिससे औपनिषद्-दर्शन का सामञ्जस्य हो सकेगा। यद्यपि उपनिषद्-दर्शन में सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म के सम्बन्ध में समान रूप से उद्धरण मिलते हैं परन्तु मुख्य वैदिकमत केवलाद्वैतवाद ही है। यही अद्वैतवाद वैदिक सिद्धान्त है। शंकराचार्य ने मायावाद की स्थापना करके अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य के अन्तर्गत वैदिक मत का ही समर्थन किया है। इसलिये दार्शनिक दृष्टि से शंकराचार्य की दर्शन-पद्धति सर्वशिरोमणि है, यह कहना किसी पक्षपातपूर्ण विचारधारा का फल नहीं कहा जा सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शङ्कराचार्य

[उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन]

सप्तम-अध्याय

शंकराचार्य के मायावाद का तुलनात्मक अध्ययन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

७

बौद्धों का शून्यवाद और शंकराचार्य का मायावाद

शंकराचार्य के मायावाद की ही तरह बौद्धों के शून्यवाद के सिद्धान्त के अवास्तविक रूप के आधार पर भी विभिन्न आलोचना प्रासाद खड़े किये गये हैं। इस स्थल पर मायावाद और शून्यवाद का तुलनात्मक विवेचन करने के लिये 'शून्य' के विभिन्न अर्थों के सम्बन्ध में संकेत करना उपयुक्त होगा।

शून्य के विभिन्न रूप

प्राचीन तन्त्र साहित्य में शून्य की मन्त्र एवं देवता के रूप में आराधना की गई है। गायत्री तन्त्र के अनुसार विना न्यास एवं प्राणायाम के ही 'शून्य' पूजन के द्वारा सब पवित्र हो जाता है।[1] कामधेनु तन्त्र में शून्य ज्ञान को करोड़ों सूर्यों के समान कहा गया है।[2] वृहन्नील तन्त्र में देवता रूप शून्य की सगुण-उपासना का विधान निश्चित करते हुए लिखा है कि बिना दीपक-मन्त्र के शून्य की उपासना नहीं करनी चाहिये।[3] ज्ञानसंकलिनीतन्त्र में तो शून्य को परमात्मा का ही रूप दिया गया है।[4] गन्धर्व-तन्त्र में भी शून्य को ब्रह्म का रूप दिया गया है।[5] इस प्रकार तन्त्र साहित्य के शून्य-सम्बन्धी वर्णन शून्य की सगुणता एवं देवत्त्व के ही सूचक हैं। बंगाल के धार्मिक विश्वास के अनुसार भी शून्य की साकार उपासना का ही वर्णन किया गया है। 'धर्म-पूजा विधान' के अन्तर्गत एक स्थल पर एक

---

१. विनान्यासं महेशानि प्राणायामं विना तथा।
शून्यपूजनमात्रेण सर्वं याति पवित्रताम्॥ गायत्री तन्त्र पारि० ॥१॥

२. शून्यात् शून्यं परं शून्यं शून्यरूपं निरंजनम्।
कोटि सूर्यं प्रतीकाशं निर्मलं ज्ञानमुत्तमम्॥ कामधेनु तन्त्र, ११ पटल।

३. विना दीपकमंत्रेण अग्रे शून्येन चार्चयेत्। वृहन्नीलतन्त्र, ४ पटल।

४. परमात्मा भवेच्छून्यं मनोयत्र विलीयते। ज्ञानसंकलिनी तन्त्र (३३)

५. गन्धर्वतन्त्र, ३६ पटल।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपासक कहता है कि मेरा विवास 'बल्लुका' में है। मैं निराकार ईश्वर की उपासना करता हूं। मैं शून्यरूप का ध्यान करता हूं और मैं साकार मूर्ति का उपासक हूं।[१] बंगीय लेखक धनराम चक्रवर्ती ने अपने धर्ममंगल नामक धार्मिक ग्रंथ में शून्य को, सगुण एवं निर्गुण दोनों ही रूप दिये हैं।[२] इस ग्रंथ में अनेक स्थलों पर शून्य की धार्मिक चर्चा की गई है। नाथ सम्प्रदाय में भी शून्य की स्थान-स्थान पर वर्णनायें मिलती हैं। गोरक्षनाथ (१२ वीं शती) नाथ सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक हैं। गोरक्षसंहिता में शून्य को आनन्द का आधार कहा है।[३] इधर कबीरदास (संवत् १४५५ डा० त्रिगुणायत के अनुसार) ने शून्य का निर्गुण रूप में वर्णन करते हुए कहा है कि शून्य अनन्त है एवं संसार की समस्त सीमाओं से परे है।[४] कबीर ही नहीं उनके परवर्ती दादू, सुन्दरदास, रज्जाब आदि सन्तों ने भी शून्य का निर्गुण रूप में वर्णन किया है। गुरु नानक ने भी शून्य के निर्गुण रूप को ही महत्ता दी है। नानक साहब का कथन है कि जल एवं आकाश शून्य में ही विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार शून्यता में ही भक्त को महारस की प्राप्ति होती है।[५] शून्य का गौरवगान करते हुए नानक साहब के अन्य अनुयायी कहते हैं कि सर्वत्र शून्य ही शून्य वर्तमान है, स्वयं ईश्वर भी शून्य के ध्यान में ही लीन है। जब एकमात्र शून्य का ही ध्यान शेष रह जाता है तो गुरु एवं शिष्य का भाव भी समाप्त हो जाता है।[६] इस प्रकार बौद्धों के शून्यवाद के सिद्धान्त के अतिरिक्त भी भारत के विभिन्न धार्मिक

---

१. वाड़ी मोर बल्लुकार। पूजिदेव नैराकार।
सून्यमूर्ति ध्यान करी। साकार मूर्ति भजें॥
धर्मपूजा विधान, पृ० २६५, (बंगाल साहित्य परिषद्)

२. तुमिहे संसारे शून्य सगुण निर्गुण……
धर्ममंगल, पृ० २, १६६ (गुरुदास चटर्जी, १६०२)।

३. गोरक्षसंहिता, पृ० १८३, पंचम अंश १०५ (प्रसन्नकुमार कविरत्न संपादित)
(7th A. I. O. C. Baroda, Report के अन्तर्गत प्रो० क्षितिमोहन सेन के लेख से उद्धृत)।

४. हद छाड़ि वेहद गया किया सुन्नि असनान। कबीर ग्रन्थावलि पचांश ११।

५. जलु आकाशी सुन्नि समावै।
रसु मतु झोलि महारस पावै॥ ग्रन्थ साहब राग आशा, अष्टपदी।

६. सुन्नो सुन्न कहै सब कोय। सुन्नि ध्यान रंज प्रभु सोय।
सुन्न ध्यान जब रहे अकेला। तब कवराउ गुरू कवणुं कही जै चेला॥
प्रश्न संगति पृ० १६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्प्रदायों में शून्य की पृथक्-पृथक् दिशायें मिलती हैं। वास्तविकता तो यह है कि निज-निज सम्प्रदाय के अनुसार विभिन्न धार्मिक नेताओं ने शून्य को साकार एवं निराकार रूप दे दिया है। इसलिये बौद्धों का शून्यवाद, जिसमें नागार्जुन की प्रतिमा प्रबल है, का शून्य सम्बन्धी उपर्युक्त स्थलों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। बौद्ध-शून्यवाद के सिद्धान्त की दिशा पृथक् है।

बौद्ध-शून्यवाद

विश्व के समस्त दर्शन सत्यान्वेषण एवं असत्य और अविवेक के निषेध के अथक प्रयास हैं। भारतीय दर्शन की मौलिक अभिव्यक्तियों के रूप में ऋग्वेद-संहित में 'ना सदासीन्नो सदासीत् तदानीम्'[1] कहकर सत् और असत् दोनों का ही निषेध किया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में चरम सत्य का वर्णन 'नेति-नेति' के द्वारा किया गया है।[2] मेरा विचार है कि संहिताओं और उपनिषदों की इन निषेध परक अभिव्यक्तियों के आधार पर ही शून्यवादी बौद्ध नागार्जुन ने अनात्मवादी एवं अनित्यत्ववादी—निषेधात्मक दर्शन का विकास किया होगा। महायान से सम्बन्ध रखने वाले माध्यमिक-नागार्जुन ही शून्यवाद के सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्तक हैं। नागार्जुन आन्ध्रराजा यज्ञश्री (१६६–१९६ ई०) के समकालीन माने जाते हैं।[3] नागार्जुन के नाम से वैसे तो कई ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं परन्तु उनकी प्रमुख रचनायें—(१) माध्यमिक-कारिका, (२) युक्तिषष्ठिका, (३) प्रमाण-विध्वंसन, (४) उपाय-कौशल्य और (५) विग्रह-व्यावर्तनी हैं। इसमें माध्यमिक-कारिका और विग्रह-व्यावर्तनी[4] मूल संस्कृत में ही उपलब्ध हैं। माध्यमिक-कारिका और विग्रह-व्यावर्तनी में शून्यता का पूर्णरूप से विवेचन किया गया है। विग्रह-व्यावर्तनी की तो ७२ कारिकाओं में से दो माहात्म्य और नमस्कार के श्लोकों को छोड़कर शेष सत्तर कारिकाओं में शून्यता का ही विवेचन किया गया है। इन सत्तर कारिकाओं के शून्यता-विवेचन के आधार पर ही इस ग्रन्थ का नाम 'शून्यता-सप्तति' भी लिया जाता है। यहां नागार्जुन के शून्यवाद का विवेचन किया जायगा।

---

१. ऋग्वेद संहिता, १०–१२९–१। २. बृ० उ०, ४–४–२२।

3. M. Winternitz, History of Indian Literature, Vol. II, PP. 346–348.

4. Journal of the Bihar & Orissa Research Society, Patna, Voll. XXIII के अन्तर्गत विग्रहव्यावर्तनी का सम्पादन राहुल सांकृत्यायन द्वारा किया गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शून्यवाद एक विचित्र दर्शन है। उसका एक छोर अनात्मवाद है और दूसरा अभौतिकवादी। शून्यवादी आत्मा का खण्डन करता है। शून्यवादी के मत में संसार का निदान सत्काय दृष्टि है। इस सत्काय दृष्टि का आलम्बन आत्मा है। अतः आत्मा की अनुपलब्धि से सत्काय दृष्टि का विनाश होगा और उसके विनाश से क्लेशों की व्यावृत्ति होगी। आत्मा को शून्यवादी अहंकार का विषय मानता है इसलिये क्लेशमूल-अहंकार के परिक्षय के लिये आत्मा निषिध्य ही है।

आत्मा की सत्ता कल्पित मात्र है।[1] अद्वैतियों की आत्मा के सातत्यरूप के विपरीत शून्यवादी का कथन है कि सभी वस्तुएं—'प्रतीत्य समुत्पन्न' हैं। 'प्रतीत्य समुत्पन्न' का आशय यह है कि सभी वस्तुएं अपनी उत्पत्ति में, अपनी सत्ता के अर्थ दूसरे प्रत्यय अथवा हेतु पर आश्रित हैं अर्थात् वे पराश्रित हैं। माध्यमिक का यह सिद्धान्त प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धान्त है। यह प्रतीत्य समुत्पाद अर्थात् विच्छिन्नप्रवाह के अनुसार ही शून्यता है।[2] प्रतीत्य समुत्पाद के अनुसार सभी वस्तुओं की उत्पत्ति 'विच्छिन्नप्रवाह के समान है। वस्तूत्पत्ति के विच्छिन्न मानने के कारण अनात्मत्त्व स्पष्ट है। परन्तु शून्यवादी अनात्मवादी होकर भी भौतिकवादी नहीं है। भौतिकवाद के—उच्छेदवाद के विरुद्ध प्रतीत्य समुत्पादवादी ने वस्तुओं के क्षणिक विनाश और क्षणिक प्रादुर्भाव रूप प्रवाह को भी माना है। इस प्रकार शून्यवाद न आत्मवाद है और न भौतिकवाद प्रत्युत वह मध्यममार्ग है। शून्यता, उपादाय प्रज्ञप्ति तथा मध्यमा प्रतिपत्, ये सब प्रतीत्य समुत्पाद की ही विशेष संज्ञायें हैं।[3]

शून्यवाद के अनुसार जगत् के समस्त भाव निःस्वभाव हैं। इन भावों के पीछे आत्मा जैसी कोई भी नित्य वस्तु वर्तमान नहीं है। इसीलिये इनकी निःस्वभावता सिद्ध है। यह निःस्वभावता ही शून्यता है। बौद्ध आचार्य चन्द्रकीर्ति के अनुसार स्वभाव परनिरपेक्ष तथा अकृत्रिम होता है। कृत्रिम एवं सापेक्ष भाव कदापि स्वभाव नहीं हो सकता। जैसे अग्नि का उष्णत्त्व, हेतु-प्रत्यय से प्रतिबद्ध होने के कारण, पश्चाद्वर्ती होने से कृत्रिम है। इसलिये अग्नि का उष्णत्त्व अग्नि का स्वभाव नहीं है। इस प्रकार अग्नि का निजरूप अकृत्रिम है जो कालत्रय में

---

१. आचार्य नरेन्द्र देव, बौद्ध-धर्म दर्शन, पृ० ५३१।

२. इह हि यः प्रतीत्य भावानां भावः सा शून्यता। विग्रह-व्यावर्तनी २२।

३. यः प्रतीत्य समुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्षते।
सा प्रज्ञप्तिरुपादाय प्रतिपत्सैव मध्यमा॥ माध्यमिककारिका २४-१८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अव्यभिचारी है।[1] प्रश्न फिर हो सकता है कि अग्नि का स्वभाव क्या है? उत्तर होगा कि स्वरूपतः स्वभाव 'नहीं' है, किन्तु 'नहीं है' भी नहीं है—इस द्वैविध्य से रक्षा के लिये ही सांवृतक आरोपण के द्वारा स्वभाव माना जाता है। वैसे तो जो पदार्थ उपलब्ध हैं वह उन्हें अविद्या विरहित आर्य जिस रूप में अपने दर्शन का विषय बनाता है वही उनका स्वभाव है।[2] भावों की अनुत्पादात्मकता ही स्वभाव है जो अकिंचित् होने के कारण अस्वभाव है। इसलिये किसी प्रकार भी भावों का स्वभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। अपर बुद्ध नागार्जुन ने परम तत्त्व शून्य को चतुष्कोटि विनिर्मुक्त कहा है। उनके मत में परमार्थ न सत् है न असत् है न सदसत् है और न सदसद् भिन्न है। इसलिये परमतत्त्व अनिर्वचनीय है। सदसत् के मध्य में स्थित होने के कारण ही माध्यमिकों ने इस परम तत्त्व को 'शून्य' कहा है। परमार्थ का सूचक शून्य स्वयं निरपेक्ष होने के कारण अभाव रूप नहीं है। क्योंकि अभावभाव का सापेक्षी होता है।

आचार्य नागार्जुन ने शून्यता के पांच लक्षण दिये हैं। ये लक्षण—(१) अपर-प्रत्यय (२) शान्त (३) प्रपंचाप्रपंचित (४) निर्विकल्प और (५) अनानार्थ हैं।[3]

(१) अपर प्रत्यय—शून्य अपर प्रत्यय होने के कारण प्रत्यात्मवेद्य है। इसका दूसरे को उपदेश नहीं दिया जा सकता। आर्यों का समस्त तत्त्व प्रतिपादन अध्यारोप के द्वारा ही होता है।

(२) शान्त—परम तत्त्व निःस्वभाव होने के कारण शान्त है।

(३) प्रपंचाप्रपंचित—प्रपंच वाणी है।[4] परम तत्त्व वाणी के द्वारा अविवर्चाच्य है। इसीलिये इसे 'अशब्द' तथा 'अनक्षर' भी कहा गया है।

(४) निर्विकल्प—विकल्प का अर्थ है—चित्त का प्रचार अर्थात् चित्त का चलना। परन्तु परमार्थ शून्यता चित्त व्यापार के अन्तर्गत नहीं आती।

अनानार्थ—जिसके विषय में धर्मों की उत्पत्ति मानी जाती है वह वस्तु नानार्थ होती है। वस्तुतः सब धर्मों का उत्पाद होता ही नहीं। अतः शून्य तत्त्व नानार्थ रहित है।

---

१. आचार्य नरेन्द्र देव, बौद्ध-धर्म दर्शन, पृ० ५२६।

२. येनात्मना पश्यति शुद्धदृष्टिस्तत्तत्त्वमित्येवमिहाप्यनेहि। मध्यमकावतार ६–२६।

३. अपरप्रत्ययं शान्तं प्रपंचैरप्रपंचितम्।
निर्विकल्पम् मनानार्थमेतत् तत्त्वस्य लक्षणम्॥ माध्यमिककारिका १८–९।

४. प्रपंचोहि वाक् प्रपंचयत्यर्थानितिकृत्वावागभिव्याहृतमित्यर्थः। माध्यमिकवृत्ति पृ० ३७३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शून्यता के विभिन्न प्रकार

महायान ग्रन्थों में शून्यता के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न रूप से वर्णन मिलता है। ह्वेनच्वांग द्वारा विरचित 'महाप्रज्ञा पारमिता' के चीनी अनुवाद में शून्यता के अठारह प्रकार वर्णित हैं।[१] हरिभद्र के 'अभिसमयालंकारालोक' में 'पंचविंशति साहस्रिका प्रज्ञा पारमिता' के अनुसार शून्यता के २० प्रकार वर्णित हैं।[२] शून्यता के ये २० प्रकार—(१) अध्यात्म शून्यता (२) बहिर्धा शून्यता (३) अध्यात्म बहिर्धा शून्यता (४) शून्यता-शून्यता (५) महा शून्यता (६) परमार्थ शून्यता (७) संस्कृत-शून्यता (८) असंस्कृत शून्यता (९) अत्यन्त शून्यता (१०) अनवराग्र शून्यता (११) अनवकार शून्यता (१२) प्रकृति शून्यता (१३) सर्वधर्म शून्यता (१४) लक्षण शून्यता (१५) उपलम्भ शून्यता (१६) अभावस्वभाव शून्यता (१७) भाव शून्यता (१८) अभाव शून्यता (१९) स्वभाव शून्यता (२०) परभाव शून्यता हैं।

शून्यता के इस सर्वांगीण वर्णन के द्वारा शून्यवाद की व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। अब शून्यवाद की 'संवृति' के सम्बन्ध में भी विचार कर लेना चाहिये क्योंकि इसके बिना शून्यवाद का अध्ययन उसी प्रकार अपूर्ण होगा जिस प्रकार कि मायावाद के बिना अद्वैतवाद का अध्ययन अपूर्ण है।

संवृति

बुद्ध की धर्म देशना दो सत्यों पर आश्रित है—एक लोक संवृति सत्य और दूसरा परमार्थ सत्य।[3] लोक संवृति सत्य व्यावहारिक सत्य है। बिना व्यवहार के आश्रय के परमार्थ की देशना नहीं हो सकती और बिना परमार्थ अधिगम के निर्वाण का अधिगम अशक्य है।[४] बिना सत्य द्वय की कल्पना किये शून्य का वर्णन धृष्ट प्रयास है। संवृति अविद्या रूप है। जिस प्रकार अविद्या, वस्तु के स्वभाव-दर्शन पर पर्दा डाल देती है उसी प्रकार संवृति भी आवरण शक्ति के रूप में निःस्वभाव

1. द्रष्टव्य—Dr. Snzuki—Essays in Zen Buddhism (Third Series) PP. 222–227.
2. द्रष्टव्य—Dr. Obermiller का लेख, Indian Historical Quarterly, Vol. IX, 1933, PP. 170–187.

३. मध्यमकावतार २४-३।
४. व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देश्यते।
परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते॥ मध्यमकावतार २४-१०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवं सत्याभासित पदार्थों को स्वभावेन तथा सत्यरूपेण प्रतिभासित करती है।[1] अविद्या रूप संवृति ही अविद्यमान वस्तु का रूप अन्य वस्तु पर आरोपित कर देती है। संवृति के भी दो रूप हैं—एक लोक संवृति है और दूसरी अलोक संवृति है। लोक-संवृति साधारण जन समाज का सत्य है। इसके विपरीत 'अलोक-संवृति' साधारण लोक का सत्य न होकर दुष्ट इन्द्रिय वाले समाज का सत्य होता है। उदाहरण के लिये शंख की पीतिमा का ज्ञान 'कामला' रोगी को ही होता है न कि सकल समाज को। संवृति की सत्यता लोक दृष्टि से ही है इसीलिये इसे लोक संवृति सत्य कहते हैं। संवृति, प्रतीत्य समुत्पन्न होने के कारण कृत्रिम है. अतः यह मिथ्या है।[2] संवृति की सत्यता अविद्या से ग्रस्त व्यक्ति के लिये ही है। प्रत्येक बुद्ध तथा बोधिसत्त्व के लिये वह संवृतिमात्र है, सत्य नहीं, क्योंकि उनकी अविद्या नष्ट हो चुकी है। संवृति कृत्रिम एवं मिथ्या होते हुए भी परमार्थ शून्य की सिद्धि के लिये परम अपेक्षित है। बिना इसके शून्यता सिद्धि नहीं हो सकती।[3]

शून्यवाद और शंकराचार्य के मायावाद की तुलना

शून्यवाद के सम्बन्ध में दी गई संक्षिप्त दिशा के आधार पर शून्यवाद एवं शांकर-मायावाद में पर्याप्त समताओं एवं विषमताओं की प्रतीति होती है। बड़े-बड़े आलोचक मनीषियों ने इन दोनों दर्शनों की विषमताओं एवं विशेषताओं पर दृष्टिपात न करके बुद्ध परवर्ती शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बुद्ध' तक कह दिया है। इस समस्या का समाधान आगामी प्रकरण में किया जायगा। यहां तुलनात्मक विवेचन के रूप में दोनों सिद्धान्तों की समानताओं, असमानताओं एवं विशेषताओं का निरूपण किया जा रहा है।

समानतायें—मायावाद अद्वैतवाद का ही अपर पर्याय है। मायावाद एवं शून्यवाद दोनों ही सिद्धान्त 'एक सत्य' की स्थापना करते हैं। मायावादियों का यह परमार्थ सत्य अद्वैत ब्रह्म है और शून्यवादियों का निःस्वभाव शून्य। जिस प्रकार शून्य की वर्णना शान्त, शिव, अद्वैत, अनानार्थ और प्रपंचाप्रपंचित शब्दों के द्वारा की गई है[4] उसी प्रकार ब्रह्म को भी शान्त, शिव, अद्वैत और एक आदि विशेषणों के द्वारा लक्षित किया गया है।[5] जिस प्रकार शून्यता वाणी के द्वारा

१. संव्रियत आव्रियते यथाभूतपरिज्ञानं स्वभावावरणाद् आवृत प्रकाशनाच्चानयेति संवृतिः। अविद्याह्यसत् पदार्थं स्वरूपारोपिका स्वभावदर्शनावरणात्मिका च सती संवृतिरूपपद्यते। बोधिचर्यावतार पंजिका पृ० ३५२।

२. मध्यमकावतार ६–२४, २८, ३. वही ६–७९, ८०।

४. माध्यमिककारिका १८–९, ५. माण्डूक्योपनिषत् ७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनिर्वाच्य है उसी प्रकार ब्रह्म भी अनुभव का विषय है। आरोपवाद के आधार पर ही शून्यता एवं ब्रह्म, दोनों का निरूपण किया जाता है। परमार्थ में दोनों ही अवर्णनीय हैं।

जगत् के सम्बन्ध में मायावादी ने 'माया' का आश्रय लिया है। जगत् की सत्ता मायिक है। अविद्या के द्वारा मायावादी के मत में असत्य जगत् की सत्य प्रतीति होती है। यह जगत् की व्यावहारिक सत्ता है। अविद्या निवृति के उपरान्त पारमार्थिक सत्ता के अनुरूप ब्रह्मवेत्ता को परमार्थ लाभ होता है। मायावाद की इस सत्यद्वय कल्पना के समान ही शून्यवादी ने भी लोक-संवृति-सत्य और परमार्थ सत्य इन दो सत्यों को स्वीकार किया है।[1] सांवृतिक सत्य ही व्यावहारिक सत्य है। जिस प्रकार मायावाद के सिद्धान्त के अनुसार बिना व्यवहार के परमार्थ नहीं सिद्ध होता उसी प्रकार व्यवहार के अनादर से शून्यवाद की देशनाअसम्भव है।[2] मायावाद के अनुसार व्यवहार प्रपंच जननी अविद्या अथवा माया शून्यवाद की संवृति है। अविद्या के समान ही संवृति असत् की सत्रूपेण प्रकाशिका और सत् की आवरक है। जिस प्रकार कि आचार्य शंकर ने माया को सत्, असत्, सदसत्, सदसद्भिन्नत्व से विलक्षण होने के कारण अविर्वचनीय कहा है उसी प्रकार नागार्जुन[3] एवं शून्यवाद के अन्य समर्थकों ने भी शून्य को अनिर्वचनीय कहा है। असंग[4] और अद्वयवज्र[5] के परमार्थ लक्षणों में भी अनिर्वचनीयता का ही आभास मिलता है।

शून्यवाद और मायावाद की इन्हीं साम्यताओं के आधार पर ही योगवाशिष्ठकार, उदयनाचार्य और आनन्दतीर्थ (१३वीं शताब्दी) ने मायावादी के ब्रह्म और शून्यवाद के शून्य को एक ही कोटि में रखने का प्रयास किया है।[6] ब्रह्म और शून्य इन दो अद्वैत तत्त्वों की समान प्रतिपादन प्रणाली होने के कारण ही श्री हर्ष, हरिश्चन्द्र और शांतिदेव प्रभृति दार्शनिक विद्वानों ने शून्यवाद को अद्वैतवाद का ही रूप माना है। नैषधकार श्री हर्ष ने बुद्ध के लिये 'अद्वैतवादी' कहा है।[7] हरिश्चन्द्र ने अपने 'धर्मशर्माभ्युदय' नामक ग्रन्थ में सुगत के अद्वैतवाद का संकेत किया है।[8]

---

१. माध्यमिककारिका २४–८,
२. मध्यमकावतार २४–१० ।
३. मूलमाध्यमिककारिका १५,
४. महायान सूत्रालंकार, लेवी, पृ० २२, ६–१ ।
५. अद्वयवज्रसंग्रह पृ० १६,
६. देखिये—भरतसिंह उपाध्याय, बौद्ध-दर्शन तथा अन्य भारतीय-दर्शन, भाग २, पृ० ६५१, १०२८ ।
७. नैषध २१–८७,
८. धर्मशर्माभ्युदय १७–६६ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शान्तिदेव बोधि को अद्वय रूप मानते हैं।[१] अतः मायावादियों का ब्रह्म और शून्यवादियों का शून्य इतने समान धरातल पर आ पहुँचे कि दोनों सिद्धान्तों के ऐक्य की भ्रान्ति साधारण ही नहीं अपितु विशिष्ट-विशिष्ट विद्वानों को भी होने लगी। परन्तु दोनों दर्शन-पद्धतियों में मौलिक भेद होने के कारण कुछ ऐसी विषमतायें हैं कि दोनों की दार्शनिक दिशायें पृथक्-पृथक् हैं। दोनों दार्शनिक सिद्धान्तोंके असमान अंशों के आकलन से यह नीर-क्षीरविवेक स्वतः हो जायेगा।

असमानतायें - यह मानने में किसी आलोचक को संकोच न होगा कि शून्यवाद और मायावाद दोनों ही दार्शनिक-सिद्धान्त अद्वैत सत्य के प्रस्थापक हैं। परन्तु इसके साथ ही साथ यह भी स्वीकार्य होगा कि दोनों के परमार्थ तत्त्व का स्वरूप पूर्णतया भिन्न है। मायावादियों का 'ब्रह्म' सत् स्वरूप है परन्तु शून्यवादियों का शून्य असत् रूप से प्रवहमान धारा का चरम फल है। अद्वैतवादियों का सत् ब्रह्म सर्वत्र तथा सर्वदा वर्तमान रहता है परन्तु शून्यवादियों के मत में ब्रह्म के समान किसी 'सत्' तत्त्व की कल्पना नहीं की गई है। शून्यवादियों का परम तत्त्व—शून्य ब्रह्म की तरह ज्ञेय नहीं है। ब्रह्म स्वतः ज्ञान स्वरूप है। इसके विपरीत शून्य निषेध रूप' है। इसीलिये शून्यवाद को अभाववादी दर्शन कहा जाता है क्योंकि इसमें प्रत्येक सत्ता का, शून्य कहकर ही वर्णन किया गया है। बौद्ध-दर्शन के मूल लेखकों एवं आलोचकों ने अनिर्वचनीय शून्य सत्ता की स्थापना करके अभाववादी आक्षेप को मिटाने का प्रयास किया है। शून्यवादी नागार्जुन ने शून्य को सत्, असत्, सदसत् एवं सदसद्भिन्नत्व इन चारों कोटियों से विनिर्मुक्त कहा है।[२] यही शून्य का अनिर्वाच्य रूप है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का कथन है कि शून्यवाद के निषेधात्मक वर्णनों के बीच एक अचिन्त्य सत्ता है जो शून्य है। इस प्रकार शास्त्री जी ने शून्य की सत्ता मानी है।[3] परन्तु आपत्ति तो यह है कि शून्यवाद के अन्तर्गत अन्ततः उस शून्यता दृष्टि का भी निषेध कर दिया गया है।[४] इस प्रकार 'सत्' मात्र का निषेध करने के कारण शून्यवादी दर्शन को अभाववादी दर्शन कहना उपयुक्त

---

१. बोधिचर्यावतार पृ० ४२१। २. माध्यमिककारिका १-७।

3. "There is in the midst of all the negative descriptions an inconceivable positive which is Sunya".
—Journal of the Buddhist Text Soceity, Vol. II, Pt. III, P. VI.

४. शून्यतासर्वदृष्टीनां प्रोक्ता निःसरणं जिनैः।
येषांतुशून्यतादृष्टिस्तानसाध्यान् बभाषिरे ॥ माध्यमिककारिका १३-८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही प्रतीत होता है। इसके विपरीत शांकर-मायावाद के अनुरूप ब्रह्म की सत्ता के साथ ही साथ व्यावहारिक जगत् भी 'सत्' स्वीकार किया गया है। इस प्रकार शांकर-मायावाद और बौद्ध-शून्यवाद में जो सैद्धान्तिक विषमता है वह अपरिहार्य है। शंकराचार्य ने अपने भाष्य-ग्रन्थों में शून्यवाद और मायावाद की विषमताओं के सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। शंकराचार्य का कथन है कि दिक्, देश, गुण, गति और फलभेद से शून्य, परमार्थसत्, अद्वयब्रह्म मन्दबुद्धियों को 'असद्' वत् प्रतीत होता है।[1] वास्तव में ब्रह्म बौद्धों का 'असत्' पदार्थ न होकर 'सत्' रूप है। शंकराचार्य का कहना है कि हमारे प्रतिषेध का ब्रह्म में अवसान होता है अभाव में नहीं।[2] शंकराचार्य का कथन है कि बौद्ध, शून्यवाद के सहारे 'सत्' के अभाव मात्र की कल्पना करते हैं।[3] शांकर-दर्शन में 'सत्' ब्रह्म की स्थापना करके केवल रूप प्रपंच का ही निषेध किया गया है।[4] शंकराचार्य ने माण्डूक्यकारिका के भाष्य में शून्यवाद और अद्वैतवाद के मध्यवर्ती भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि यदि पूर्वपक्षी कहता है कि अद्वैत के वस्तुत्व में प्रमाण न होने के कारण और द्वैत का अभाव होने से अद्वैतवाद में शून्यवाद का प्रसंग उपस्थित हो जायेगा तो यह अनुचित है क्योंकि अद्वैतवाद वस्तुत्व पर प्रतिष्ठित है। रज्जु में सर्पादि की कल्पना भी 'सत्' पर ही आधारित है।[5] इसलिये मायावाद के सम्बन्ध में शून्य का प्रसंग कदापि उपस्थित नहीं हो सकता। जहां तक दोनों दर्शनों की जगन्मिथ्यात्व दृष्टि का सम्बन्ध है वह भी भिन्न है। इस भिन्नता के स्पष्ट करने के लिये सर्वज्ञात्म मुनि ने पूर्वपक्षी के मत को उद्‌घृत करते हुए लिखा है कि वाह्य जगत् के समान रूप से मिथ्या होने के कारण अद्वैत-दर्शन और बौद्ध-दर्शन समान ही समझने चाहिएं। इस प्रकार विचार करने पर तो वैदिक मुनि शंकराचार्य बुद्ध ही ज्ञात होते हैं।[6] परन्तु इस पूर्वपक्ष का निराकरण करते हुए सर्वज्ञात्म मुनि ने लिखा है कि अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व तो है परन्तु बौद्धों का 'असत्त्व' नहीं है।[7] इसके अतिरिक्त बौद्ध-दर्शन क्षणिकवाद पर आधारित है जब कि शांकर-दर्शन स्थिरत्व पर। अतः दोनों दर्शन-पद्धतियों में भेद की रेखा स्पष्ट प्रतीत होती है। शून्यवादी

---

१. छा० उ० भां० ८-१-१ का प्रास्ताविक।

२. ब्रह्मावसानो यं प्रतिषेधः नाभावावसानः। ब्र० सू० शा० भा० ३-२-२२।

३ सद्भावमात्रं हि प्रागुत्पत्तेस्तत्त्वं कल्पयन्ति बौद्धाः। छा० उ० भा० ६-२-१।

४. ब्र० सू० शा० भा० ३-२-२२। ५. मा० का० सा० भा० २-३२।

६. संक्षेप शारीरक २-२५, २-२६। ७ वही २-२८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बौद्ध और मायावादी में एक सैद्धान्तिक विषमता यह है कि बौद्ध मत में सब कुछ अनिर्वचनीय ही है। यहां तक कि परमार्थ—शून्य भी अनिर्वचनीय है। परन्तु ब्रह्मवादियों के मतानुसार विज्ञान से व्यतिरिक्त यह मायिक विश्व ही सत्त्वासत्त्व से अनिर्वचनीय है।[1] शून्यवादी का कारणकार्य-भाव निःस्वभाव में पर्यवसित होता है। शून्यवादी के कारण-कार्य-भाव का यह अपलाप मायावादी शंकराचार्य के दर्शन में नहीं पाया जाता। शंकराचार्य तो कार्यकारणातीत आत्म-ज्योति को भी कार्य-कारण का अवभासक मानते हैं। इसीलिये वेदान्त मत में कूटस्थ कर्ता के द्वारा कार्य की उत्पत्ति स्वीकार की गई है।[2]

उपर्युक्त विवेचन के द्वारा यह सिद्ध होता है कि शून्यवाद और मायावाद दो पृथक्-पृथक् सिद्धान्त हैं। दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से शांकर-मायावाद की जिन विशिष्टताओं की उपलब्धि होती है, यहां उनका उल्लेख किया जायगा। साथ ही साथ शून्यवाद की विशेताओं की ओर भी संकेत किया जायगा।

विशिष्टतायें

(१) शंकराचार्य का मायावाद वैदिक सिद्धान्त है। इसके विपरीत शून्य-वाद अवैदिक मत है।

(२) मायावाद के अनुसार जिस मायावी ईश्वर की कल्पना की गई है उसका शून्यवाद में अभाव है। इसीलिये शून्यवादी अनिश्वरवादी दर्शन है।

(३) मायावाद-विचारधारा के अनुसार मायिक जगत् की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार्य है परन्तु शून्यवादी जगत् को निःस्वभाव मानकर उसको सत्ता स्वीकार नहीं करता।

(४) मायावादी के मत में सदसद्विलक्षणत्व के कारण माया अनिर्वचनीय है परन्तु शून्यवादी के मत में परमार्थ-शून्य अविवंचनीय है।

(५' मायावाद के अनुसार परमार्थ सत्—ब्रह्म ज्ञानरूप एवं सत् है। इसके विरुद्ध शून्यवादी का शून्य अज्ञेय एवं असत् है।

(६) मायावाद-परक विचार से माया भावरूप है परन्तु शून्यवादी का शून्य असत् एवं अभावरूप है।

---

१. एवं च सति सौगत ब्रह्मवादिनोः को विशेष इति चेर यं विशेषः यदादिमः सर्वमेवानिर्वचनीयं वर्णयति.........विज्ञान व्यतिरिक्तं पुनरिदं विश्वं सत्त्वासत्त्वाभ्यामनिर्वचनीयं ब्रह्मवादिनः संगिरन्ते। खण्डन-खण्डन खाद्य, प्रथम परिच्छेद।

२. बृ० उ० भा० ४–३–१०, ब्र० सू० शा० भा० २–२–२६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(७) मायावादी के मत में आत्मा की सत्ता स्वीकार्य है परन्तु शून्यवादी की इस सम्बन्ध में विचित्र स्थिति है। वह अनात्मवादी भी है और साथ ही साथ अभौतिकवादी भी है। शून्यवादी का सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पादवाद है।

उपर्युक्त भेद-स्थितियों के आधार पर शून्यवाद एवं मायावाद का पार्थक्य स्पष्ट है। अतः दोनों दार्शनिक–सिद्धान्त समान न होकर पूर्णतया भिन्न हैं।

गौड़पादाचार्य और शंकराचार्य के माया सम्बन्धी दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन

गौड़पादाचार्य शंकराचार्य के परमगुरु थे। परमगुरु के दार्शनिक तथ्यों का प्रभाव अद्वैती आचार्य शंकर पर पड़ना स्वाभाविक ही था। इस प्रभाव का उल्लेख द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत किया जा चुका है। आचार्य शंकर को अपने मायावाद की स्थापना के लिये परमगुरु के माण्डूक्यकारिकावर्ती माया सम्बन्धी दार्शनिक सिद्धान्त की जो पृष्ठ-भूमि प्राप्त हुई थी वह निःसन्देह स्वीकार्य है। परन्तु गौड़पादाचार्य और शंकराचार्य के माया सम्बन्धी दृष्टिकोण में पर्याप्त भेद है। सैद्धान्तिक दृष्टि से शंकराचार्य का मायावाद पूर्णतया वही नहीं है जो गौड़पादाचार्य का माया-सम्बन्धी सिद्धान्त।[1] यहां दोनों दार्शनिकों के सिद्धान्तों का तुलनात्मक विवेचन किया जायगा।

आचार्य गौड़पाद ने अपनी माण्डूक्यकारिका में अनेक स्थलों पर माया का वर्णन किया है। गौड़पादकारिका के इन माया-सम्बन्धी वर्णनों में माया के तीन प्रमुख रूप मिलते हैं—

(१) आत्मा और जगत् के सम्बन्ध की अनिर्वचनीयता का सूचक माया का रूप।

(२ माया का ईश्वर की शक्ति का रूप।

(३) जगत् की स्वाप्निक सत्ता का द्योतक माया का रूप।

गौड़पादकारिकावर्ती माया के उपर्युक्त तीनों रूपों में अन्तिमस्वाप्निक सत्ता के द्योतक माया के रूप की ही प्रमुखता है। आदिम दो के सम्बन्ध में शंकर और गौड़पाद में कोई भेद नहीं है। इसके अतिरिक्त आचार्य शंकर की ही तरह गौड़पाद भी इस द्वैतप्रपंच को 'मायामात्र' कहते हैं।[2] परन्तु जगत् के सम्बन्ध में गौड़पाद का स्वप्न-सम्बन्धी सिद्धान्त शंकराचार्य से भिन्न है। आचार्य गौड़पाद

1. Devanandan, The Concept of Maya, P. 87.
२ मा० का० २–१७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगत् को स्वप्नमात्र कहते हैं। गौड़पादाचार्य का कथन है कि स्वप्न में देखे गये रथ इत्यादि का युक्ति तथा श्रुति के अनुसार अभाव है।[1] इस प्रकार स्वप्न-सिद्धान्त के आधार पर गौड़पादाचार्य का कथन है कि जिस प्रकार स्वाप्निक पदार्थों की सत्ता वाह्य न होकर आत्मवर्ती ही होती है उसी प्रकार जाग्रत् अवस्था में देखे गये पदार्थों की वाह्य सत्ता भी स्वप्न के समान मिथ्या है।[2] इस प्रकार स्वप्नवादी गौड़पादाचार्य ने जगत् के जाग्रत् अवस्थावर्ती अनुभवों को भी स्वप्न कहकर स्वप्न और जाग्रत्—इन दो पृथक् अवस्थाओं के भेद को ही समाप्त कर दिया है।[3] गौड़पादाचार्य मायिक जगत् को स्वप्न कहकर जगत् के व्यावहारिक स्वरूप का खण्डन करते हैं। इसी आधार पर अलोचकों ने गौड़पाद-दर्शन को बौद्धों के विज्ञानवाद का ही रूपान्तर कहने का साहस किया है। इतना ही नहीं, आचार्य गौड़पाद के अजातिवाद के सिद्धान्त में शून्यवाद की झलक भी देखी जा सकती है। अजातिवाद के सिद्धान्त की स्थापना करते हुए आचार्य गौड़पाद कहते हैं कि चित्त और चित्त के दृश्य दोनों ही उत्पन्न नहीं होते। इनकी उत्पत्ति मानना आकाश में पद-दर्शन के समान है[4] अर्थात् असम्भव है। इसके विपरीत शंकराचार्य की 'माया' आकाश के पद-दर्शन के समान न होकर व्यावहारिक सत्ता के अनुसार 'सत्' है। मायावादी शंकर का दृश्य जगत् स्वप्न के समान केवल चित्तगत न होकर व्यावहारिक रूप से सत् है। इसलिये शंकराचार्य और गौड़पादाचार्य के माया सम्बन्धी दृष्टिकोण में मौलिक भेद प्रतीत होता है।

आचार्य शंकर, गौड़पादाचार्य के—जगत्-सम्बन्धी स्वप्न-सिद्धान्त का खण्डन करते हैं। उनका कथन है कि जाग्रत् जगत् के प्रत्यय कदापि स्वप्नवत् नहीं कहे जा सकते। शंकराचार्य ने उक्त तर्क की पुष्टि करते हुये कहा है कि जाग्रत् एवं स्वप्न अवस्थाओं में अन्तर द्रष्टव्य है। अन्तर यह है कि स्वप्नावस्था में देखे गये पदार्थ का जाग्रत् अवस्था में बाध हो जाता है। जो भिक्षु स्वप्नावस्था में राजा हो जाता है वह निद्रा भंग होने पर पुनः भिक्षु मात्र रहता है। इस दशा में भिक्षु के नृपत्त्व का बाध हो जाता है। परन्तु जाग्रत् अवस्था में दृष्ट स्तम्भादि

---

1. मा० का० २–३, 2. मा० का० २–४।

3. स्वप्नजागरितस्थाने ह्येकमाहुर्मनीषिणः।
भेदानां हि समत्वेन प्रसिद्धेनैव हेतुना॥ मा० का० २–५।

4. तस्मान्न जायते चित्तं चित्तं दृश्यं न जायते।
तस्य पश्यन्ति ये जातिं खे वै पश्यन्ति ते पदम्॥ मा० का० ४–२८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वस्तुओं का किसी अवस्था में भी बाध नहीं होता।[1] इस प्रकार स्वप्न और जाग्रत् का भेद स्पष्ट ही है। स्वप्न-दृष्ट पदार्थ स्मृति के फल होते हैं किन्तु जाग्रत् अवस्था के पदार्थ स्मृत मात्र न होकर वास्तविक रूप से उपलब्ध होते हैं।

आचार्य गौड़पाद ने जगन्मिथ्यात्व के सिद्ध करने के लिये स्वप्न, माया और गन्धर्व नगर के दृष्टान्त दिये हैं।[2] परन्तु जैसा कि अभी कहा गया है व्यावहारिक रूप से सत् विश्व के सम्बन्ध में स्वप्नादि के दृष्टान्त उचित नहीं प्रतीत होते। इसीलिये शंकराचार्य की 'माया' गौड़पादाचार्य की स्वप्न-माया से भिन्न ही है। आचार्य गौड़पाद के मतानुसार जगत् की सत्ता स्वप्न सदृश होने के कारण काल्पनिक है परन्तु शांकर-दर्शन में जाग्रत् अवस्थावर्ती विषयों की वाह्य सत्ता अपेक्षित है।[3]

दासगुप्ता प्रभृति शांकर–दर्शन के आलोचकों ने शंकराचार्य के उक्त मत की आलोचना की है। आचार्य के स्वप्न-जाग्रत-वैधर्म्य सम्बन्धी मत पर आक्षेप करते हुये दासगुप्ता का कथन है कि शंकराचार्य के सिद्धान्तों में विरोध पाया जाता है। विरोध यह है कि एक ओर तो अपने माण्डूक्यकारिका-भाष्य में आचार्य शंकर जाग्रत् अवस्था के विषयों को स्वप्नगत मिथ्या पदार्थों के समान ही मिथ्या सिद्ध करते हैं, दूसरी ओर ब्रह्मसूत्रभाष्य (२–२–२९) में स्वप्न और जाग्रत् अवस्थाओं में वैधर्म्य स्थापित करते हैं। इस विरोध के आधार पर भारतीय-दर्शन के लेखक दासगुप्ता की सूझ है कि ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखते समय शंकराचार्य की विचारधारा परिवर्तित हो गई थी।[4] सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर दासगुप्ता का कथन एक पक्षपातपूर्ण विचारधारा के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्रतीत होता। उनका यह कथन युक्त ही है कि आचार्य शंकर स्वप्न-सादृश्य के आधार पर जगन्मिथ्यात्व को सिद्ध करते हैं। माण्डूक्यकारिका के भाष्य में ही नहीं अपने दक्षिणामूर्ति[5] स्तोत्र में भी शंकराचार्य ने स्वप्न के दृष्टान्त के द्वारा जगन्मिथ्यात्व को सिद्ध किया है।

---

१. न स्वप्नादि प्रत्ययवज्जाग्रत्प्रत्यया भवितुमर्हन्ति कस्मात्। वैधर्म्यात्। वैधर्म्यं हि भवति स्वप्न जागरितयोः। ...... न चैवं जागरितोपलब्धं वस्तु स्तम्भादिकं कस्यांचिदप्यवस्थायां वाध्यते ॥
—ब्र० सू० शा० भा० २–२–२९

२ स्वप्नमाये यथा दृष्टे गन्धर्वनगरं यथा।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः ॥ मा० का० २–३१

३. ब्र० सू० शा० भा० २–२–२८।

4. Dasgupta, Indian Philosophy, Vol. II, PP. 27, 28.

५. दक्षिणामूर्तिस्तोत्र, प्रथम श्लोक Adyar, Madras.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परन्तु शंकराचार्य के स्वप्न-दृष्टान्त से स्वप्न और जाग्रत् अवस्थाओं के भेद को नहीं मिटाया जा सकता। शंकराचार्य ने सर्वांश रूप से स्वप्न-दृष्टान्त को न मानकर केवल जाग्रत्-जगत् के दृश्यत्वमात्र को मिथ्या सिद्ध करने के लिये ही स्वप्न और जाग्रत् के सादृश्य की कल्पना को स्वीकार किया है। शंकराचार्य का कथन है कि जिस प्रकार स्वप्नगत दृश्य पदार्थ स्वप्न के उपरान्त मिथ्या सिद्ध होते हैं उसी प्रकार जाग्रत् अवस्था के विषय भी परमार्थ अवस्था में मिथ्या सिद्ध होते हैं। अपने इस मत को आचार्य शंकर ने बड़ी युक्ति के साथ प्रस्थापित किया है। माण्डूक्य-कारिका के भाष्य में शंकराचार्य लिखते हैं—

(१) जाग्रत् अवस्था में देखे गये विषय मिथ्या हैं। (प्रतिज्ञा)
(२) दृश्यत्व के कारण। (हेतु)
(३) जिस प्रकार स्वप्न-दृश्य विषय मिथ्या हैं उसी प्रकार जाग्रत् अवस्था के दृश्य-विषय भी मिथ्या हैं। (हेतूपनय)
(४) इसलिये जाग्रत् अवस्था में देखी गयी वस्तुयें भी मिथ्या हैं। (निगमन)[1]

इस प्रकार न्याय की तर्कपरक शैली के द्वारा भाष्यकार शंकर ने स्वप्न और जाग्रत् के दृश्यत्व के मिथ्यात्व के अंश में ही साम्यता मानी है। इससे दोनों अवस्थाओं की पूर्ण साम्यता नहीं प्रकट होती। भाष्यकार शंकर ने स्वप्न दृश्य विषयों के चित्तगत एवं काल्पनिक होने के कारण स्वप्नावस्था एवं जाग्रत्-अवस्था के विषयों में भेद स्थापित किया है।[2] इस विचार-दृष्टि से शंकराचार्य के माण्डूक्य-कारिकाभाष्य और ब्रह्मसूत्रभाष्य के सिद्धान्तों में परस्पर विरोध नहीं पाया जाता, जैसा कि आलोचक दासगुप्ता का कथन है।

इस प्रकार गौड़पादाचार्य की तरह शंकराचार्य ने स्वप्न एवं जाग्रत् अवस्था के विषयों में समानता न मानकर भेद स्थापित किया है। यही कारण है कि दोनों दार्शनिकों के माया सम्बन्धी दृष्टिकोण में भी भेद पाया जाता है। गौड़पादाचार्य का माया सम्बन्धी दृष्टिकोण स्वाप्निक है। इसके विपरीत शंकराचार्य के मायिक विषयों की वाह्य सत्ता भी वर्तमान है। गौड़पाद का मायावाद बौद्धों के विज्ञानवाद एवं योगवासिष्ठ के कल्पनावाद के अधिक निकट प्रतीत होता है। परन्तु शांकर-

१. जाग्रद्दृश्यानां भावानां वैतथ्यमिति प्रतिज्ञा। दृश्यत्वादिति हेतुः। स्वप्नदृश्य भाववदिति दृष्टान्तः। यथा तत्र स्वप्ने दृश्यानां भावानां वैतथ्यं तथा जागरितेपि दृश्यत्वमविशिष्टमिति हेतूपनयः। तस्माज्जागरितेपि वैतथ्यं स्मृतमिति निगमनम्।
मा० का० शा० भा० २–४।

२. मा० का० शा० भा० २–४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मायावाद इन दोनों से भिन्न है। गौड़पादाचार्य और शंकराचार्य के सिद्धान्तों में उपर्युक्त विषमता होने के कारण डा० महादेवन आदि आलोचकों का यह कथन युक्ति-युक्त नहीं है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से गौड़पाद और शंकर के दार्शनिक सिद्धांतों में भेद नहीं है।[1]

योगवासिष्ठ का कल्पनावाद और शंकराचार्य का मायावाद

शांकर-मायावाद की पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में योगवासिष्ठ के कतिपय माया सम्बन्धी स्थलों का वर्णन किया जा चुका है। परन्तु उस स्थल पर योगवासिष्ठकार के प्रमुख सिद्धान्त के अध्ययन का प्रयास न होकर शंकराचार्य के मायावाद की पृष्ठ-भूमि के अन्वेषण की चेष्टा ही रही है। यहां योगवासिष्ठ के प्रमुख सिद्धान्त का शंकर के मायावाद के साथ तुलनात्मक विवेचन किया जायगा।

योगवासिष्ठ का प्रमुख सिद्धान्त 'कल्पनावाद' है। कल्पनावाद के अनुसार जीव तथा संसार कल्पनामात्र है। इस कल्पना का मूल मन ही है।[2] योगवासिष्ठ-कार का कथन है कि मन—रूप (विषय), आलोक (संवेदन), मनस्कार (मन का विचार), तत्ता (पदार्थ का तात्त्विक रूप), काल और क्रिया वाले जगत् का उसी प्रकार निर्माण एवं नाश करता है जिस प्रकार कि कुम्भकार घट का।[3] जगत् का नानात्व उसी प्रकार चित्त का विचित्र विभवमात्र है जिस प्रकार कि जल के धारा, कण, लहर और फेन आदि विचित्र रूप होते हैं।[4] आचार्य शंकर का 'विवर्त' भी ऐसा ही है। कल्पनावादी योगवासिष्ठाकार देशकाल के परिमाण और पदार्थों के वैचित्र्य की स्वतन्त्र सत्ता नहीं स्वीकार करते। उनके मत में जगत् के पदार्थों का उदय क्षणिक कल्पना से होता है। जिस प्रकार क्षण और कल्प केवल ज्ञानमात्र हैं उसी प्रकार जगत् और सृष्टि का अनुभव भी ज्ञानमात्र है।[5] कल्पनावाद के अनुसार

---

1 Doctrinally, there is no difference whatsoever between what is tought by Gaudpada in the Karika and what is ex–pounded by Sh ınkara in his extensive works.

T. N. P. Mahadevan, Gaudpada, P. 231–232.

२. योगवासिष्ठ ४–११–२३।

३. रूपालोक मनस्कार–तत्ता–कालक्रियात्मकम्।
कुम्भकारोघटमिव चेतो हन्ति करोति च॥ योगवासिष्ठ ५–४८–५२।

४. योगवासिष्ठ ३–११०–४८। ५. वही ३–२०–२६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समस्त भौतिक जगत् भ्रममात्र है। कल्पनावादी के मत में भौतिक शब्द और अर्थ उसी प्रकार असत् हैं जिस प्रकार शशशृङ्ग असत् है।[1]

उक्त युक्तियों के आधार पर वाह्य जगत् को शशशृङ्गवत् मिथ्या एवं चित्तगत कल्पनामात्र सिद्ध करने वाला योगवासिष्ठ का कल्पनावाद बौद्धों के विज्ञानवाद के ही समान है। विज्ञानवादी योगाचार बौद्ध भी वाह्य जगत् को चित्तगत विज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं स्वीकार करता। साथ ही कल्पनावादी योगवासिष्ठकार स्वर्ग, पृथिवी, वायु, आकाश, पर्वत, सरिताओं और दिशाओं की सत्ता को स्वप्नवत् कहने के कारण गौड़पाद के स्वप्न सिद्धान्त[2] के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। कल्पनावाद के अनुसार देश और काल भी कल्पित ही सिद्ध किये गये हैं।[3] इस प्रकार कल्पनावाद का विज्ञानवाद और गौड़पादाचार्य के स्वप्नवाद से अधिक साम्य होने के कारण शांकर–मायावाद से विरोध होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि मायावाद की दिशा बौद्ध-विज्ञानवाद और गौड़पादाचार्य के स्वप्नवाद से भिन्न है। इधर कल्पनावाद और पश्चिमी विचारधारा 'सब्जेक्टिव आइडियलिज्म' में भी पर्याप्त साम्य है।[4]

कल्पनावाद और शांकर–मायावाद दोनों ही सिद्धान्त जगत् के मिथ्यात्व प्रतिपादन के द्वारा एक परमार्थ सत्य की स्थापना करते हैं। परन्तु दोनों सिद्धान्तों में भेद है। कल्पनावाद के अनुसार जगत् कल्पनामात्र है। परन्तु शांकर-मायावाद के अनुसार जगत् 'माया' है। मायावादी के अनुसार यह माया कल्पना अथवा स्वप्न न होकर व्यावहारिक रूप से 'सत्' है। इसीलिये शंकराचार्य ने व्यावहारिक सत्ता की स्थापना की है। कल्पनावाद और मायावाद का यह अन्तर भी द्रष्टव्य है कि मायावाद के अनुसार कल्पनावाद की तरह स्वप्न और जाग्रत् अवस्थाओं में साधर्म्य नहीं स्वीकार किया गया है। मायावादी शंकराचार्य ने स्वप्न और जाग्रत् अवस्थाओं में वैधर्म्य की स्थापना की है।[5] इस 'वैधर्म्य' का विवेचन गौड़पादाचार्य और शंकराचार्य के माया सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन के अवसर पर किया जा चुका है। कल्पनावादी की तरह शंकराचार्य वाह्य जगत् को चित्तगत कल्पना अथवा स्वप्नमात्र न मानकर उसकी वाह्य सत्ता को भी स्वीकार करते

1. न शब्देन न चार्थेन सत्यात्मा शशशृङ्गवत्। योगवासिष्ठ ३–५७–१६।
2. माण्डूक्यकारिका २–५। ३. डा० आत्रेय, योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त, पृ० १९५।
3. Dr. B.L. Atreya, Yogvashishtha and Modern Thought, P. 41.
4. ब्र० सू० शा० भा० २–२–२९।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं।[१] इस प्रकार योगवासिष्ठ के कल्पनावाद और शंकराचार्य के मायावाद में पर्याप्त भेद सिद्ध होता है।

तान्त्रिक-मायावाद और शांकर-मायावाद

तन्त्र का अपर पर्याय आगम है। जिस साहित्य में देवता के स्वरूप, गुण, कर्म आदि के चिन्तन, तद् विषयक मन्त्रों के उद्धरणों के वर्णन, मन्त्रों की यन्त्र रूप में योजना, और देवता के ध्यान सहित उपासना से पांचों अंगों—(पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र) की व्यवस्था मिलती है उसे 'तन्त्र' कहते हैं। वाचस्पति मिश्र ने 'आगम' की परिभाषा करते हुये लिखा है कि जिस शास्त्र के द्वारा भोग और मोक्ष के उपाय बुद्धिगत होते हैं उसे 'आगम' कहते हैं।[२] तन्त्र—साहित्य अति विशाल है। षड्दर्शनों की ही तरह 'तन्त्र' की दर्शन-पद्धति भी पृथक है। परन्तु 'तन्त्र' के आराधना पक्ष की गोपनीयता के कारण, विद्वानों को इस विषय के विवेचन का बहुत कम अवसर मिला है। तन्त्र का, आराधना पक्ष के अतिरिक्त एक दार्शनिक पक्ष भी है। तन्त्र-दर्शन का 'मायावाद' दार्शनिक सिद्धान्त ही है। इस स्थल पर तान्त्रिक मायावाद और शंकराचार्य के मायावाद का तुलनात्मक अध्ययन किया जायगा। दोनों सिद्धान्तों का तुलनात्मक विवेचन करने से पूर्व तान्त्रिक मायावाद के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त दिशा देना उचित होगा।

तान्त्रिक मायावाद—तन्त्र-दर्शन में 'चिद्रूपिणी शक्ति महामाया' ही अद्वैत सत्य एवं ब्रह्मस्वरूपिणी है। सर्वोच्च होने के कारण ही इसकी महामाया संज्ञा है।[3] परन्तु 'शक्ति' शक्तिमान् में रहती है। शिव शक्तिमान् है। शिव का शिवत्त्व 'शक्ति' पर आधारित है। 'शक्ति' के बिना शिव, शव अर्थात् जड़मात्र है। शक्तिरहित शिव में विश्वस्पन्द की क्षमता नहीं है।[४] इस प्रकार 'शक्ति' और 'शक्तिमान' में 'अविनाभाव' सम्बन्ध है। यही शक्त्यद्वैतवाद है। इस मत में जगत् शांकर-अद्वैतवाद की तरह मिथ्या न होकर शक्तिरूप ही है।[५]

तन्त्र-दर्शन में शक्ति के भी दो रूप हैं— एक चित्-शक्ति और दूसरा माया-शक्ति। अव्यक्त शक्ति चित् एवं व्यक्त शक्ति माया है।[६] जगत् माया रूप है।

---

१. तस्माद् यथानुभवं तत्त्वमभ्युपगच्छद्भिर्बहिरेवावभासत इति युक्तमभ्युपगन्तुम्।
ब्र० सू० शा० भा० २-२-२८।

२. आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्तियस्माद् अभ्युदयनिःश्रेयसोपायाः स आगमः।
तत्त्ववैशारदी १-७

३. लक्ष्मीतन्त्र ४-४६। ४. सौन्दर्यलहरी १। ५. तन्त्रालोक ५-४०।

4. The Garland of letters, Page 136, Ganesh & Co, Madras.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समस्त जगत् महाशक्ति की इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति का समन्वय है। 'शक्ति' विद्या रूप भी है और 'अविद्या' रूप भी।[१] अपने विद्या रूप में शक्ति आत्मा के पशु भाव में प्रकाशमान होती है। इस के विपरीत तिरोधानकारी शक्ति के द्वारा महामाया अपने वास्तविक स्वरूप पर आवरण डाल देती है।[२] चित् शक्ति का यह तिरोधान का रूप ही अविद्या का रूप है।[३] यह माया ही जीव के अखिल बन्धन का मूल है। मायापाश में बद्ध होने के कारण ही जीव तत्त्वज्ञान की उपलब्धि नहीं कर पाता। तन्त्र के अनुसार 'महाकामेशमहिषी' माया ही जीवों को सत् पथ से हटाकर असत् पथ की ओर ले जाती है।[४] परन्तु जो भगवती महामाया के स्वरूप को जान लेते हैं वे मोक्ष–लाभ करते हैं। इसीलिये महानिर्वाणतन्त्र में भगवती दुर्गा को 'जन्मसंसारमोचनी' कहा है।[५] संक्षेप में तान्त्रिक मायावाद की यही रूपरेखा है।

तान्त्रिक–मायावाद और शांकर–मायावाद (तुलना)

तान्त्रिक माया के स्वरूप के सम्बन्ध में निर्दिष्ट संक्षिप्त रूपरेखा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तन्त्र-माया और शांकर-वेदान्त सम्मत माया में परस्पर साम्य होते हुए भी अन्तर की रेखा स्पष्ट प्रतीत होती है। वैसे तो शंकराचार्य की 'परमेशशक्तिः'—माया की ही तरह महानिर्वाणतन्त्र में भी पराशक्ति को परमात्म ब्रह्म की शक्ति कहा है। इसके अतिरिक्त वेदान्ती मायावादी की ही तरह तान्त्रिक मायावादी के मत में भी जगत् मायामात्र है। परन्तु जिस मायिक जगत् को शंकराचार्य ने मिथ्या कहा है उसे तन्त्रालोककार ने परमात्मा की शक्ति का रूप दिया है।[६] इसलिये यह स्पष्ट ही है कि तान्त्रिक-माया शंकराचार्य की 'ऐन्द्रजालिक-माया' की तरह मिथ्या न होकर सत्यरूपा है। शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित माया का अनिर्वचनीय रूप भी तन्त्र-माया के विपरीत है। मायावादी शंकराचार्य के मत में जो माया सदसद्विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय है वह तन्त्र-दर्शन में महामाया है। चित्रूपिणी महामाया ही अपनी माया के द्वारा अज्ञानी को जड़ प्रतीत होती है।[७] तन्त्र-दर्शन के अनुरूप माया का अविर्वचनीय स्वरूप मुक्ति में

---

१. ललितासहस्रनाम, १३८ श्लोक। २. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा ३–२–७।
३. तिरोभावाभिधाना मे साविद्याशक्तिरुच्यते। लक्ष्मीतन्त्र १२–४०।
४. तन्त्रालोक ८–३३५, ३३६। ५. महानिर्वाणतन्त्र ११–५। ६. तन्त्रालोक ५–४०।
7. To the Shakta Maya is the Mother–Power—Mahamaya—who in Herself (Svarupa) is conciousness and Who by her Maya appears to be unconcious.
Mahamaya, Foot–Note, P. 100, Ganesh & Co., Madras, 1954.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाधक है।[1] इस प्रकार दोनों सिद्धान्तों में यहां तक विरोध है कि जो एक का प्रतिपाद्य है वही दूसरे का निषिध्य है। शंकराचार्य ने मायावाद के सिद्धान्त की स्थापना करते हुये जिन व्यावहारिक एवं पारमार्थिक सत्ताओं की कल्पना की है वह तान्त्रिक मायावादी के लिये कदापि अभिमत नहीं है। सर बुडरफ़ एवं पी० एन० मुख्योपाध्याय मायावादी की अबाधित (पारमार्थिक) एवं बाधित (व्यावहारिक), इस सत्यद्वय कल्पना को द्वैतवाद की ही पोषक मानते हैं।[2] इस प्रकार तन्त्र-दर्शन के मायावाद में शंकराचार्य के अधिष्ठानवाद एवं अध्यासवाद जैसे सिद्धान्तों को स्थान नहीं है। तन्त्र-दर्शन के अनुसार जगत् को अध्यस्त कहना परम सत्य की स्थापना में बाधक है। परन्तु चिन्त्य तो यह है कि शक्त्यद्वैतवादमत में एक ही शक्ति के चित् शक्ति एवं जड़ शक्ति रूप दो विपरीत भेद किस प्रकार किये गये ?[3] एक ही सर्वोच्च शक्ति के सम्बन्ध में की गई भेदद्वय की यह कल्पना शक्तद्वैतवाद की पूर्णतया विरोधी ही कही जायेगी। साथ ही 'पराशक्ति' को एक ओर अपरिवर्तनशील और दूसरी ओर जगत्रूप में परिवर्तनशील कहना[4] भी असंगत ही है क्योंकि एक ही शक्ति के द्विविध रूप द्वैत सत्ता के ही द्योतक हैं। शांकर-दर्शन में प्राप्त अनिर्वचनीय माया के स्वीकार कर लेने पर उक्त शंकाओं को अवसर नहीं मिलता। इस प्रकार तान्त्रिक-मायावाद और शांकर-मायावाद दो भिन्न सिद्धान्त हैं।

---

1. Mahamaya, P. 24. 2. Mahamaya, P. 124.
३. चिच्छक्तिश्चेतनारूपा जडशक्तिर्जडात्मिका । ललितासहस्रनाम १४१ ।
4. The World as Power (Reality), P. 81.
Ganesh & Co., Madras.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शङ्कराचार्य

[उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन]

अष्टम-अध्याय

उपसंहार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

८

०००

शंकराचार्य के मायावाद पर विहँगम दृष्टि

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य और उनका मायावाद का सिद्धान्त इतने ही प्रसिद्ध हैं जितना कि वेदान्त-दर्शन। मायावाद के प्रस्थापक आचार्य शंकर की प्रख्याति इस सीमा तक पहुंच गई है कि साधारणतया वेदान्त-दर्शन के नाम से शांकर-वेदान्त पर ही दृष्टिपात होता है। आचार्य के इस अद्वितीय दार्शनिक महत्त्व का कारण उनका मायावाद का सिद्धान्त है। महान् दार्शनिक शंकराचार्य ने अपने मायावाद के सिद्धान्त की स्थापना के लिये किसी ग्रन्थ विशेष की रचना नहीं की थी, प्रत्युत प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र) पर भाष्य करते समय ही अपनी माया सम्बन्धी अनुभूति को लिपिबद्ध किया था। भाष्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त आचार्य की अन्य स्वतन्त्र रचनाओं में भी माया सम्बन्धी अभिव्यक्तियां मिलती हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने शंकराचार्य की उक्त दार्शनिक देन के आधार पर मायावाद का एक सरल अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। मायावाद की वैदिक, दार्शनिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना, माया के इतिहास की गवेषणा, शांकर मायावाद की स्थापना, मायावाद की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होने वाली दर्शन-पद्धतियों का आलोचनात्मक वर्णन एवं शांकर-मायावाद का इतर—गौड़पादाचार्य के मायावाद, योगवासिष्ठ के कल्पनावाद, बौद्धों के शून्यवाद और तान्त्रिक-मायावाद आदि सिद्धान्तों के साथ तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख विषय रहे हैं। मायावाद की आद्योपान्त समालोचना की जाने पर भी इस स्थल पर लघ्वर्थं मायावाद के सम्बन्ध में एक विहंगम दृष्टि प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा।

शंकराचार्य ने जिस मायावाद के सिद्धान्त की स्थापना की है वह शंकराचार्य से पूर्व वर्तमान था अथवा नहीं, इस विषय पर आलोचकों ने भिन्न-भिन्न दृष्टि से विचार किया है। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत लेखक के चिन्तन का फल तो यह है कि शंकराचार्य के पूर्ववर्ती वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक और दार्शनिक साहित्य में शांकर-मायावाद की एक पृष्ठभूमि तो अवश्य मिलती है परन्तु उसमें मायावाद के सैद्धान्तिक रूप का निःसन्देह अभाव है। जैसा कि तृतीय अध्याय के अन्तर्गत 'माया' का इतिहास प्रस्तुत करते समय देखा जा चुका है,—वैदिककाल से लेकर शंकराचार्य के समय तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहस्रों बार 'माया' की चर्चा मिलती हैं। परन्तु इस काल में प्रयुक्त माया शब्द के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। शंकर पूर्ववर्ती साहित्य की माया सम्बन्धी अभिव्यक्तियों में शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित माया की अभिव्यक्ति का रूप नहीं मिलता। अतः यह लेखक प्रभुदत्त शास्त्री प्रभृति विद्वानों के इस कथन से असहमत है कि शांकर-मायावाद का मूल रूप ऋग्वेद-संहिता में प्राप्त है। मेरे विचार से तो डा० थीबो का यह कथन भी उचित नहीं प्रतीत होता कि शांकर-मायावाद उपनिषद्वर्ती मायावाद का विकास-मात्र है। इन मतों का आलोचनात्मक विवेचन तृतीय अध्याय के अन्तर्गत किया जा चुका है। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त पुराण-साहित्य एवं तन्त्र-साहित्य में भी माया के सम्बन्ध में अनेक वर्णन मिलते हैं। डा० राधाकृष्णन् ने पौराणिक माया अथवा प्रकृति को ईश्वर की प्रिय संगिनी के रूप में सृष्टि-रचना का प्रमुख कारण माना है।[1] परन्तु शांकर-मायावाद के अनुसार प्रकृति अथवा माया ईश्वर से भिन्न न होकर ईश्वर की शक्ति ही है।[2] तन्त्र-दर्शन की 'महामाया' का प्रसाद मायावादी शंकराचार्य को निश्चय ही प्राप्त हुआ है। आचार्य की 'सौन्दर्य-लहरी' तन्त्रशास्त्र का एक अमूल्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में शिव-शक्तिवाद का साधनात्मक प्रतिपादन किया गया है। परन्तु यह विचारणीय है कि शंकराचार्य की माया वही नहीं है जो तांत्रिकों की मायाशक्ति है। शंकराचार्य की 'मिथ्याभूता-सनातनी'—माया तांत्रिकों की चित्-स्वरूपिणी मायाशक्ति से भिन्न है।[3] इसके अतिरिक्त बौद्ध-दर्शन में भी माया की एक छाया के दर्शन होते हैं। प्राचीन पाली-बौद्ध लेखों में 'माया' प्रवंचना के अर्थ में प्रयुक्त हुई है। बुद्धघोष ने माया का प्रयोग ऐन्द्रजालिक शक्ति के अर्थ में किया है।[4] लंकावतार सूत्र में माया का प्रयोग स्वाप्निक माया के लिये ही विशेष रूप से किया गया है।[5] बौद्ध-दर्शन में माया के उक्त विविध रूप होते हुये भी शांकर-दर्शन की माया सम्बन्धी शक्तिरूपता एवं व्यावहारिकता का अभाव है। योग-वासिष्ठ जैसे विशालकाय ग्रन्थ में भी माया सम्बन्धी सैकड़ों वर्णन मिलते हैं। योग-वासिष्ठगत कतिपय माया सम्बन्धी वर्णनों का विवेचन द्वितीय अध्याय में किया जा

1. Maya or Prakrti becomes in the Puranas the loving consort of Isvara and the principal instrument in the act of creation. —Radha Krishnan, Indian Philosophy, Vol. II, Page 573.
२. ईश्वरस्यमायाशक्तिः प्रकृतिः। ब्र० सू० शा० भा० २–१–१४।
३. देखिये—Woodroffe, Garland of letters, PP. 137, 138.
४ देखिये—Dasgupta, Indian Philosophy, Vol. I, P. 470.
५. लंकावतार सूत्र।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चुका है। यहां इतना ही अपेक्षित है कि योगवासिष्ठ का प्रमुख सिद्धान्त कल्पनावाद है[1] और शंकराचार्य का सिद्धान्त मायावाद है। योगवासिष्ठ में जिस जगत् को कल्पना कहा गया है वह जगत् शांकर-दर्शन में मायारूप होने के कारण व्यावहारिक सत्ता के अनुरूप 'सत्' है। शंकराचार्य के पूर्ववर्ती आचार्यों में आचार्य गौड़पाद ऐसे ही प्रमुख हैं, जैसे कि वेदान्त-दर्शन में शंकराचार्य। शंकर के परमगुरु गौड़पादाचार्य की इस प्रमुखता का मूल कारण उनकी कृति 'माण्डूक्यकारिका' है। 'माण्डूक्यकारिका' की २१५ कारिकाओं में अनेक स्थलों पर माया का वर्णन किया गया है। शंकराचार्य को अपने परमगुरु की इन कारिकाओं से मायावाद के स्थापन के लिये एक सबल आधार मिला है, यह निःसंकोच स्वीकार्य है। यह बात दूसरी है कि गौड़पादाचार्य की ही तरह स्वप्न एवं जाग्रत् अवस्थाओं का साधर्म्य आचार्य शंकर को मान्य नहीं है। आचार्य ने स्वप्न एवं जाग्रत् अवस्थाओं में वैधर्म्य स्थापित करते हुये गौड़पाद के स्वप्न-जाग्रत् साधर्म्य का पूर्णतया खण्डन किया है।[2] इसी दिशा में दोनों दार्शनिकों के सिद्धान्तों में यह भेद विचारणीय है कि जो जाग्रत्-जगत् आचार्य गौड़पाद के मत में स्वप्न-जाग्रत् साधर्म्य के कारण स्वप्नवत् है मायावादी शंकराचार्य के मत में स्वप्न-जाग्रत् वैधर्म्य के कारण उसे व्यावहारिक रूप से सत् माना गया है।

इस संक्षिप्त दिशा से यह स्पष्ट है कि शंकराचार्य को मायावाद की स्थापना के लिये एक सबल पृष्ठभूमि मिली थी। परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से विचार करने पर शंकराचार्य के माया-सम्बन्धी-सिद्धान्त और शंकराचार्य के पूर्ववर्ती साहित्य की माया-सम्बन्धी विचारधारा में पर्याप्त अन्तर प्रतीत होता है। शंकराचार्य के मायावाद की संक्षिप्त रूपरेखा से यह विषय और भी स्पष्ट हो जायेगा। शंकराचार्य के मायावाद का संक्षिप्त रूप नीचे दिया जा रहा है।

शांकर-वेदान्त का प्रमुख सिद्धान्त 'केवलाद्वैतवाद' है। केवलाद्वैत मत में परमार्थ रूप से एकमात्र ब्रह्म की ही सत्यता स्वीकार की गई है। ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् की सत्ता मिथ्या है। प्रत्यक्ष रूप से सत्य व्यावहारिक जगत् को पूर्णतया असत् कहना किसी दर्शन के सिद्धान्त की दुर्बलता का प्रतीक है। इसीलिये शंकराचार्य ने जगत् की व्यावहारिक सिद्धि के लिये मायावाद के सिद्धान्त की स्थापना की है। शंकराचार्य ने माया को 'अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिः'[3] कहकर परमात्मा की शक्ति का रूप दिया है। इस माया-शक्ति के भी दो रूप हैं—एक आवरण शक्ति और

1. देखिए—डा० आत्रेय, योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त, पृ० १९३—१९७।
2. ब्र० सू० शा० भा० २-२-२९।
3. विवेक चूड़ामणि १०८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरा विक्षेप शक्ति। आवरण और विक्षेप शक्तियां ही अविद्या और माया के व्यावहारिक भेद की सूचक हैं। आवरण शक्तिरूपा अविद्या जीव पर ऐसा आवरण डालती है कि अज्ञानवश जीव आत्मबोध करने में असमर्थ रहता है। विक्षेप शक्ति द्वैत जगत् की सृष्टि करती है। इस प्रकार शांकर-दर्शन में जगत् मायामात्र है। परन्तु आचार्य की यह 'माया' शशशृंगवत् असत् न होकर व्यावहारिक दृष्टि से सत् है। इसीलिये मायिक जगत् की व्यावहारिक सत्ता शांकर-दर्शन की प्रमुख विशेषता है।

शांकर-मायावाद के सम्बन्ध में यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि जिस माया को आचार्य ने 'मिथ्याभूता सनातनी' कहा है उसका परमेश्वर से क्या सम्बन्ध है? आचार्य ने इस शंका के समाधान के लिये अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में ऐन्द्रजालिक के उपमान के द्वारा मायावाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। आचार्य का कथन है कि जिस प्रकार मायावी-ऐन्द्रजालिक स्वयं प्रसारित माया से स्पृष्ट नहीं होता उसी प्रकार परमात्मा भी संसार माया से स्पृष्ट नहीं होता।[1] ऐन्द्रजालिक के इन्द्रजाल की ही तरह यह मायिक सृष्टि भी परमार्थ में अवस्तु रूप ही है। परन्तु जिस प्रकार जादूगर के द्वारा दिखाये गये वृक्ष आदि पदार्थ द्रष्टा को सत्य प्रतीत होते हैं उसी प्रकार अविद्या के कारण अज्ञानी को जगत् सत्य प्रतीत होता है। वास्तव में माया रूप जगत् परमार्थ रूप से सत्य नहीं है। शांकर दर्शन में परमार्थ सत्य का अभाव शून्यता अथवा अभावरूपता नहीं है। परमार्थ सत्य के अतिरिक्त मायावादी शंकराचार्य ने व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्यों को भी मान्यता दी है। यद्यपि पारमार्थिक सत्य ब्रह्म ही है परन्तु मायिक जगत् की व्यावहारिक सत्ता भी अनुपेक्ष्य है। प्रत्यक्ष-रूप से प्रतीयमान जगत् के पदार्थ यदि परमार्थ दृष्टि से मिथ्या हैं तो व्यावहारिक दृष्टि से सत्य हैं। इसीलिये शांकर-दर्शन में माया को अभावमात्र न मानकर भावरूप माना गया है।

माया की भावरूपता के आधार पर शांकर-दर्शन पर द्वैतवाद का आक्षेप युक्तियुक्त न होगा। माया अथवा अविद्या दोनों अध्यात्म रूप हैं। मायिक जगत् अध्यास एवं ब्रह्म अधिष्ठान है। समस्त प्रपंच ब्रह्म में उसी प्रकार अध्यस्त हैं जिस प्रकार कि रज्जु में सर्प अध्यस्त है। जिस प्रकार अज्ञानावस्था में रज्जु की प्रतीति न होकर सर्प की ही प्रतीति होती है उसी प्रकार अध्यास के कारण ब्रह्मरूप अधिष्ठान में अध्यस्त मिथ्या प्रपंच भी सत्य प्रतीत होता है। परन्तु अविद्या निवृत्ति होने पर ज्ञानी के लिये अखिल प्रपंच का मिथ्यात्व सिद्ध हो जाता है। इसलिये

१. ब्र० सू० शा० भा० २-१-९।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया जायगा तो यही प्रतीत होगा कि माया अपने अध्यास रूप के द्वारा एक ओर अज्ञानी के लिये जगत् की सत्यता की सूचक है और दूसरी ओर ज्ञानी के ब्रह्मज्ञान का साधन। यह माया अनिर्वचनीय है। भ्रममूलक जगत् के सम्बन्ध में अनिर्वचनीय ख्याति के द्वारा आचार्य शंकर ने जो समाधान प्रस्तुत किया है वह जगत् की दार्शनिक व्याख्या के दृष्टिकोण से अनुपम है। अनिर्वचनीयवाद की दृष्टि से अविद्या के कारण भ्रमवश अनुभूत मायिक जगत् न सत् है न असत्। इसीलिये 'सत्' और 'असत्' से विलक्षण होने के कारण जगत् को अनिर्वचनीय कहा गया है। जगत् के मिथ्यात्व से भी अनिर्वचनीयता का ही आशय है।[1] शांकर-मायावाद के अनुसार जीव के बन्धन का मूल भी अविद्या एवं माया ही है। अविद्या के ही कारण जीव अपनी सत्ता को ब्रह्म से पृथक् मानकर सांसारिक सुख-दुःखों के बन्धन में फंस जाता है। अविद्या के वश में होकर ही जीव कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व का अभिमानी होता है। वास्तव में जीव और ब्रह्म में उसी प्रकार ऐक्य है जिस प्रकार विम्ब और प्रतिविम्ब में। अविद्योपाधि के नष्ट हो जाने पर जीव ब्रह्मीभूत हो जाता है। यही शंकराचार्य का 'जीवोब्रह्मैव नापरः' वाला सिद्धान्त है। इस प्रकार शंकराचार्य ने मायावाद के आधार पर ही अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है।

शंकराचार्य के मायावाद की विशेषताओं पर एक दृष्टिपात

सप्तम अध्याय के अन्तर्गत शांकर-मायावाद और अन्य माया सम्बन्धी सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय मायावाद और तान्त्रिक मायावाद आदि अन्य सिद्धान्तों की समताओं और विषमताओं का उल्लेख किया जा चुका है। प्रत्येक सिद्धान्त की कुछ ऐसी विशेषतायें होती हैं जो उस सिद्धान्त के अभिज्ञान में साक्षात् सहयोग देती हैं। शंकराचार्य के मायावाद की भी कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो स्वतन्त्र रूप से शांकर-मायावाद की परिचायक हैं। इस स्थल पर शंकराचार्य के मायावाद की विशेषताओं पर दृष्टिपात किया जायगा।

शांकर-मायावाद के अनुसार परमेश्वर की शक्ति माया अथवा अविद्या जगत् की बीजभूता शक्ति है। मायावी ईश्वर अपनी मायाशक्ति के द्वारा ही जगत् की सृष्टि करता है। इस प्रकार शांकर-मायावाद के अनुसार माया-विशिष्ट ब्रह्म की ईश्वर संज्ञा है। समस्त जगत् माया का ही परिणाम है। यह माया एवं मायिक सृष्टि अनादि है। शांकर-मायावाद के अनुसार माया अनादि होते हुए भी ज्ञान-

१. मिथ्याशब्दोऽनिर्वचनीयतावचन इति पंचपादिकावचनात्। अद्वैतसिद्धि पृ० ४८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निवर्त्य है। जीव की अविद्या-निवृत्ति होने पर जब प्रवृत्त फल वाले कर्मों का भोग समाप्त हो जाता है तो जीव माया के बन्धन से सदा के लिये मुक्त होकर विदेह मुक्ति को प्राप्त होता है। अतः यह माया अथवा अविद्या अनादि होते हुए भी सान्त है। इस प्रकार 'मिथ्यात्व' शंकराचार्य की 'माया' की 'अद्‌भुत विशेषता है। परमार्थ में मायावादी की माया मिथ्या है, परन्तु व्यवहार में वह सत् ही है। अतः 'माया' की एक विशेषता यदि 'मिथ्यात्व' है तो दूसरी विशेषता 'व्यावहारिकता' है। साथ ही साथ शंकराचार्य प्रतिपादित माया भावरूप है। इसके अतिरिक्त शंकराचार्य की 'माया' अनिर्वचनीय है। शंकराचार्य ने माया की अनिर्वचनीयता का प्रतिपादन अध्यास के आधार पर किया है।[1] सद् ब्रह्म में परमार्थ दृष्टि से असत् माया अध्यस्त होती है। इसीलिये शांकर-मायावाद के अनुसार समस्त प्रपंच को अध्यस्त तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।

शंकराचार्य के मायावाद की उक्त विशेषतायें अन्य किसी माया सम्बन्धी सिद्धान्त में पूर्णरूप से उपलब्ध नहीं होतीं। इसलिये शांकर-मायावाद पूर्णरूप से एक स्वतन्त्र सिद्धान्त है।

शंकराचार्य के सम्बन्ध में प्रसिद्ध—'प्रच्छन्न बुद्धत्व' वाली धारणा का निराकरण

भारतीय दर्शन के अनेक आलोचक विद्वानों ने शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' और उनके मायावाद को विज्ञानवाद एवं शून्यवाद का ही रूप मानकर 'असत् शास्त्र' कहा है। शंकराचार्य और उनके मायावाद पर किये गये आक्षेपों के सम्बन्ध में श्रीभाष्यकार रामानुज, भेदाभेदवादी भास्कराचार्य, डा० एस० एन० दास गुप्ता, डा० बी० एम० बरुआ और महापंडित राहुल-सांकृत्यायन की उक्तियां विचारणीय हैं। इसके अतिरिक्त पद्मपुराण और योगवासिष्ठ के कुछ स्थल भी उपर्युक्त दृष्टि से विचार योग्य हैं।

पद्मपुराण के अन्तर्गत मायावाद को 'प्रच्छन्न बौद्ध' घोषित करते हुए 'असत्-शास्त्र' कहा गया है।[2] योगवासिष्ठकार ने शून्यवादी के शून्य, ब्रह्मवेत्ता के ब्रह्म और विज्ञानवादी की विज्ञानमात्रता को एक ही कोटि में रखने का प्रयास किया है।[3]

---

१. ब्र० सू० शा० भा० उपोद्घात।

२. मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च।
मयैवकथितं, देवि, कलौ ब्राह्मणरूपिणा॥ पद्मपुराण, १-१४।

३. यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां वरम्।
विज्ञानममात्रं विज्ञानविदां यदमलं पदम्॥ योगवासिष्ठ, ५-८७-१८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीभाष्यकार रामानुजाचार्य ने शंकराचार्य के ज्ञानवाद पर कटाक्ष करते हुए उनके वेदवाद को कपट एवं उन्हें 'प्रच्छन्न बौद्ध" माना है।[१] भेदाभेदी भास्कराचार्य महायानिक बौद्ध-दर्शन के अन्तर्गत मायावाद के दर्शन किये हैं।[२]

भारतीय दर्शन के अन्य आलोचकों ने भी शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहा है। भारतीय दर्शन के आलोचक डा० एस० एन० दासगुप्ता का कथन है कि शंकराचार्य का ब्रह्म नागार्जुन के शून्यवाद के अधिक समीप है।[3] इसके अतिरिक्त शंकराचार्य के सम्बन्ध में प्रसिद्ध 'प्रच्छन्न बुद्धत्व' वाली धारणा से प्रभावित होकर डा० दासगुप्ता ने शांकर-दर्शन को बौद्ध विज्ञानवाद एवं शून्यवाद का मिश्रण मात्र कहा है।[४] डा० बी० एम० बरुआ तो शांकर-दर्शन में बौद्ध-दर्शन का ऐसा स्वप्न देखते हैं कि उन्हें बौद्ध-दर्शन, विशेषकर माध्यमिक-दर्शन के अभाव में शांकर-दर्शन की सत्ता असम्भव ही प्रतीत होती है।[५] बौद्ध-दर्शन के गण्य-विद्वान् राहुल सांकृत्यायन ने तो बौद्धों के शून्यवाद और शंकराचार्य के मायावाद में नाम भर का अन्तर माना है। राहुल जी लिखते हैं :—

"शंकर के दर्शन को सरसरी नजर से देखने पर मालूम होगा, कि वह ब्रह्मवाद को मानता है, और उपनिषद् के अध्यात्मज्ञान को सब से अधिक प्रधानता देता है; किन्तु जब उसके भीतर घुसते हैं, तो वह नागार्जुन के शून्यवाद का मायावाद के नाम से नामान्तर मात्र है।[६]

शंकराचार्य के सम्बन्ध में प्रसिद्ध—'प्रच्छन्न बुद्धत्व' वाली विद्वानों की उपर्युक्त धारणा का मूल, बौद्ध विज्ञानवाद, शून्यवाद और शंकराचार्य के मायावाद के सिद्धान्त का मिश्रण है। उक्त उद्धरणों के अनुसार शांकर-दर्शन विज्ञानवाद और शून्यवाद का ही रूपान्तर है। इसी आधार पर उपर्युक्त आलोचकों ने शांकर-मायावाद को असद् दर्शन एवं शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहा है। अतः मेरी धारणा तो यह है कि तीनों सिद्धान्तों (विज्ञानवाद, शून्यवाद और मायावाद) की विषमताओं के आलोचनात्मक विवेचन से उपर्युक्त विद्वानों की धारणा का निर्णय स्वतः हो जायेगा।

---

१. श्रीभाष्य २–२–२७। २. भास्करभाष्य १–४–४५।

3. His Brahman was very much like the Sunya of Nagarjuna.
Indian Philosophy, Vol. I, P. 493.

४. Indian Philosophy, Vol, I, Page, 494.

५. देखिये—A. K. Ray Chawdhari—The Doctrine of Maya.

६. दर्शन दिग्दर्शन पृ० ८२० (किताब महल, १९४७, द्वितीय संस्करण)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूरदर्शी शंकराचार्य ने अपने भाष्य-ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर बौद्धों के विज्ञानवाद और शून्यवाद का खण्डन किया है। शांकर-भाष्य के कतिपय स्थलों के अध्ययन से विज्ञानवाद, शून्यवाद और मायावाद की पृथक्-पृथक् दिशायें निश्चित हो जाती हैं। विज्ञानवादी बौद्ध के मतानुसार एकमात्र चित्त की सत्ता स्वीकार की गई है। विज्ञानवादी प्रत्यक्ष रूप से अनुभूयमान जगत् की वाह्य सत्ता को नहीं मानता। उसका कथन है कि चित्त ही देह और भोग के रूप में प्रतिष्ठित रहता है। अतः चित्त की ही वास्तविक सत्ता है।[1] विज्ञानवादी के मत का खण्डन करते हुए शंकराचार्य का कथन है कि वाह्य जगत् के विषयों के प्रभाव का निश्चय करना अशक्य है, क्योंकि उनकी प्रत्यक्ष उपलब्धि होती है।[2] इसके अतिरिक्त विज्ञानवादी का स्वप्न जाग्रत्-साधर्म्य का सिद्धान्त भी शंकराचार्य को मान्य नहीं है। स्वप्न और जाग्रत् अवस्थाओं में साधर्म्य स्थापित करते हुए विज्ञानवादी का कथन है कि जिस प्रकार स्वप्नादि के ज्ञान वाह्य अर्थ के बिना ही ग्राह्य और ग्राहक के आकार में परिगत होते हैं उसी प्रकार जाग्रत् अवस्था में होने वाले स्तम्भ आदि ज्ञान भी हो सकते हैं क्योंकि दोनों में समानरूपता है।[3] शंकराचार्य ने उक्त मत का खण्डन करते हुए लिखा है कि स्वप्न और जाग्रत्-अवस्था के प्रत्ययों में साधर्म्य न होकर वैधर्म्य है। शंकराचार्य का कथन है कि यह वैधर्म्य बाध और अवाध का है। स्वप्न में उपलब्ध हुई वस्तु का तो जाग्रत् में बाध हो जाता है परन्तु जाग्रत् अवस्था में उपलब्ध वस्तु का किसी अवस्था में भी बाध नहीं होता। स्वप्नदृष्ट वस्तु स्मृतिमात्र है परन्तु जाग्रत् अवस्था में अनुभूत वस्तु साक्षात् 'उपलब्धि'[4] है। अतः स्वप्न एवं जाग्रत् अवस्थाओं का अन्तर स्पष्ट है। यहां हमारा उद्देश्य विज्ञानवादी बौद्ध और मायावादी शंकराचार्य के शास्त्रार्थ का विवेचन न होकर दोनों दार्शनिकों के सिद्धान्तों के भेद का निरूपण मात्र करना है। विज्ञानवादी बौद्ध और मायावादी शंकराचार्य के सिद्धान्तों के उक्त-संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि बौद्धों के विज्ञानवाद और शंकराचार्य के मायावाद में पर्याप्त अन्तर है। अतः विज्ञानवाद के आधार पर

---

१. दृश्यते न विद्यते वाह्यं चित्तं चित्रं हि दृश्यते।
देहभोगप्रतिष्ठानं चित्तमात्रं वदाम्यहम्॥ लंकावतार सूत्र ३-३३।

२. नखल्वभावो वाह्यस्यार्थस्या ध्यवसातुं शक्यते। कस्मात्? उपलब्धे।
ब्र० सू० शा० भा० २-२-२८।

३. देखिए—ब्र० सू० शा० भा० २-२-२८ के अन्तर्गत विज्ञानवादी का मत।

४. ब्र० सू० शा० भा०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहना नितान्त अयुक्त होगा। इस सम्बन्ध में विवरणकार का मत है कि वेदान्तवाद को सुगत-विज्ञानवाद के समान कहना 'एक दुर्जन रमणीय वाणी' है[1]

कतिपय आलोचकों ने शंकराचार्य के ब्रह्म और नागार्जुन के शून्य को एक समझकर ही शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कह दिया है। अतः इस समस्या पर भी विचार कर लेना चाहिये। सप्तम अध्याय के अन्तर्गत शंकराचार्य के मायावाद का तुलनात्मक अध्ययन करते समय इन दोनों सिद्धान्तों की विषमताओं का उल्लेख किया जा चुका है। इस स्थल पर दोनों सिद्धान्तों के भेद की दिशा निश्चित करना उपयुक्त होगा।

शून्यवाद अभाववादी दर्शन है जब कि शांकर-दर्शन में ब्रह्म सत्रूप है।[2] शंकराचार्य का कथन है कि दिक्, देश, गुण, गति और फल के भेद से शून्य परमार्थ सत्, अद्वय ब्रह्म मन्द-बुद्धियों को असत् के समान प्रतीत होता है।[3] इस प्रकार ब्रह्म और शून्य का भेद स्पष्ट है। बौद्धों के शून्यवाद के अभाववादी दृष्टिकोण की ओर संकेत करते हुये शंकराचार्य ने कहा है कि बौद्ध लोग सत् के अभावमात्र तत्त्व की परिकल्पना करते हैं न कि सत् के प्रतिद्वन्द्वी किसी अन्य पदार्थ की।[4] इसके विपरीत आचार्य शंकर रूप प्रपंचमात्र का निषेध करते हैं न कि ब्रह्म का निषेध करते हैं। शून्यवादी जगत् के समस्त पदार्थों का अन्तरभाव शून्य के ही अन्तर्गत करता है। इस प्रकार शून्यवादी के मत में जगत् की सत्ता स्वीकार्य नहीं है। इसके विपरीत शंकराचार्य ने मायावाद के अनुसार जगत् को व्यावहारिक सत्ता के अनुरूप 'सत्' माना है। माया और शून्य में यही भेद है। जो लोक-व्यवहार मायावादी शंकराचार्य के मत में सर्व प्रमाण सिद्ध है।[5] वह शून्यवादी की दृष्टि से असत् है।

विज्ञानवाद, शून्यवाद और शांकर-मायावाद में उपर्युक्त भेद होने के कारण शांकर-दर्शन को विज्ञानवाद और शून्यवाद का मिश्रण कहना अयुक्त है। अतः

---

१. दुर्जनरमणीयां वाचं जल्पति सुगत विज्ञानवादसमानो यं वेदान्तवाद इति पंचपादिकाविवरण (बौद्ध-दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन पृ० १०३२, भाग २ से उद्धृत।

२. ब्र० सू० शा० भा० ३-२-२२।

३. दिग्देशगुणगतिफलभेदशून्यं हि परमार्थं सत् अद्वयं ब्रह्म मन्दबुद्धीनाम् असद् इव प्रतिभाति। —छा० भा० ८-१-१ का प्रास्ताविक।

४. छा० भा० ६-२-१। ५. ब्र० सू० शा० भा० २-२-३१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डा० दासगुप्ता का मत असंगत कहा जायगा। उपर्युक्त भेद के कारण भास्कर का महायानिक बौद्ध-दर्शन में मायावाद का रूप देखना भी अनुचित है। बौद्ध-शून्यवाद और शांकर-दर्शन में परस्पर भेद की प्रतीति होते हुए भी राहुल-सांकृत्यायन प्रभृति विद्वानों का शून्य और ब्रह्म में नाममात्र का अन्तर मानना भी अनुचित ही कहा जायेगा। इसके अतिरिक्त मेरा विचार है कि बौद्ध-दर्शन के अभाव में शांकर-दर्शन को असम्भव कहते समय डा० वरुआ भी इस तथ्य से अवगत नहीं प्रतीत होते कि बौद्ध-दर्शन और शांकर दर्शन, इन दोनों का मूल आधार उपनिषद्-दर्शन है। इस सम्बन्ध में प्रो० चौधरी का निम्नलिखित कथन उपयुक्त प्रतीत होता है।

.... both Shankara and Buddhism suck the breast of the same mother. —the Upnishads.[1]

अर्थात् शंकर और बौद्ध-दर्शन दोनों एक ही— उपनिषद्रूपिणी माता का स्तन्यपान करते हैं।

इसी प्रसंग में यह कहना भी उपयुक्त होगा कि शांकर-दर्शन और बौद्ध-दर्शन की कुछ साम्यताओं के आधार पर शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहना भी युक्तियुक्त नहीं है। वास्तव में यह कथन असंदिग्ध है कि शाँकर-दर्शन और बौद्ध-दर्शन के अनेक वर्णनों में साम्यता है। उदाहरण के लिये, विज्ञानवादी बौद्ध असंग ने अपने महायानसूत्रालंकार में जिस परमतत्त्व को सत् एवं असत् से भिन्न कहा है[2] उसे शकराचार्य ने अपने गीताभाष्य में 'न सत्तन्नासदुच्यते[3] कहकर सत्-असत् से विलक्षण कहा है। परन्तु इस साम्यता के आधार पर शंकराचार्य के परमार्थ तत्त्व—ब्रह्म सम्बन्धी सिद्धान्त का आधार असंग की उक्त विचारधारा नहीं कही जा सकती। इसका कारण यह है कि सदसद्भिन्नत्व की उक्त विचारधारा का मूलस्रोत ऋग्वेद संहिता की 'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्'[4] उक्ति है। इस तर्क का यह निष्कर्ष है कि शांकर-दर्शन और बौद्ध-दर्शन की सैद्धान्तिक विचारधाराओं का मूल आधार वैदिक एवं उपनिषद् दर्शन है। अतः दोनों दर्शनों में प्राप्त कुछ साम्यताओं के आधार पर आचार्य शंकर को प्रच्छन्न बौद्ध' नहीं कहा जा सकता। वैदिक एवं औपनिषद्-दर्शन में अप्राप्त बौद्ध-तथ्यों की साम्यताओं के आधार पर ही शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न-बौद्ध'

1. A K. Ray Chawdhari, The Doctrine of Maya, P. 186. (Dasgupta & Co., Calcutta).

२. 'न सन्न न चासन्न तथा न चान्यथा। महायान सूत्रालंकार ६-१।

३. शा० भा० गीता १३-१२। ४. ऋग्वेद-संहिता १८-१२९-१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा जा सकता है। परन्तु वैदिक एवं औपनिषद्-दर्शन के विरोधी—बौद्ध-दर्शन के सिद्धान्तों और शाँकर-दर्शन के सिद्धान्तों में समानता का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता क्योंकि शांकर-दर्शन वैदिक-दर्शन है और बौद्ध-दर्शन अवैदिक-दर्शन।

शंकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' सिद्ध करने के हेतु डा० दासगुप्ता का तर्क है कि शंकर और उनके अनुयायियों ने आलोचना के भाषागत रूप को बहुत कुछ बौद्धों से ऋण रूप में प्राप्त किया था।[1] निःसन्देह डा० दासगुप्ता का कथन सत्य है, परन्तु इस सम्बन्ध में यह विचारने योग्य है कि शंकराचार्य के दर्शन का मुख्य उद्देश्य बौद्ध-धर्म-दर्शन-खण्डन एवं वैदिक-धर्म की स्थापना था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये बौद्ध विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करते समय शंकराचार्य द्वारा किया गया, बौद्धों के पारिभाषिक शब्दों एवं अन्य भाषागत रूपों का प्रयोग स्वाभाविक ही नहीं, अपितु सुविधाजनक भी था। इसलिये इन प्रयोगों के आधार पर आचार्य को 'प्रच्छन्न-बौद्ध' कहना तर्क प्रतिष्ठित नहीं प्रतीत होता। शंकराचार्य ही नहीं, आचार्य गौड़-पाद ने भी तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुसार अपने दर्शन में बौद्धों के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया था परन्तु इससे आचार्य गौडपाद 'प्रच्छन्न बौद्ध' नहीं हो गए। आज भी जो हिन्दू सन्त पश्चिमी देशों में वेदान्त-दर्शन का प्रचार करते हैं उन्हें भी अपने विचारों के स्पष्टीकरण के लिये क्रिश्चियन वर्णन विधियों के अपनाने की आवश्यकता पड़ जाती है।[2]

उक्त तर्कों के आधार पर पद्मपुराण आदि की, शँकराचार्य और उनके मायावाद को 'प्रच्छन्न बौद्ध' एवं 'असत्-शास्त्र' सिद्ध करने वाली उक्तियाँ निर्मूल प्रतीत होती हैं। भारतीय-दर्शन के विद्वान् सर जॉन वुडरफ[3] और डा० राधाकृष्णन्[4] भी शंकराचार्य पर आरोपित 'प्रच्छन्न बुद्धत्व' को उचित नहीं मानते।

वेदान्त-दर्शन में आचार्य शंकर और उनके मायावाद का स्थान

वेदान्त-दर्शन के क्षेत्र में आचार्य शंकर और उनके दार्शनिक सिद्धान्त—मायावाद का स्थान सर्वोपरि है। वेदान्तदर्शनाकाश के वे सूर्य हैं और उनका मायावाद उस सूर्य का अविद्या-निवर्तक अद्भुत आलोक है। शंकराचार्य के इस

1. S. N Dasgupta, Indian Philosophy, Vol. I, P 493.
2. Dr. T. N. P. Mahadavan, Gaudpada, P 220 (University of Madras, 1954).
3. Sir John Woodroffe, The World As Power, P. 72 (Ganesh & Co., Madras).
4. Dr. Radhakrishnan, Indian Philosophy, Vol. II, P. 472.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महत्त्व का कारण केवल मायावाद ही नहीं वरन् उनकी अद्वितीय प्रतिभा, भाष्य-रचना की बालबोद्धव्यशैली, निष्पक्ष आलोचना और समाज-सुधारक दृष्टि भी है। उक्त गुण वेदान्त-दर्शन के किसी अन्य आचार्य अथवा विद्वान् में नहीं उपलब्ध होते। यहां हमारा उद्देश्य वेदान्त-दर्शन के आचार्यों अथवा प्रतिपादकों के सिद्धान्तों का 'पंकप्रक्षालन' न होकर शंकराचार्य और उनके मायावाद के स्थान का निर्णयमात्र करना है। आचार्य शंकर की प्रतिभा अद्वितीय थी। वंगीय लेखक राजेन्द्रनाथ घोष ने शंकराचार्य की प्रतिभा के सम्बन्ध में लिखा है—"तिनि असाधारण तीक्ष्ण बुद्धि जो श्रुतिधर छिलेन बोलिया याहा एकबार सुनितेन ताहाइ सिखिया केलिफेन। केवल तहाइ नय गुरु अपरापार शिष्य गण के याहा पढाइ तेन शंकर गुरु-सेवा उपलक्षे गुरु पार्श्वे थाकियाइ तहाओ आयत्त करिया फेलितेन।"[1]

अर्थात् आचार्य शंकर असाधारण तीक्ष्ण बुद्धि-सम्पन्न तथा श्रुतिधर थे। इसलिये वे एक बार जो कुछ सुनते थे वह उन्हें याद हो जाता था। केवल यही नहीं, गुरु दूसरे शिष्यों को जो पढ़ाते थे, शंकर गुरु-सेवा के उपलक्ष में, गुरु के निकट रहते हुए वह भी याद कर लेते थे।

वेदान्त-दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य के महत्त्व का प्रधान कारण मायावाद है। औपनिषद्-दर्शन एवं वेदान्त-सूत्रवर्ती-दर्शन के समन्वय की दृष्टि से शंकराचार्य की मायावाद सम्बन्धी देन अनुपम है। शंकराचार्य ने मायावाद की स्थापना करके एक ओर औपनिषद्-दर्शन एवं वेदान्त सूत्रवर्ती दर्शन की परस्पर विरोधी समस्याओं का हल प्रस्तुत किया है और दूसरी ओर माया के व्यावहारिक रूप की योजना के द्वारा आचार एवं नैतिकता का समावेश करके वेदान्त-दर्शन को लोकोपयोगी बनाया है। साथ ही अद्भुत भाष्य रचना के द्वारा शंकराचार्य ने दार्शनिक जगत् में जिस प्रेरणा का संचार किया है, परवर्ती रामानुज आदि दार्शनिकों की 'श्रीभाष्य' आदि भाष्य-रचनायें उसी का साक्षात् फल हैं। यह, आचार्य के उदात्त व्यक्तित्व का ही परिणाम है कि आज लगभग १२ शताब्दियों के उपरान्त भी विश्व का दार्शनिक शांकर-दर्शन के अध्ययन एवं मनन का अभिलाषी बना है। अतः वेदान्त-दर्शन में आचार्य शंकर और उनके मायावाद का स्थान सर्वोच्च है।

---

१. आचार्य शंकर और रामानुज पृ० ३७, क्षेत्रपाल घोष द्वारा संपादित। (झामापुकुर लेन, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शङ्कराचार्य

[उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन]

परिशिष्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संकेत–निर्देश

ब्र० सू०	ब्रह्मसूत्र	शां० भा०	शांकरभाष्य
मा० उ० भा०	माण्डूक्योपनिषद् भाष्य	सं० शा०	संक्षेप शारीरक
बृ० उ०	बृहदारण्यकोपनिषद्	कठ० उ०	कठोपनिषद्
मु० उ०	मुण्डकोपनिषद्	तै० उ०	तैत्तिरीयोपनिषद्
केन० उ०	केनोपनिषद्	छा० उ०	छान्दोग्योपनिषद्
श्वे० उ०	श्वेताश्वतरोपनिषद्	गी० भा०	गीता भाष्य
ऋ० सं०	ऋग्वेद संहिता	अ० वे० सं०	अथर्ववेद संहिता
श्वे० उ० भा०	श्वेताश्वतरोपनिषद् भाष्य	यो० वा० पू०	योगवासिष्ठ पूर्वार्द्ध
मा०का०शा०भा०	माण्डूक्यकारिका शांकरभाष्य		
प्र० उ०	प्रश्नोपनिषद्	ला० स०	ललिता सहस्रनाम
वे०सू०शा०भा०	वेदान्त सूत्र शांकरभाष्य	वे० सि० मु०	वेदान्त सिद्धांत मुक्तावली
वा० सं०	वाजसनेय संहिता	ऐ० ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
वे० प०	वेदान्त परिभाषा	श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
तै० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण	सि० ले० स०	सिद्धान्तलेश संग्रह
श्री० भा०	श्रीभाष्य	छा० भा०	छान्दोग्योपनिषद् भाष्य
बृ० उ० भा०	बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य	बृ० भा० वा०	बृहदारण्यकभाष्य वार्तिक
ई० उ०	ईशावास्योपनिषद्	वि० प्र० स०	विवरण प्रमेयसंग्रह
मा० का०	माण्डूक्यकारिका	म० का०	मध्यमकावतार

A. I. O. C.	All India Oriental Conference.
B. B. R. A. S.	Bombay Branch Royal Asiatic Society.
I. P.	Indian Philosophy.
J. A O. S.	Journal of the American Oriental Society.
J. R. A. S.	Journal of the Royal Asiatic Society.
O. B. A.	Oriental Book Agency.
S. B. E	Sacred Books of the East.
J. O. R. M.	Journal of Oriental Research Madras.

साहयक–ग्रन्थ–सूची

(क) संस्कृत ग्रन्थः—

ऋग्वेद संहिता— वैदिक संशोधन मण्डल, पूना।
यजुर्वेद संहिता— परोपकारिणी सभा, सं० १९९९, षष्ठ–संस्करण।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथर्ववेद संहिता— सनातन धर्म यन्त्रालय, मुरादाबाद, सं० १९८७।
सायणभाष्य, महीधर भाष्य, उव्वटभाष्य, निघंटु, निरुक्त, वाजसनेय-संहिता, शतपथ ब्राह्मण, पंचविंशति ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक, ईशावास्योपनिषद् शांकरभाष्य सहित, केनोपनिषद् शांकरभाष्य सहित, कठोपनिषद् शांकरभाष्य सहित, प्रश्नोपनिषद् शांकरभाष्य सहित, मुण्डकोपनिषद् शांकरभाष्य सहित, माण्डूक्योपनिषद् शांकरभाष्य सहित, तैत्तिरीयोपनिषद् शांकरभाष्य सहित, ऐतरेयोपनिषद् शांकरभाष्य सहित, छान्दोग्योपनिषद् शांकरभाष्य सहित, बृहदारण्यकोपनिषद् शांकरभाष्य सहित, श्वेताश्वतरोपनिषद् शांकरभाष्य सहित, नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद्, नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद्, कैवल्योपनिषद्, सर्वसारोपनिषद्, कठरुद्रोपनिषद्, गोपीचन्दनोपनिषद्, गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद्, कृष्णोपनिषद्, रामपूर्वतापनीयोपनिषद्, माण्डूक्यकारिका शांकरभाष्य सहित; वाणीविलास संस्कृत-ग्रन्थमाला; काशी; १९४२, बृहदारण्यकभाष्यवार्तिक—सुरेश्वराचार्य, श्रीमद्भगवद्गीता, विष्णु पुराण, ब्रह्म पुराण, अग्नि पुराण, स्कन्द पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, शिव पुराण, महानारदीय पुराण, मार्कण्डेय पुराण, वामन-पुराण, गरुड़ पुराण, वाराह पुराण, पद्म पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण, भविष्य पुराण, महाभारत, कुलचूड़ामणि तन्त्र—गणेश एण्ड कं०; मद्रास; १९५६, बृहन्नील तन्त्र, ज्ञानसंकलिनी तन्त्र, गायत्री तन्त्र, कामधेनु तन्त्र, गन्धर्व तन्त्र, महानिर्वाण तन्त्र—गणेश एण्ड कं०; मद्रास, तन्त्र सार—चौखम्बा; बनारस, शारदातिलक तन्त्र, लक्ष्मी तन्त्र—अड्यार; १९५९, तन्त्रालोक अभिनवगुप्त; काश्मीर सीरिज़, मालिनीविजयवार्तिकम् —अभिनवगुप्त; कश्मीर सीरीज़; प्रत्यभिज्ञाहृदयम्—राजानक क्षेमराजाचार्य अड्यार; १९३८, शिवसंहिता—खेमराज श्रीकृष्णदास; सं० २००८, चिद्गगनचन्द्रिका—कालिदास; आगमानुसन्धान समिति; कलकत्ता; १९३७, सौंदर्य-लहरी—शंकराचार्य, ललितासहस्रनाम, ब्रह्मसूत्र—बादरायण (शांकरभाष्य सहित), शिवसूत्र, भक्तिसूत्र—शाण्डिल्य, न्यायभाष्य—वात्स्यायन, न्यायवार्तिक—उद्योतकर, लंकावतारसूत्र—Bunyiu Nanji ; Authur Probsthain; London, 1923, महायानसूत्रालंकार मैत्रेयनाथ, अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता—Asiatic Society of Bengal, 1888. विग्रह-व्यावर्तनी—नागार्जुन, मध्यमकावतार—चन्द्रकीर्ति, माध्यमिककारिका—नागार्जुन माध्यमिकवृत्ति—Bib. Buddhica St; Petersburg, बोधिचर्यावतारपंजिका—प्रज्ञाकरमति, विवेकचूड़ामणि—शंकराचार्य; अद्वैत आश्रम मायावती; अल्मोड़ा; १९५२, हस्तामलक—शंकराचार्य, वाक्य सुधा—शंकराचार्य,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दामोदर शास्त्री संपादित; बनारस; १९०१, दशश्लोकी—चौखम्बा संस्कृत सीरिज; १९८५. उपदेशसाहस्री—निर्णय सागर; १९१४. अपरोक्षानुभूति—अद्वैत आश्रम; अल्मोड़ा, आत्मबोध—शंकराचार्य, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र—रामास्वामी शास्त्रुलु एण्ड सन्स; एस्प्लेनेड; मद्रास; १९२० रत्नप्रभा—गोविन्दानन्द, भामती-वाचस्पतिमिश्र, न्यायसूचीनिबन्ध—वाचस्पतिमिश्र, तत्त्ववैशारदी—वाचस्पतिमिश्र, अद्वैतसिद्धि—मधुसूदन सरस्वती; निर्णय सागर; १९१७, सिद्धान्त बिन्दु—मधुसूदन सरस्वती, अद्वैत रत्नरक्षण—मधुसूदन सरस्वती, श्रीभाष्य—रामानुज (श्रुत-प्रकाशिका सहित); पूर्णप्रज्ञ दर्शन—मध्वाचार्य, अणुभाष्य—वल्लभाचार्य, वेदान्त पारिजात सौरभ—निम्बार्काचार्य, ब्रह्मसूत्र चतुःसूत्री—डा० हरदत्त शर्मा; Oriental Book Agency; Poona; 1940, रामानुजभाष्य (गीता), भास्करभाष्य—भास्कराचार्य, योगवासिष्ठ, श्लोकवार्तिक—कुमारिल भट्ट, अभिधावृत्तिमातृका—मुकुल भट्ट, तत्त्वदीपिका—उमामहेश्वर, वाक्यपदीय—भर्तृहरि (भावप्रदीप सहित), प्रपंचहृदय—(अनन्तशयन ग्रन्थावली), वेदार्थसंग्रह रामानुज; भगवद्रामानुज ग्रन्थमाला; १९५६, यतीन्द्रमतदीपिका—श्रीनिवासाचार्य, सकलाचार्य-मत-संग्रह, मिताक्षरा—विज्ञानेश्वर, संक्षेपशारीरक—सर्वज्ञात्ममुनि (नृसिंहाश्रम की टीका सहित), पाराशरसंहिता टीका—माधवाचार्य, नैष्कर्म्य सिद्धि—सुरेश्वराचार्य; Bhandarkar Oriental Research Institue; Poona; 1925. सर्वार्थसिद्धि—वेदान्त देशिक, प्रमाणविनिश्चय-धर्मकीर्ति, प्रमाणवार्तिक-धर्मकीर्ति, शंकरमन्दारसौरभ—नीलकण्ठ भट्ट, तत्त्वसंग्रह—शान्तरक्षित, आत्ममीमांसा—समन्तभद्र दृग्दृश्यविवेक—भारतीतीर्थ. पंचदशी—विद्यारण्य; बुद्धि सेवाश्रम; रतनगढ़; सं० २०११. अद्वयवज्रसंग्रह—अद्वयवज्र, वेदान्तसार-सदानन्द; चौखम्बा विद्याभवन; बनारस; १९५४, विज्ञानदीपिका—पद्मपादाचार्य, शंकर विजय—आनन्दगिरि, शंकरदिग्विजय—माधवाचार्य, ब्रह्मसिद्धि—मण्डनमिश्र, वेदान्त-सिद्धान्त-मुक्तावली—प्रकाशानन्द, वेदान्तरत्नमंजूषा—पुरुषोत्तमाचार्य. लघुचन्द्रिका—गौड़ ब्रह्मानन्द; निर्णयसागर; १९१७, अद्वैत-चन्द्रिका—सुदर्शनाचार्य, मानसोल्लास—सुरेश्वराचार्य, महादेवशास्त्री संपादित; मद्रास; १९२०, वेदान्त परिभाषा-धर्मराजाध्वरीन्द्र; कल्याण; बम्बई; सं. १९९९, ख्यातिवाद शंकर चैतन्यभारती; सरस्वती भवन टेक्स्ट्स, विवरणप्रमेयसंग्रह—विद्यारण्य; अच्युत ग्रन्थमाला; काशी; सं० १९९६, वेदान्त-कौमुदी रामाद्वयाचार्य—University of Madras; 1955. न्यायमकरन्द टीका—चित्सुख, इष्टसिद्धि—विमुक्तात्मा, ब्रह्मविद्याभरण—अद्वैतानन्द

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्पतरु—अमलानन्द, पंचपादिका विवरण—प्रकाशात्मयति, शतभूषणी—म० म० अनन्तकृष्ण शास्त्री, B. G. Paul &. Co.; Madras; 1950 सर्वदर्शन संग्रह—माधवाचार्य, सिद्धान्तलेश संग्रह—अप्पय दीक्षित; अच्युत ग्रन्थमाला; काशी; स० २०११, वेदान्त कौस्तुभ—श्रीनिवासाचार्य, तर्क संग्रह—अन्न भट्ट, दशश्लोकी—निम्बार्काचार्य, मध्वसिद्धान्तसार—पद्मनाभ, शुद्धाद्वैतमार्तण्ड—गिरिधर महाराज; चौखम्बा; बनारस, सर्वसम्वादिनी—जीव गोस्वामी, गोरक्ष संहिता—गोरक्षानाथ; प्रसन्नकुमार कविरत्न संपादित, उत्तररामचरित—भवभूति, मेदिनी कोष, चित्सुखी—चित्सुखाचार्य, धर्मशर्माभ्युदय—जैनकवि हरिश्चन्द्र; नैषध—श्रीहर्ष, खण्डनखण्डखाद्य—श्री हर्ष; लक्ष्मणशास्त्री संपादित; बनारस; १९१४।

(ख) आंग्ल–ग्रन्थ एवं पत्र–पत्रिकायें आदि:–

Sacred Books oi the East: Vol. XXXIV—Dr. Thibout, Oxford Clarenden Press, 1890.

Hinduism and Buddhism: Vol. II—Illiot, Broadway, London, IInd Edition.

The Great Pnilosophers: (The Eastern World)—Tomlin, E.V.F. Skeffington, London, 1952

R, gveda : Vol. VI.—Wilson, Poona, 1928.

Three Great Acharyas:—Aiy ar, C. N. & Tattva Bhushan, S. Nateson. Madras.

The Philosophy of Vedanta:—Deussen, Paul, Sushil Gupta, Calcutta, 1957.

The Vedanta:—Ghate, V. S. Bhandarkar Oriental Institute, Poona.

Indian Philosophy: Vol. I & II:—Dr. Radha Krishnan, S Allen & Unwin, Loddon.

Indian Philosophy: Vol. I & II—Dasgupta, S. N. Cambridge University Press, 1951.

The Doctrine of Maya:—Shastri, P. D. Luzac & Co., London, 1911.

A History of Sanskrit Literature—Keith, A. B. Oxford Uuiversity Press, London, 1928.

Ancient India:—Mazumdar, R. C. Motilal Banarasidas, Banaras.

History of Dharm Shastra: Vol. I & 2—Kane, P. B. Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.

Gaudpada:—Mahadevan, T, M, P. University of Madras, 1954.

Rational Mysticism:—Kingsland.

Index to Sanskrit Philosophy:—Hall, E. E.

Tne Agam Shastra of Gaudpada:—Bhattacharya, B. University of Calcutta, 1943,

A Constructive Survey of Upnishadic Philosophy—Ranade, R. D. Oriental Book Agency, Poona, 1926.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Studies in Vedanta:—Kirtikar, V J. Taraporevala & Co, Bombay, 1924.
Future Life:—Hudson.
Idea of God:—Pringle Pattison.
Biographical History of Philosophy:—Lewis, H. G.
A Study of Shankar:—Shastri, N Calcutta, 1942
A Study of the Vedanta: (Shri Gopal Basumalik fellowship Lectures, 1929)—Das, S. K. University of Calcutta, 1937.
Vedanta Doctrine of Sri (Shankracharya;—Mahadeva Shastri, A. Rama Swamisastrulu & Sons., Esplanade, Madras, 1920.
Essays on Truth & Reality:—Bradley.
Appearance & Reality:—Oxford Clarendan. London. 1951.
Aspects of Advaita:—Aiyer, K. S. & Ramaswami, K. S. Srirangam, Vani Vilas.
Three Lectures on nhe Vedanta Philosophy:—Maxmuller, Long Mans Green, London.
Five Sanskrit Texts:—Dr. Muir.
The Doctrine of Maya:—Chawdhry, A. K. Dasgupta, Calcutta 1950.
The Philosophy of Vishishtadvaita:—Srinivasachari, P. N. Adyar Library, 1946.
History of Indian Literature: Vol. IInd:—Winternitz, M. University of Calcutta, 1933.
Essays in Zen Buddhism:—Suzuk'.
Studies in the Lankavatara Sutra:—Suzuki.
Yogvashishtha & Modern thought—Atreya, B. L. Indian Book-shop, Banaras, 1954.
Mahamaya—Woodroffe, J. & Mukhyopadhyaya, P. N.—Ganesh & Co., Madras, 1954.
Garland of Letters—Woodroffe, J Ganesh & Co., Madras.
The world As Power— " "
The Concept of Maya—Devanandan, P. D., Russel Street, Calcutta, 1954.
Commemoration Volume—Pathak K. B.
South Indian Paleography—Burnell.
List of Antiquities in Madras.
Report on the Search for Sanskrit Mss. 1882.
Indian Antiquary VII.
Journal of Oriental Research, Madras, 1927.
Journal of the American Oriental Society, 1911, 1913.
Journal of Royal Asiatic Society, 1916, 1923, 1924, 1925.
Indian Thought, 1907, edited by Thibout and Ganganath Jha.
Journal of Bihar & Orrissa, Research Society, Patna, XXIII.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Journal of Buddhist Texts Society, Vol. II.
Indian Culture, Vol. XII.
Indian Historical Quarterly, Vol. IX, 1933.
Report of the Seventh All Indian Oriental Conference, Baroda.

(ग) हिन्दी–ग्रन्थ एवं पत्र

श्री शंकराचार्य–प्रो० बलदेव उपाध्याय—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५० ।

श्री शंकराचार्य का आचार-दर्शन—डा० रामानन्द तिवारी—हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, स० २००६ ।

भारतीय-दर्शन शास्त्र (न्याय वैशेषिक)—डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री डी० लिट्, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, १९५३ ।

चिद्विलास—डा० सम्पूर्णानन्द, ज्ञानमण्डल, काशी ।

कबीर ग्रन्थावली । ग्रन्थ साहब—गुरु नानक ।

बौद्धधर्म-दर्शन—आचार्य नरेन्द्रदेव, बिहार राष्ट्र-भाषा–परिषद्, १९५६ ।

योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त—डा० भीखनलाल आत्रेय, डी० लिट्, तारा-प्रिंटिंग वर्क्स, बनारस, १९५७ ।

बौद्ध-दर्शन तथा अन्य भारतीय-दर्शन, भाग २—भरत सिंह उपाध्याय ।

भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास—डा० देवराज, हिन्दूस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५० ।

दर्शनदिग्दर्शन—राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, १९४७ ।

अद्वैतवाद—गंगा प्रसाद उपाध्याय, कला प्रेस, प्रयाग, १९५७ ।

प्रश्न सगति · चेहो और सैदो ।

वेदांतांक (कल्याण)—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

(घ) बंगला ग्रन्थ

वेदान्त दर्शनेर इतिहास भाग १—प्रज्ञानानन्द सरस्वती ।

शंकर ओ रामानुज—राजेन्द्रनाथ घोष, झामापुकुर लेन, कलकत्ता ।

धर्मपूजा विधान—रमई पंडित ।

धर्ममंगल – घनराम चक्रवर्ती ।

(ङ) मराठी ग्रन्थ

दासबोध—स्वामी रामदास ।

(च) अपभ्रंष ग्रन्थ—

डाकार्णवः—मूल लेखक अज्ञात, डॉ० नगेन्द्रनारायण चौधरी द्वारा संपादित, मेट्रोपोलिटन, कलकत्ता, १९३५ ।

(छ) संस्कृत–जर्मन ग्रन्थ

St. Petesburg Dictionary—Bothlink & Roth.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant 2

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.